B.A.LL.B.-6th Sem. Paper-I Political Science-II

प्रश्न न0 1– भारतीय संविधान संघात्मक है यह किन परिस्थितियों मे एकात्मक हो जाता है। व्याख्या कीजिए?

उत्तर– भारतीय संविधान की प्रकृति पर अक्सर यह बहस होती है कि क्या यह पूर्णतः संघात्मक है या एकात्मक। संविधान का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट होता है कि इसकी मूल प्रकृति संघात्मक है , लेकिन कुछ विशेष परिस्थितियों में यह एकात्मक स्वरूप ग्रहण कर लेता है। यह भारतीय संविधान की एक अनूठी विशेषता है जिसे "अर्ध-संघात्मक" (Quasi-Federal) या "केंद्रोन्मुखी संघात्मक" (Federal with Unitary Bias) कहा जाता है।

भारतीय संविधान की संघात्मक प्रकृति के लक्षण:

संघात्मक संविधान की कुछ प्रमुख विशेषताएँ होती हैं, जो भारतीय संविधान में स्पष्ट रूप से मौजूद हैं:

1. **शक्तियों का विभाजन (Division of Powers):** भारतीय संविधान सातवीं अनुसूची के तहत केंद्र और राज्यों के बीच विधायी शक्तियों को स्पष्ट रूप से विभाजित करता है। इसमें तीन सूचियाँ हैं - संघ सूची , राज्य सूची और समवर्ती सूची। यह संघात्मकता का एक मूलभूत लक्षण है।
2. **लिखित संविधान (Written Constitution):** भारतीय संविधान एक विस्तृत और लिखित दस्तावेज है , जो केंद्र और राज्यों की शक्तियों और सीमाओं को स्पष्ट रूप से परिभाषित करता है।
3. **संविधान की सर्वोच्चता (Supremacy of the Constitution):** संविधान देश का सर्वोच्च कानून है और केंद्र व राज्य सरकारें दोनों ही इसकी सीमाओं के अधीन हैं। कोई भी कानून या कार्रवाई जो संविधान के अनुरूप नहीं है , उसे असंवैधानिक घोषित किया जा सकता है।
4. **स्वतंत्र न्यायपालिका (Independent Judiciary):** भारत में एक स्वतंत्र न्यायपालिका है , जिसमें सर्वोच्च न्यायालय शीर्ष पर है, जो संविधान का संरक्षक है। यह केंद्र और राज्यों के बीच या राज्यों के बीच विवादों का निपटारा करता है और संविधान की व्याख्या करता है।
5. **कठोर संविधान (Rigid Constitution):** भारतीय संविधान में संशोधन की प्रक्रिया कठोर है, विशेषकर उन प्रावधानों के लिए जो संघीय ढांचे से संबंधित हैं। कुछ संशोधनों के लिए संसद के विशेष बहुमत के साथ-साथ आधे से अधिक राज्यों के विधानमंडलों की सहमति भी आवश्यक होती है।
6. **द्विसदनीय विधानमंडल (Bicameral Legislature):** संसद के दो सदन हैं - लोकसभा (जो सीधे लोगों का प्रतिनिधित्व करती है) और राज्यसभा (जो राज्यों का प्रतिनिधित्व करती है)। राज्यसभा राज्यों को केंद्र सरकार के फैसलों को प्रभावित करने का अवसर देती है।

भारतीय संविधान किन परिस्थितियों में एकात्मक हो जाता है

भारतीय संविधान में कई ऐसे प्रावधान हैं जो केंद्र सरकार को राज्यों पर अधिक शक्ति और नियंत्रण प्रदान करते हैं , जिससे विशेष परिस्थितियों में यह एकात्मक स्वरूप ग्रहण कर लेता है। ये स्थितियाँ मुख्य रूप से आपातकाल , प्रशासनिक नियंत्रण और विधायी प्रभुत्व से संबंधित हैं:

1. **आपातकालीन प्रावधान (Emergency Provisions):** यह सबसे महत्वपूर्ण परिस्थिति है जब भारतीय संविधान एकात्मक हो जाता है। संविधान के भाग XVIII में तीन प्रकार के आपातकालों का प्रावधान है:
   - **राष्ट्रीय आपातकाल (अनुच्छेद 352):** जब देश पर युद्ध, बाहरी आक्रमण या सशस्त्र विद्रोह का खतरा हो।
     - **एकात्मक प्रभाव:** इस दौरान केंद्र सरकार को किसी भी राज्य को निर्देश देने की शक्ति मिल जाती है। संसद को राज्य सूची में उल्लिखित किसी भी विषय पर कानून बनाने का अधिकार मिल जाता है। राज्यों की कार्यकारी शक्तियाँ केंद्र के अधीन हो जाती हैं। वित्तीय वितरण में भी केंद्र के पक्ष में बदलाव हो सकता है। राज्यों की स्वायत्तता लगभग समाप्त हो जाती है।
   - **राज्य आपातकाल/राष्ट्रपति शासन (अनुच्छेद356):** जब किसी राज्य में संवैधानिक तंत्र विफल हो जाए।
     - **एकात्मक प्रभाव:** राज्य सरकार बर्खास्त हो जाती है और राज्य का शासन सीधे राष्ट्रपति (अर्थात केंद्र सरकार) के नियंत्रण में आ जाता है। राज्य विधायिका की शक्तियाँ संसद को हस्तांतरित हो जाती हैं।
   - **वित्तीय आपातकाल (अनुच्छेद 360):** जब देश में वित्तीय स्थिरता या साख को खतरा हो।
     - **एकात्मक प्रभाव:** केंद्र सरकार राज्यों को वित्तीय मामलों में निर्देश दे सकती है। राज्यों के सरकारी कर्मचारियों के वेतन और भत्ते कम किए जा सकते हैं। राज्यों के वित्तीय बिल राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित किए जा सकते हैं।
2. **राज्यसभा की शक्ति (अनुच्छेद 249, 312):**

- **अनुच्छेद 249:** यदि राज्यसभा अपने उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत से यह संकल्प पारित कर दे कि राष्ट्रीय हित में यह आवश्यक या समीचीन है , तो संसद को राज्य सूची में उल्लिखित किसी भी विषय पर कानून बनाने का अधिकार मिल जाता है। यह अस्थायी रूप से राज्यों की विधायी शक्ति पर केंद्र का वर्चस्व स्थापित करता है।
- **अनुच्छेद 312:** राज्यसभा विशेष बहुमत से अखिल भारतीय सेवाओं (All India Services) का सृजन कर सकती है। इन सेवाओं के सदस्य (IAS, IPS, IFS) केंद्र द्वारा नियुक्त होते हैं लेकिन राज्यों में सेवा करते हैं, जिससे केंद्र का राज्यों के प्रशासन पर अप्रत्यक्ष नियंत्रण बना रहता है।

3. **राज्यपाल की भूमिका (Role of the Governor):**
- राज्यपाल राष्ट्रपति (केंद्र सरकार) का प्रतिनिधि होता है और राज्य में संवैधानिक प्रमुख होता है।
- राज्यपाल राज्य के बिलों को राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित कर सकता है (अनुच्छेद 200)। राष्ट्रपति ऐसे बिलों को मंजूरी देने से इनकार कर सकते हैं, जिससे राज्य की विधायी शक्ति बाधित होती है।
- राष्ट्रपति शासन की सिफारिश राज्यपाल ही करता है, जो अक्सर राजनीतिक कारणों से केंद्र सरकार के इशारे पर हो सकता है।

4. **एकल नागरिकता (Single Citizenship):** भारत में एकल नागरिकता का प्रावधान है, जो नागरिकों को पूरे देश में समान अधिकार प्रदान करता है। यह राष्ट्र की एकता और अखंडता को मजबूत करता है , जो एकात्मकता की ओर झुकाव दर्शाता है।

5. **एकीकृत न्यायपालिका (Integrated Judiciary):** भारत में न्यायपालिका की एक एकीकृत प्रणाली है , जिसमें सर्वोच्च न्यायालय शीर्ष पर है और उसके नीचे उच्च न्यायालय तथा अधीनस्थ न्यायालय हैं। यह प्रणाली केंद्र और राज्यों दोनों के कानूनों को लागू करती है, जो संघात्मक व्यवस्था में अक्सर अलग-अलग होती है।

6. **संविधान संशोधन प्रक्रिया (Amendment Procedure):**
- संविधान के कई महत्वपूर्ण हिस्सों को संसद अपने विशेष बहुमत से ही संशोधित कर सकती है (अनुच्छेद 368), जिसमें राज्यों की सहमति की आवश्यकता नहीं होती। यह केंद्र को संविधान में एकतरफा बदलाव करने की शक्ति देता है, जिससे संघीय संतुलन प्रभावित हो सकता है।
- यद्यपि संघीय ढांचे से संबंधित प्रावधानों के लिए राज्यों की सहमति आवश्यक है , यह अपेक्षाकृत कम मामलों में होता है।

7. **वित्तीय निर्भरता (Financial Dependence of States):**
- राज्य वित्तीय संसाधनों के लिए काफी हद तक केंद्र पर निर्भर हैं। केंद्र सरकार राज्यों को विभिन्न अनुदान (grants-in-aid) और ऋण प्रदान करती है, जिससे केंद्र का राज्यों पर नियंत्रण बना रहता है।
- वित्त आयोग केंद्र और राज्यों के बीच राजस्व के बंटवारे की सिफारिश करता है, लेकिन अंतिम निर्णय केंद्र सरकार का होता है।

8. **नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (CAG) और चुनाव आयोग (Election Commission):**
- CAG राज्यों के खातों का भी ऑडिट करता है, जिससे केंद्र का वित्तीय नियंत्रण बना रहता है।
- भारत का चुनाव आयोग (केंद्रीय निकाय) राज्य विधानसभाओं और स्थानीय निकायों के चुनाव भी कराता है , जिससे केंद्र का चुनावी प्रक्रिया पर नियंत्रण रहता है।

9. **योजना आयोग/नीति आयोग (Planning Commission/NITI Aayog):**
- योजना आयोग (अब नीति आयोग) हालांकि एक गैर-संवैधानिक निकाय था/है , इसने पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से राज्यों के विकास संबंधी निर्णयों पर केंद्र का महत्वपूर्ण नियंत्रण बनाए रखा। राज्यों को केंद्रीय योजनाओं को लागू करने के लिए मजबूर होना पड़ता था।

निष्कर्ष:

भारतीय संविधान की प्रकृति अद्वितीय है। यह मूल रूप से संघात्मक है क्योंकि यह शक्तियों का विभाजन , लिखित संविधान, संविधान की सर्वोच्चता और स्वतंत्र न्यायपालिका जैसी संघात्मक विशेषताओं को समाहित करता है। हालांकि , आपातकालीन प्रावधानों, राज्यपाल की भूमिका, राज्यसभा की विशेष शक्तियों, अखिल भारतीय सेवाओं और वित्तीय निर्भरता जैसे कारकों के कारण यह विशेष परिस्थितियों में और कभी-कभी सामान्य परिस्थितियों में भी एकात्मक स्वरूप ग्रहण कर लेता है। इसी कारण, भारतीय संविधान को 'अर्ध-संघात्मक' या 'केंद्रोन्मुखी संघात्मक' कहा जाता है, जो इसकी लचीली और अनुकूलन योग्य प्रकृति को दर्शाता है। यह प्रणाली भारत की विशाल विविधता और एकता को बनाए रखने के लिए उपयुक्त मानी जाती है।

प्रश्न न0 2– सरकार के तीनों प्रमुख अंगों की व्याख्या कीजिए?

<u>उत्तर–</u> सरकार किसी भी राष्ट्र के शासन और प्रशासन को चलाने वाली एक महत्वपूर्ण संस्था होती है। आधुनिक लोकतांत्रिक सरकारों को आमतौर पर कार्य कुशलता और शक्ति के दुरुपयोग को रोकने के लिए तीन प्रमुख अंगों में विभाजित किया जाता है। ये अंग हैं: विधायिका (Legislature), कार्यपालिका (Executive) और न्यायपालिका (Judiciary)। इन तीनों अंगों के बीच शक्तियों का पृथक्करण और संतुलन (Separation of Powers and Checks and Balances) एक स्वस्थ लोकतंत्र की पहचान है।

1. विधायिका (Legislature):

विधायिका सरकार का वह अंग है जिसका प्राथमिक कार्य **कानूनों का निर्माण** करना है। इसे अक्सर संसद या विधानमंडल के नाम से जाना जाता है। यह जनता का प्रतिनिधित्व करती है और लोकतांत्रिक देशों में जनता की इच्छा को कानूनों के रूप में व्यक्त करती है।

मुख्य कार्य:

- **कानून बनाना (Law-making):** यह विधायिका का सबसे महत्वपूर्ण कार्य है। यह नए कानून बनाती है, मौजूदा कानूनों में संशोधन करती है, और अनुपयोगी कानूनों को निरस्त करती है।
- **नीति-निर्माण और सार्वजनिक मुद्दों पर चर्चा:** विधायिका राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय महत्व के विभिन्न मुद्दों पर बहस और चर्चा के लिए एक मंच प्रदान करती है। यह सरकार की नीतियों की समीक्षा करती है और वैकल्पिक नीतियां प्रस्तुत कर सकती है।
- **कार्यपालिका पर नियंत्रण:** विधायिका कार्यपालिका पर विभिन्न तरीकों से नियंत्रण रखती है। इसमें प्रश्नकाल, शून्यकाल, अविश्वास प्रस्ताव , निंदा प्रस्ताव , स्थगन प्रस्ताव और बजट पर बहस शामिल है। यह सुनिश्चित करती है कि कार्यपालिका अपनी शक्तियों का दुरुपयोग न करे और जनता के प्रति जवाबदेह बनी रहे।
- **वित्तीय नियंत्रण:** विधायिका का सरकार के वित्त पर पूर्ण नियंत्रण होता है। सरकार कोई भी कर नहीं लगा सकती या कोई भी पैसा खर्च नहीं कर सकती जब तक कि उसे विधायिका द्वारा अधिकृत न किया जाए (अनुच्छेद 265)। बजट को विधायिका द्वारा अनुमोदित किया जाना आवश्यक है।
- **संविधान संशोधन:** विधायिका के पास संविधान में संशोधन करने की शक्ति होती है , हालांकि यह प्रक्रिया आमतौर पर कठोर होती है ताकि संविधान की सर्वोच्चता बनी रहे।
- **निर्वाचन संबंधी कार्य:** कुछ देशों में विधायिका के सदस्य राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति जैसे पदों के चुनाव में भाग लेते हैं। भारत में, संसद के सदस्य राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के चुनाव में भाग लेते हैं।
- **न्यायिक कार्य (सीमित):** कुछ देशों में , विधायिका के पास कुछ न्यायिक शक्तियां भी होती हैं , जैसे महाभियोग की कार्यवाही (जैसे भारत में राष्ट्रपति या न्यायाधीशों के खिलाफ)।

संरचना (भारत के संदर्भ में):

भारत में, केंद्रीय स्तर पर विधायिका को संसद (Parliament) कहा जाता है, जिसके दो सदन हैं:

- **लोकसभा (House of the People):** यह निचला सदन है , जिसके सदस्य सीधे जनता द्वारा चुने जाते हैं। यह जनता की इच्छा का प्रतिनिधित्व करती है।
- **राज्यसभा (Council of States):** यह ऊपरी सदन है , जो राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों का प्रतिनिधित्व करती है। इसके सदस्य राज्य विधानसभाओं के सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के माध्यम से चुने जाते हैं।

राज्यों में, इसे राज्य विधानमंडल कहा जाता है , जिसमें विधानसभा (सभी राज्यों में) और कुछ राज्यों में विधान परिषद भी होती है।

2. कार्यपालिका (Executive):

कार्यपालिका सरकार का वह अंग है जिसका मुख्य कार्य **कानूनों को लागू करना और प्रशासन का संचालन** करना है। यह सरकार की नीतियों को कार्यान्वित करती है और दिन-प्रतिदिन के शासन का प्रबंधन करती है।

मुख्य कार्य:

- **कानूनों का क्रियान्वयन:** कार्यपालिका का प्राथमिक कार्य विधायिका द्वारा बनाए गए कानूनों और नीतियों को लागू करना है।
- **नीति-निर्माण:** यद्यपि विधायिका कानून बनाती है, कार्यपालिका ही अक्सर नीतियों का मसौदा तैयार करती है और उन्हें विधायिका के सामने प्रस्तुत करती है।
- **प्रशासन का संचालन:** इसमें सरकारी विभागों का प्रबंधन करना , सार्वजनिक सेवाओं को प्रदान करना , कर्मचारियों की नियुक्ति करना और दैनिक प्रशासनिक कार्यों को संभालना शामिल है।

- **विदेशी संबंध:** कार्यपालिका ही देश के विदेशी संबंधों का संचालन करती है , संधियाँ करती है, और अंतर्राष्ट्रीय समझौतों में भाग लेती है।
- **सैन्य और सुरक्षा:** यह देश की रक्षा और आंतरिक सुरक्षा के लिए जिम्मेदार होती है , जिसमें सेना, पुलिस और खुफिया एजेंसियों का संचालन शामिल है।
- **आपातकालीन शक्तियाँ:** कार्यपालिका के पास (जैसे भारत में राष्ट्रपति के पास) आपातकाल के दौरान विशेष शक्तियाँ होती हैं, जैसे कि राष्ट्रीय आपातकाल या राष्ट्रपति शासन लगाना।

संरचना (भारत के संदर्भ में):

भारत में कार्यपालिका दो प्रकार की होती है:

- **स्थायी कार्यपालिका (Permanent Executive):** इसमें सिविल सेवक (नौकरशाही) शामिल होते हैं , जो योग्यता के आधार पर भर्ती किए जाते हैं और अपनी सेवाकाल तक पद पर बने रहते हैं, चाहे सरकार बदल जाए।
- **राजनीतिक कार्यपालिका (Political Executive):** इसमें राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और मंत्रिपरिषद शामिल होते हैं। ये लोग सीधे जनता द्वारा या विधायिका के माध्यम से चुने जाते हैं और एक निश्चित कार्यकाल के लिए पद पर रहते हैं।
  - **नाममात्र की कार्यपालिका:** राष्ट्रपति (भारत में) - यह राज्य का प्रमुख होता है और सभी निर्णय उसके नाम से लिए जाते हैं, लेकिन वास्तविक शक्तियाँ उसके पास नहीं होतीं।
  - **वास्तविक कार्यपालिका:** प्रधानमंत्री और मंत्रिपरिषद (भारत में) - यह सरकार का प्रमुख होता है और वास्तविक निर्णय लेता है। यह विधायिका के प्रति जवाबदेह होता है।

राज्यों में, राज्यपाल नाममात्र का प्रमुख होता है, जबकि मुख्यमंत्री और उसकी मंत्रिपरिषद वास्तविक कार्यपालिका होते हैं।

3. न्यायपालिका (Judiciary):

न्यायपालिका सरकार का वह अंग है जिसका मुख्य कार्य **कानूनों की व्याख्या करना, न्याय प्रदान करना और संविधान की रक्षा करना** है। यह सुनिश्चित करती है कि कानून निष्पक्ष रूप से लागू हों और नागरिकों के अधिकारों की रक्षा हो।

मुख्य कार्य:

- **कानूनों की व्याख्या:** न्यायपालिका कानूनों का अर्थ स्पष्ट करती है जब उनके आवेदन में कोई अस्पष्टता या विवाद होता है।
- **न्याय प्रदान करना:** यह आपराधिक और दीवानी मामलों में निर्णय सुनाती है , विवादों को हल करती है और दोषियों को दंडित करती है।
- **मौलिक अधिकारों का संरक्षण:** न्यायपालिका नागरिकों के मौलिक अधिकारों की संरक्षक होती है। यदि किसी नागरिक के अधिकारों का उल्लंघन होता है, तो वह न्यायपालिका का दरवाजा खटखटा सकता है।
- **संविधान की रक्षा (Judicial Review):** न्यायपालिका के पास न्यायिक समीक्षा (Judicial Review) की शक्ति होती है, जिसके तहत यह विधायिका द्वारा बनाए गए कानूनों या कार्यपालिका के कार्यों की संवैधानिकता की जांच कर सकती है। यदि कोई कानून या कार्य संविधान के विरुद्ध पाया जाता है, तो उसे असंवैधानिक घोषित किया जा सकता है। यह संविधान की सर्वोच्चता बनाए रखती है।
- **केंद्र और राज्यों के बीच विवादों का निपटारा:** संघीय व्यवस्था में, न्यायपालिका केंद्र और राज्यों के बीच या राज्यों के बीच उत्पन्न होने वाले विवादों का निपटारा करती है।
- **सलाहकारी कार्य:** कुछ देशों में (जैसे भारत में सर्वोच्च न्यायालय), न्यायपालिका राष्ट्रपति को महत्वपूर्ण कानूनी मामलों पर सलाह दे सकती है।

संरचना (भारत के संदर्भ में):

भारत में एक एकीकृत और स्वतंत्र न्यायपालिका है:

- **सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court):** यह देश का सर्वोच्च न्यायालय है और संविधान का अंतिम व्याख्याकार है।
- **उच्च न्यायालय (High Courts):** ये राज्यों के सर्वोच्च न्यायालय हैं।
- **अधीनस्थ न्यायालय (Subordinate Courts):** ये जिला और निचले स्तर के न्यायालय होते हैं।

न्यायपालिका की स्वतंत्रता सुनिश्चित करने के लिए न्यायाधीशों की नियुक्ति प्रक्रिया , कार्यकाल की सुरक्षा और वेतन व भत्तों के संबंध में विशेष प्रावधान किए गए हैं।

शक्तियों का पृथक्करण और नियंत्रण एवं संतुलन $eparation of Powers and Checks and Balances):

आधुनिक लोकतांत्रिक राज्यों में, सरकार के इन तीनों अंगों को एक-दूसरे से स्वतंत्र रखा जाता है ताकि शक्ति का केंद्रीकरण न हो और तानाशाही का उदय न हो। इसे 'शक्तियों का पृथक्करण' का सिद्धांत कहते हैं। हालांकि, ये अंग पूरी तरह से स्वतंत्र

नहीं होते, बल्कि एक-दूसरे पर कुछ हद तक नियंत्रण भी रखते हैं, जिसे 'नियंत्रण एवं संतुलन' (Checks and Balances) का सिद्धांत कहा जाता है।

- **उदाहरण:**
  - o विधायिका कार्यपालिका पर प्रश्न पूछकर, अविश्वास प्रस्ताव लाकर और बजट को अस्वीकार करके नियंत्रण रखती है।
  - o कार्यपालिका विधायिका द्वारा पारित कानूनों को लागू करती है, और राष्ट्रपति के पास विधेयकों पर वीटो का अधिकार होता है।
  - o न्यायपालिका विधायिका द्वारा बनाए गए कानूनों और कार्यपालिका के कार्यों की संवैधानिकता की जांच करके उन पर नियंत्रण रखती है।
  - o विधायिका न्यायाधीशों पर महाभियोग चला सकती है।

यह प्रणाली यह सुनिश्चित करती है कि सरकार का कोई भी अंग अत्यधिक शक्तिशाली न हो जाए और शक्ति का दुरुपयोग न हो। यह एक लोकतांत्रिक शासन प्रणाली की स्थिरता और नागरिकों के अधिकारों की रक्षा के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

प्रश्न न0 3– शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए?

उत्तर– शक्ति पृथक्करण का सिद्धांत (Doctrine of Separation of Powers) राजनीतिक विज्ञान और संवैधानिक कानून का एक मूलभूत सिद्धांत है जो सरकार की शक्ति को विभिन्न अंगों में विभाजित करने की वकालत करता है ताकि शक्ति का केंद्रीकरण रोका जा सके और नागरिक स्वतंत्रता की रक्षा की जा सके। यह सिद्धांत इस विचार पर आधारित है कि यदि सरकार की समस्त शक्तियां एक ही व्यक्ति या संस्था के हाथों में केंद्रित हो जाएं, तो इससे निरंकुशता और अत्याचार की संभावना बढ़ जाती है।

पृष्ठभूमि और विकास:

शक्ति पृथक्करण का विचार प्राचीन यूनानी विचारकों जैसे अरस्तू और रोमन गणराज्य में भी पाया जाता था। हालांकि, इस सिद्धांत को आधुनिक संवैधानिक सिद्धांत के रूप में विकसित करने का श्रेय मुख्य रूप से **जॉन लॉक (John Locke)** और विशेष रूप से **बैरन डी मॉन्टेस्क्यू (Baron de Montesquieu)** को जाता है।

- **जॉन लॉक (17वीं शताब्दी):** अपनी पुस्तक "टू ट्रीटीज ऑफ गवर्नमेंट" में लॉक ने सरकार की शक्तियों को तीन भागों में विभाजित करने का प्रस्ताव रखा:
  - o **विधायी शक्ति:** कानून बनाने की शक्ति।
  - o **कार्यकारी शक्ति:** कानूनों को लागू करने की शक्ति।
  - o **संघीय शक्ति (Federative Power):** युद्ध और शांति, संधियाँ और अंतर्राष्ट्रीय संबंध बनाने की शक्ति। लॉक ने कार्यकारी और संघीय शक्तियों को एक ही हाथ में रखने का सुझाव दिया, लेकिन उन्होंने विधायी और कार्यकारी शक्तियों के पृथक्करण पर जोर दिया।
- **मॉन्टेस्क्यू (18वीं शताब्दी):** फ्रांसीसी दार्शनिक मॉन्टेस्क्यू ने अपनी प्रसिद्ध कृति "द स्पिरिट ऑफ लॉज़" (De l'esprit des lois, 1748) में शक्ति पृथक्करण के सिद्धांत को व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत किया। उन्होंने ब्रिटिश संवैधानिक व्यवस्था का अध्ययन किया और निष्कर्ष निकाला कि राजनीतिक स्वतंत्रता को तभी सुनिश्चित किया जा सकता है जब सरकार की तीन प्रमुख शक्तियों को तीन अलग-अलग अंगों में विभाजित किया जाए:
  - o **विधायी शक्ति (Legislative Power):** कानून बनाने का अधिकार।
  - o **कार्यकारी शक्ति (Executive Power):** कानूनों को लागू करने और प्रशासन चलाने का अधिकार।
  - o **न्यायिक शक्ति (Judicial Power):** कानूनों की व्याख्या करने, न्याय प्रदान करने और विवादों को हल करने का अधिकार।

मॉन्टेस्क्यू का तर्क था कि यदि इन तीनों शक्तियों को एक ही व्यक्ति या संस्था में केंद्रित कर दिया जाए, तो स्वतंत्रता समाप्त हो जाएगी। उनके शब्दों में, "जब विधायिका और कार्यपालिका शक्तियां एक ही व्यक्ति या एक ही निकाय में संयुक्त हो जाती हैं, तो कोई स्वतंत्रता नहीं होती... यदि न्यायपालिका शक्ति विधायी और कार्यकारी शक्ति से अलग नहीं होती तो भी स्वतंत्रता नहीं होती।"

सिद्धांत के उद्देश्य:

शक्ति पृथक्करण का सिद्धांत मुख्य रूप से निम्नलिखित उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयास करता है:

1. **शक्ति का दुरुपयोग रोकना:** यह सुनिश्चित करना कि कोई भी एक व्यक्ति या समूह अत्यधिक शक्तिशाली न हो जाए और निरंकुशता की ओर न बढ़े।

2. **नागरिक स्वतंत्रता और अधिकारों की रक्षा:** जब शक्ति को विभाजित किया जाता है, तो यह नागरिकों की स्वतंत्रता के लिए एक सुरक्षा कवच प्रदान करता है, क्योंकि कोई भी एक अंग उनके अधिकारों का आसानी से उल्लंघन नहीं कर सकता।
3. **दक्षता और विशेषज्ञता:** प्रत्येक अंग अपने विशिष्ट कार्य में विशेषज्ञता प्राप्त कर सकता है, जिससे शासन अधिक कुशल बनता है।
4. **सरकार की जवाबदेही:** प्रत्येक अंग अपने निर्धारित क्षेत्र में कार्य करता है और दूसरों के प्रति कुछ हद तक जवाबदेह होता है।

सिद्धांत के प्रकार:

शक्ति पृथक्करण के सिद्धांत को व्यवहार में दो मुख्य तरीकों से देखा जा सकता है:

1. **कठोर पृथक्करण (Strict Separation):** यह सिद्धांत का आदर्शवादी रूप है, जहाँ तीनों अंगों को पूरी तरह से अलग और स्वतंत्र रखा जाता है, ताकि कोई भी अंग दूसरे के कार्यों में हस्तक्षेप न करे। यह आमतौर पर अमेरिकी राष्ट्रपति प्रणाली में देखा जाता है।
   - **उदाहरण (संयुक्त राज्य अमेरिका):**
     - राष्ट्रपति (कार्यपालिका) कांग्रेस (विधायिका) का सदस्य नहीं हो सकता।
     - कांग्रेस द्वारा पारित कानूनों को राष्ट्रपति वीटो कर सकता है।
     - न्यायपालिका (सर्वोच्च न्यायालय) कांग्रेस के कानूनों और राष्ट्रपति के कार्यों की संवैधानिकता की जांच कर सकती है (न्यायिक समीक्षा)।
     - न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति करता है लेकिन सीनेट की पुष्टि आवश्यक है।

2. **नियंत्रण एवं संतुलन (Checks and Balances):** यह शक्ति पृथक्करण का अधिक व्यावहारिक रूप है, जहाँ अंग अलग-अलग होते हैं लेकिन एक-दूसरे पर कुछ हद तक नियंत्रण भी रखते हैं। यह सुनिश्चित करता है कि कोई भी अंग अपनी शक्तियों का अतिक्रमण न करे। अधिकांश आधुनिक लोकतंत्र इस प्रणाली का पालन करते हैं।
   - **उदाहरण (भारत):**
     - **विधायिका कार्यपालिका पर नियंत्रण:** संसद (विधायिका) अविश्वास प्रस्ताव के माध्यम से मंत्रिपरिषद (कार्यपालिका) को हटा सकती है। यह कानूनों को पारित करती है और बजट को मंजूरी देती है।
     - **कार्यपालिका विधायिका पर नियंत्रण:** राष्ट्रपति (नाममात्र की कार्यपालिका) संसद के सत्र बुलाता है, सत्रावसान करता है और लोकसभा को भंग कर सकता है। उसके पास विधेयकों पर वीटो का अधिकार होता है।
     - **न्यायपालिका विधायिका और कार्यपालिका पर नियंत्रण:** न्यायपालिका न्यायिक समीक्षा के माध्यम से संसद द्वारा बनाए गए कानूनों और कार्यपालिका के कार्यों की संवैधानिकता की जांच कर सकती है।
     - **विधायिका न्यायपालिका पर नियंत्रण:** संसद न्यायाधीशों को महाभियोग के माध्यम से पद से हटा सकती है।

शक्ति पृथक्करण का महत्व:

- **तानाशाही की रोकथाम:** यह सिद्धांत किसी एक शाखा को अत्यधिक शक्ति प्राप्त करने और तानाशाही में बदलने से रोकता है।
- **नागरिक स्वतंत्रता का संरक्षण:** यह व्यक्तियों के अधिकारों और स्वतंत्रता के लिए एक सुरक्षा कवच प्रदान करता है।
- **प्रशासनिक दक्षता:** प्रत्येक अंग अपने विशिष्ट कार्य में विशेषज्ञता प्राप्त करता है, जिससे शासन अधिक कुशल बनता है।
- **जवाबदेही:** प्रत्येक अंग अपने निर्धारित क्षेत्र में कार्य करता है और अन्य अंगों के प्रति कुछ हद तक जवाबदेह होता है।
- **स्थिरता:** यह राजनीतिक प्रणाली में स्थिरता लाता है, क्योंकि कोई भी एक अंग मनमानी नहीं कर सकता।

आलोचनाएँ और सीमाएँ:

शक्ति पृथक्करण के सिद्धांत की कुछ आलोचनाएँ भी की जाती हैं:

1. **पूर्ण पृथक्करण असंभव:** व्यवहार में, सरकार के तीनों अंगों को पूरी तरह से अलग करना संभव नहीं है। उनमें से प्रत्येक को प्रभावी ढंग से कार्य करने के लिए एक-दूसरे के साथ समन्वय और सहयोग करना पड़ता है।
2. **दक्षता में बाधा:** पूर्ण पृथक्करण सरकार के कामकाज में बाधा डाल सकता है और निर्णय लेने की प्रक्रिया को धीमा कर सकता है।
3. **जटिलता:** यह सरकार की संरचना को जटिल बना सकता है और जनता के लिए समझना मुश्किल हो सकता है।

4. **जिम्मेदारी की कमी:** कुछ आलोचक तर्क देते हैं कि यह जिम्मेदारी को फैला देता है , जिससे यह निर्धारित करना मुश्किल हो जाता है कि किसी विशेष विफलता के लिए कौन जिम्मेदार है।
5. **आधुनिक कल्याणकारी राज्य में प्रासंगिकता:** आधुनिक कल्याणकारी राज्य में सरकार के कार्य बहुत बढ़ गए हैं , और कार्यपालिका की भूमिका प्रमुख हो गई है। ऐसे में पूर्ण पृथक्करण की अवधारणा कम प्रासंगिक हो जाती है।

निष्कर्ष:

शक्ति पृथक्करण का सिद्धांत एक आदर्शवादी अवधारणा है जिसका उद्देश्य शक्ति के दुरुपयोग को रोकना और स्वतंत्रता की रक्षा करना है। हालांकि , आधुनिक शासन प्रणालियों में इसका 'नियंत्रण एवं संतुलन ' के सिद्धांत के साथ मिश्रण अधिक व्यवहार्य और प्रभावी पाया गया है। अधिकांश लोकतांत्रिक देशों में , सरकार के अंगों के बीच पूर्ण अलगाव के बजाय कार्यात्मक पृथक्करण के साथ-साथ एक-दूसरे पर नियंत्रण और संतुलन की एक प्रणाली अपनाई जाती है। यह प्रणाली यह सुनिश्चित करती है कि कोई भी अंग अत्यधिक शक्तिशाली न हो और सरकार जवाबदेह और न्यायपूर्ण तरीके से कार्य करे। भारतीय संविधान भी शक्ति पृथक्करण के इस व्यावहारिक रूप का एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

प्रश्न न0 4– दबाव समूह किसे कहते है? दबाव समूह का राजनीतिक पार्टियों एवं सरकार पर क्या प्रभाव पड़ता है?

उत्तर– सामान्य अर्थ में, समूह (Group) व्यक्तियों के ऐसे संग्रह को कहते हैं जो किसी साझा उद्देश्य , हित, पहचान या संबंध के आधार पर एक-दूसरे के साथ अंतःक्रिया करते हैं और जिनके व्यवहार एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। एक समूह में व्यक्तियों के बीच कुछ हद तक जागरूकता, एकजुटता और सदस्यता की भावना होती है।

समाजशास्त्र और मनोविज्ञान में समूह की विभिन्न परिभाषाएँ दी गई हैं, लेकिन मुख्य सार यही है कि:

- दो या दो से अधिक व्यक्ति हों।
- उनके बीच किसी न किसी प्रकार का संबंध या अंतःक्रिया हो।
- उनके कुछ साझा लक्ष्य, हित या मूल्य हों।
- वे एक-दूसरे के व्यवहार को प्रभावित करते हों।

उदाहरण के लिए, एक परिवार, एक खेल टीम, एक छात्र संघ, या एक व्यापारिक संगठन सभी समूह हैं।

दबाव समूह (Pressure Group)

दबाव समूह एक विशेष प्रकार का समूह है जो सरकार पर **बिना चुनाव लड़े या सीधे राजनीतिक सत्ता हासिल करने का प्रयास किए बिना** सार्वजनिक नीतियों और निर्णयों को प्रभावित करने का प्रयास करता है। ये समूह अपने सदस्यों के विशिष्ट हितों को बढ़ावा देने और उनकी रक्षा करने के लिए काम करते हैं। उन्हें 'हित समूह' (Interest Group) या 'लॉबी समूह' (Lobby Group) भी कहा जाता है।

दबाव समूहों की प्रमुख विशेषताएँ:

- **विशिष्ट हित:** ये किसी विशेष वर्ग, पेशे, धर्म, उद्योग या मुद्दे के हितों का प्रतिनिधित्व करते हैं (जैसे किसान संघ, मजदूर संघ, पर्यावरण संगठन, व्यापार मंडल)।
- **गैर-चुनावी:** ये चुनावों में सीधे उम्मीदवार नहीं खड़े करते और सरकार बनाने का प्रयास नहीं करते।
- **अप्रत्यक्ष प्रभाव:** ये अपनी मांगों को मनवाने के लिए सरकार , विधायिका और राजनीतिक दलों पर अप्रत्यक्ष रूप से दबाव डालते हैं।
- **संगठित:** ये आमतौर पर संगठित होते हैं और उनके पास सदस्यता, संरचना और नेतृत्व होता है।
- **आंदोलनकारी या वकालतकारी:** ये अपनी मांगों को उठाने के लिए विभिन्न तरीकों (विरोध प्रदर्शन , हड़ताल, लॉबिंग, मीडिया अभियान, याचिकाएँ) का उपयोग करते हैं।

दबाव समूह का राजनीतिक पार्टियों एवं सरकार पर प्रभाव

दबाव समूह लोकतंत्र के कामकाज का एक अभिन्न अंग हैं। वे राजनीतिक पार्टियों और सरकार दोनों पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं:

1. राजनीतिक पार्टियों पर प्रभाव:

दबाव समूह राजनीतिक पार्टियों के लिए महत्वपूर्ण होते हैं क्योंकि वे उन्हें मतदाताओं , संसाधनों और विशिष्ट मुद्दों पर जानकारी प्रदान करते हैं।

- **चुनावी समर्थन और धन:**
  - o दबाव समूह चुनावों के दौरान अपनी पसंद के राजनीतिक दलों या उम्मीदवारों को वित्तीय सहायता, स्वयंसेवक और प्रचार समर्थन प्रदान करते हैं।
  - o वे अपने सदस्यों को किसी विशेष पार्टी के पक्ष में मतदान करने के लिए प्रोत्साहित कर सकते हैं। यह पार्टियों के लिए महत्वपूर्ण है, खासकर जब वे चुनाव लड़ रहे हों।

- **नीतिगत एजेंडा को प्रभावित करना:**
  - o दबाव समूह राजनीतिक दलों के नीतिगत एजेंडे को प्रभावित करने का प्रयास करते हैं। वे अपने हितों से संबंधित मुद्दों को पार्टी के घोषणापत्र और नीतिगत प्रस्तावों में शामिल करवाने की कोशिश करते हैं।
  - o उदाहरण के लिए , एक किसान संघ यह सुनिश्चित करने की कोशिश करेगा कि कृषि ऋण माफी या न्यूनतम समर्थन मूल्य जैसे मुद्दे राजनीतिक दल के एजेंडे में हों।
- **जानकारी और विशेषज्ञता प्रदान करना:**
  - o दबाव समूह अक्सर अपने विशिष्ट क्षेत्रों में विशेषज्ञता रखते हैं। वे राजनीतिक दलों को संबंधित मुद्दों पर मूल्यवान जानकारी, शोध और तकनीकी ज्ञान प्रदान करते हैं।
  - o यह जानकारी पार्टियों को अधिक प्रभावी नीतियां बनाने और मतदाताओं की समस्याओं को समझने में मदद करती है।
- **उम्मीदवार चयन में भूमिका:**
  - o कुछ दबाव समूह राजनीतिक दलों के अंदर अपने समर्थक उम्मीदवार तैयार करते हैं या मौजूदा नेताओं को अपने हितों के प्रति संवेदनशील बनाने का प्रयास करते हैं।
  - o वे पार्टियों के भीतर अपने समर्थक गुट बना सकते हैं ताकि टिकट वितरण या पार्टी के आंतरिक निर्णयों को प्रभावित किया जा सके।
- **पार्टी की नीतियों की आलोचना और प्रशंसा:**
  - o दबाव समूह आवश्यकता पड़ने पर राजनीतिक दलों की नीतियों की खुले तौर पर आलोचना या प्रशंसा करते हैं। यह सार्वजनिक बहस को बढ़ावा देता है और पार्टियों को जनता के प्रति अधिक जवाबदेह बनाता है।
- **एक पार्टी से दूसरी पार्टी में समर्थन का स्थानांतरण:**
  - o यदि कोई राजनीतिक दल दबाव समूह के हितों की अनदेखी करता है, तो दबाव समूह भविष्य के चुनावों में अपना समर्थन किसी अन्य पार्टी को स्थानांतरित कर सकता है। यह पार्टियों पर उनकी मांगों को गंभीरता से लेने का दबाव डालता है।

2. सरकार पर प्रभाव:

दबाव समूह सरकार की नीति-निर्माण प्रक्रिया को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं , क्योंकि वे सीधे कानूनों और नियमों के क्रियान्वयन से संबंधित होते हैं।

- **लॉबिंग (Lobbying):**
  - o दबाव समूह सरकार के मंत्रियों, नौकरशाहों, सांसदों और अन्य निर्णय निर्माताओं से सीधे संपर्क स्थापित करते हैं। वे अपनी मांगों और तर्कों को उनके सामने रखते हैं ताकि नीतियों को अपने पक्ष में मोड़ा जा सके। इसे लॉबिंग कहते हैं।
  - o यह विधायकों को अपने सदस्यों के हितों के अनुकूल कानून बनाने के लिए प्रेरित करने का एक प्रभावी तरीका है।
- **नीति-निर्माण को प्रभावित करना:**
  - o सरकार कानून बनाते समय या नीतियां तैयार करते समय दबाव समूहों द्वारा प्रस्तुत सूचनाओं और मांगों पर विचार करती है। दबाव समूह नीति के मसौदे में संशोधन का प्रस्ताव कर सकते हैं या नए कानूनों की मांग कर सकते हैं।
  - o कई बार, सरकार विशिष्ट क्षेत्रों से संबंधित नीतियों पर दबाव समूहों के साथ परामर्श करती है।
- **प्रदर्शन और विरोध:**
  - o यदि सरकार दबाव समूहों की मांगों पर ध्यान नहीं देती , तो वे हड़ताल , प्रदर्शन, रैलियां, धरना और अन्य आंदोलनकारी तरीकों का सहारा लेते हैं।
  - o ये प्रदर्शन सरकार पर सार्वजनिक दबाव डालते हैं और उसे अपनी नीतियों पर पुनर्विचार करने के लिए मजबूर कर सकते हैं।
- **जनमत को प्रभावित करना:**
  - o दबाव समूह मीडिया अभियानों, विज्ञापनों और सार्वजनिक बैठकों के माध्यम से जनमत को अपने पक्ष में करने का प्रयास करते हैं। जब जनमत उनके पक्ष में होता है, तो सरकार पर उनकी मांगों को स्वीकार करने का दबाव बढ़ जाता है।
- **विशेषज्ञ सलाह और सूचना:**

- o सरकार को विभिन्न मुद्दों पर जानकारी और विशेषज्ञ सलाह की आवश्यकता होती है। दबाव समूह अक्सर अपने क्षेत्र के विशेषज्ञ होते हैं और वे सरकार को बहुमूल्य जानकारी प्रदान कर सकते हैं, जिससे सरकार को सूचित निर्णय लेने में मदद मिलती है।
- **अदालती कार्यवाही (Litigation):**
  - o कुछ दबाव समूह सरकार की नीतियों या कानूनों को चुनौती देने के लिए अदालतों का सहारा लेते हैं। वे जनहित याचिकाएं (PILs) दायर कर सकते हैं ताकि सरकार को अपने कार्यों के लिए जवाबदेह ठहराया जा सके।
- **प्रतिनिधित्व और संचार का माध्यम:**
  - o दबाव समूह जनता और सरकार के बीच एक सेतु का काम करते हैं। वे सरकार तक विभिन्न समूहों की मांगों, शिकायतों और चिंताओं को पहुंचाते हैं, जिससे सरकार को जनता की नब्ज समझने में मदद मिलती है।

दबाव समूहों के प्रभाव के सकारात्मक और नकारात्मक पहलू:

सकारात्मक पहलू:

- **लोकतांत्रिक भागीदारी को बढ़ावा:** ये लोगों को राजनीति में भाग लेने के लिए एक मंच प्रदान करते हैं, भले ही वे चुनाव में सक्रिय न हों।
- **सरकार को जवाबदेह बनाना:** ये सरकार को जनता के विभिन्न वर्गों के प्रति अधिक जवाबदेह बनाते हैं।
- **विशेषज्ञता और जानकारी प्रदान करना:** ये नीति निर्माताओं को मूल्यवान जानकारी और विशेषज्ञ सलाह प्रदान करते हैं।
- **वंचित समूहों की आवाज:** ये समाज के कमजोर और वंचित वर्गों को अपनी आवाज उठाने का अवसर प्रदान करते हैं।

नकारात्मक पहलू:

- **अलोकतांत्रिक:** दबाव समूह चुनावों के माध्यम से नहीं चुने जाते, फिर भी वे नीतियों को प्रभावित करते हैं, जिससे लोकतांत्रिक प्रक्रिया पर सवाल उठते हैं।
- **संकीर्ण हित:** कभी-कभी वे केवल अपने संकीर्ण हितों की पूर्ति पर ध्यान केंद्रित करते हैं, जिससे व्यापक सार्वजनिक हित की अनदेखी हो सकती है।
- **भ्रष्टाचार और गुप्त व्यवहार:** कुछ दबाव समूह अपने प्रभाव के लिए अनैतिक साधनों (जैसे रिश्वत) का उपयोग कर सकते हैं, जिससे भ्रष्टाचार बढ़ सकता है।
- **असमानता:** शक्तिशाली और धनी दबाव समूह छोटे और कम संगठित समूहों की तुलना में अधिक प्रभावशाली होते हैं, जिससे नीति निर्माण में असमानता पैदा होती है।

निष्कर्ष रूप में, दबाव समूह आधुनिक लोकतंत्रों में एक अपरिहार्य शक्ति हैं। वे राजनीतिक दलों और सरकार दोनों पर नीतियों को प्रभावित करने, संसाधनों को जुटाने और जनमत को आकार देने के लिए विभिन्न प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष तरीकों का उपयोग करते हैं। जबकि वे लोकतांत्रिक भागीदारी और जवाबदेही में योगदान करते हैं, उनकी गतिविधियों पर निगरानी और विनियमन महत्वपूर्ण है ताकि वे सार्वजनिक हित की कीमत पर संकीर्ण हितों को बढ़ावा न दें।

प्रश्न न0 5– ब्रिटेन का संविधान अलिखित संविधान है। परम्पराओं के आधार पर विधि की व्याख्या कीजिए?

उत्तर– ब्रिटेन का संविधान विश्व के उन गिने-चुने संविधानों में से एक है जिसे 'अलिखित' (Unwritten) कहा जाता है। हालाँकि, यह कहना पूरी तरह सही नहीं होगा कि यह पूरी तरह से अलिखित है, क्योंकि इसके कई हिस्से लिखित रूप में मौजूद हैं। इसे 'अलिखित' कहने का अर्थ यह है कि यह किसी एक दस्तावेज़ में संकलित नहीं है, बल्कि यह विभिन्न स्रोतों जैसे अधिनियमों, न्यायिक निर्णयों, और विशेष रूप से **परंपराओं (Conventions)** से विकसित हुआ है। वास्तव में, ब्रिटिश संविधान का एक महत्वपूर्ण हिस्सा इन्हीं परंपराओं पर आधारित है, और इन्हीं के आधार पर विधि (कानून) की व्याख्या और शासन का संचालन होता है।

ब्रिटेन के संविधान का 'अलिखित' स्वरूप:

ब्रिटेन का संविधान किसी एक 'संविधान' नामक दस्तावेज़ में नहीं लिखा गया है। यह कई स्रोतों से मिलकर बना है:

1. **संसदीय अधिनियम (Acts of Parliament):** जैसे मैग्ना कार्टा (1215), बिल ऑफ राइट्स (1689), एक्ट ऑफ सेटलमेंट (1701), पार्लियामेंट एक्ट (1911, 1949), यूरोपीय समुदाय अधिनियम (1972), मानवाधिकार अधिनियम (1998) आदि। ये लिखित कानून हैं और संविधान का हिस्सा हैं।
2. **न्यायिक निर्णय (Judicial Precedents):** न्यायालयों द्वारा दिए गए महत्वपूर्ण निर्णय, जो कानून की व्याख्या करते हैं और संवैधानिक सिद्धांतों को स्थापित करते हैं।
3. **संविधानिक परंपराएँ (Constitutional Conventions):** ये अलिखित नियम और प्रथाएँ हैं जो समय के साथ विकसित हुई हैं और राजनीतिक व्यवहार को नियंत्रित करती हैं।

4. **विद्वानों की टीकाएँ (Works of Authority):** डायसी (Dicey) और बैजहॉट (Bagehot) जैसे विद्वानों की पुस्तकें, जो संवैधानिक प्रथाओं और सिद्धांतों की व्याख्या करती हैं।
5. **यूरोपीय संघ का कानून (पूर्व में):** 1973 से 2020 तक, यूरोपीय संघ के कानून का भी ब्रिटिश कानून पर प्रभाव था।

इनमें से, 'परंपराएँ' ब्रिटिश संविधान को अद्वितीय बनाती हैं और इसकी अलिखित प्रकृति का प्रमुख कारण हैं।

परंपराएँ (Conventions) क्या हैं?

संविधानिक परंपराएँ अलिखित नियम और प्रथाएँ हैं जो राजनीतिक व्यवहार और संवैधानिक अभ्यास को नियंत्रित करती हैं। ये कानून की अदालत में कानूनी रूप से लागू करने योग्य नहीं होतीं, लेकिन राजनीतिक नैतिकता और व्यवहार के आधार पर उनका पालन किया जाता है। इनकी अनदेखी करने पर कानूनी नहीं, बल्कि राजनीतिक संकट या संवैधानिक गतिरोध पैदा हो सकता है।

परंपराओं के आधार पर विधि की व्याख्या:

ब्रिटेन में विधि की व्याख्या और शासन का संचालन बड़े पैमाने पर इन्हीं परंपराओं के आधार पर होता है। यह दर्शाता है कि कैसे अलिखित नियम एक सुचारु और प्रभावी संवैधानिक प्रणाली का निर्माण करते हैं।

1. **संवैधानिक राजतंत्र का संचालन (Constitutional Monarchy):**
   - **वास्तविक शक्ति प्रधानमंत्री के पास:** परंपरा के अनुसार, यद्यपि सम्राट (राजा/रानी) राज्य का मुखिया होता है और सभी कार्यकारी शक्तियाँ उसी में निहित होती हैं (कानूनी रूप से), वास्तविक कार्यकारी शक्ति प्रधानमंत्री और मंत्रिपरिषद के पास होती है। सम्राट केवल प्रधानमंत्री की सलाह पर कार्य करता है ("The Queen reigns but does not rule.")।
   - **सम्राट की भूमिका:** सम्राट के पास "सलाह देने, प्रोत्साहित करने और चेतावनी देने" का अधिकार होता है। यह एक परंपरा है कि सम्राट संसद द्वारा पारित विधेयकों को अपनी स्वीकृति देगा और कभी भी 'वीटो' का प्रयोग नहीं करेगा।
   - **प्रधानमंत्री की नियुक्ति:** सम्राट उस व्यक्ति को प्रधानमंत्री नियुक्त करेगा जो हाउस ऑफ कॉमन्स में बहुमत दल का नेता होता है। यह एक अलिखित परंपरा है, न कि कोई लिखित कानून।
2. **संसदीय संप्रभुता का संचालन (Parliamentary Sovereignty):**
   - **विधायिका की सर्वोच्चता:** सैद्धांतिक रूप से, ब्रिटिश संसद संप्रभु है और कोई भी कानून बना या रद्द कर सकती है। कोई भी न्यायालय संसदीय अधिनियम को असंवैधानिक घोषित नहीं कर सकता (जैसा कि न्यायिक समीक्षा के तहत अन्य देशों में होता है)।
   - **कार्यपालिका की जवाबदेही:** कार्यपालिका (मंत्रीगण) संसद के प्रति जवाबदेह होती है। परंपरा के अनुसार, मंत्रिपरिषद हाउस ऑफ कॉमन्स के प्रति सामूहिक रूप से जिम्मेदार होती है। यदि अविश्वास प्रस्ताव पारित होता है, तो सरकार को इस्तीफा देना पड़ता है। यह परंपरा संसदीय लोकतंत्र की आधारशिला है।
3. **मंत्रिमंडलीय सरकार का कामकाज (Cabinet Government):**
   - **सामूहिक उत्तरदायित्व (Collective Responsibility):** यह एक प्रमुख परंपरा है कि कैबिनेट के सभी सदस्य संसद के प्रति सामूहिक रूप से जिम्मेदार होते हैं। यदि कोई मंत्री कैबिनेट के किसी निर्णय से असहमत है, तो उसे या तो सार्वजनिक रूप से उस निर्णय का समर्थन करना होगा या इस्तीफा देना होगा।
   - **व्यक्तिगत उत्तरदायित्व (Individual Ministerial Responsibility):** प्रत्येक मंत्री अपने मंत्रालय के कार्यों के लिए संसद के प्रति व्यक्तिगत रूप से जिम्मेदार होता है। यदि कोई गंभीर गलती होती है, तो उसे इस्तीफा देना पड़ सकता है।
   - **प्रधानमंत्री की स्थिति:** प्रधानमंत्री, कैबिनेट का प्रमुख होने के नाते, कैबिनेट बैठकों की अध्यक्षता करता है और सरकार की नीतियों को दिशा देता है। यद्यपि उसके पास कानूनी रूप से बहुत कम शक्तियाँ हैं, परंपरा उसे अत्यधिक शक्तिशाली बनाती है।
4. **हाउस ऑफ लॉर्ड्स की भूमिका (House of Lords):**
   - **वित्तीय विधेयक:** परंपरा के अनुसार, हाउस ऑफ लॉर्ड्स (अपर हाउस) वित्तीय विधेयकों को अस्वीकार नहीं कर सकता। वे केवल उन्हें विलंबित कर सकते हैं।
   - **गैर-वित्तीय विधेयक:** गैर-वित्तीय विधेयकों को भी वे केवल एक निश्चित अवधि (पार्लियामेंट एक्ट 1911 और 1949 के अनुसार) के लिए विलंबित कर सकते हैं, उन्हें पूरी तरह से बाधित नहीं कर सकते। यह परंपरा हाउस ऑफ कॉमन्स की सर्वोच्चता को बनाए रखती है।
5. **शांति काल में सेना पर नियंत्रण:**

- o परंपरा के अनुसार, सेना को शांति काल में संसद की अनुमति के बिना स्थायी रूप से नहीं रखा जा सकता। यह नागरिक सरकार के सैन्य बल पर नियंत्रण सुनिश्चित करता है।

6. **विपक्ष की भूमिका (Role of Opposition):**
   - o **महामहिम का वफादार विपक्ष:** ब्रिटिश राजनीति में एक मजबूत परंपरा है कि विपक्ष को 'महामहिम का वफादार विपक्ष' (Her Majesty's Loyal Opposition) कहा जाता है। यह स्वीकार करता है कि विपक्ष सरकार की आलोचना करता है लेकिन देश के प्रति वफादार है।
   - o **छाया कैबिनेट (Shadow Cabinet):** विपक्ष के पास एक 'छाया कैबिनेट' होती है, जिसमें प्रत्येक सरकारी मंत्री के लिए एक विपक्षी 'छाया मंत्री' होता है। यह भी एक परंपरा है जो सरकार की नीतियों पर गहन निगरानी और वैकल्पिक नीतियों की पेशकश सुनिश्चित करती है।

7. **संवैधानिक संकटों का समाधान:**
   - o जब कोई संवैधानिक या राजनीतिक संकट उत्पन्न होता है, तो अक्सर परंपराएँ ही रास्ता दिखाती हैं। लिखित कानून की अनुपस्थिति में, अतीत की प्रथाएँ और स्थापित व्यवहार ही आगे बढ़ने का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

परंपराओं का महत्व और सीमाएँ:

महत्व:

- **लचीलापन:** परंपराएँ संविधान को अत्यधिक लचीला बनाती हैं, जिससे यह बदलती परिस्थितियों और समाज की जरूरतों के अनुसार अनुकूलित हो सकता है बिना किसी औपचारिक संशोधन प्रक्रिया के।
- **विकासवादी प्रकृति:** वे ब्रिटिश संविधान को एक 'जीवित' दस्तावेज़ बनाती हैं जो निरंतर विकसित होता रहता है।
- **व्यावहारिकता:** वे वास्तविक राजनीतिक व्यवहार और शक्ति संबंधों को दर्शाते हैं, जो अक्सर लिखित कानून से भिन्न हो सकते हैं।
- **निरंकुशता पर अंकुश:** यद्यपि कानूनी रूप से बाध्यकारी नहीं, लेकिन राजनीतिक नैतिकता और सार्वजनिक राय के दबाव के कारण उनका पालन किया जाता है, जिससे शक्ति के दुरुपयोग पर एक प्रभावी नैतिक अंकुश लगता है।

सीमाएँ/आलोचनाएँ:

- **अस्पष्टता:** परंपराएँ अलिखित होने के कारण अस्पष्ट हो सकती हैं, और कभी-कभी उनके सही अर्थ या लागू होने के दायरे को लेकर विवाद हो सकता है।
- **अस्थिरता की संभावना:** सैद्धांतिक रूप से, किसी भी सरकार द्वारा परंपराओं की अनदेखी की जा सकती है, जिससे संवैधानिक संकट उत्पन्न हो सकता है (हालांकि ऐसा बहुत कम होता है क्योंकि राजनीतिक परिणाम गंभीर हो सकते हैं)।
- **न्यायिक अप्रवर्तनीयता:** चूंकि वे कानूनी रूप से लागू करने योग्य नहीं हैं, इसलिए न्यायालय उन्हें लागू नहीं कर सकते। यह पूरी तरह से राजनीतिक नेताओं की इच्छा पर निर्भर करता है कि वे उनका पालन करें।
- **अधिग्रहण की संभावना:** एक शक्तिशाली सरकार या नेता द्वारा जानबूझकर परंपराओं का उल्लंघन किया जा सकता है, जिससे लोकतांत्रिक मूल्यों को खतरा हो सकता है।

निष्कर्ष:

ब्रिटेन का संविधान, अपनी 'अलिखित' प्रकृति और परंपराओं पर अत्यधिक निर्भरता के कारण अद्वितीय है। परंपराएँ ब्रिटिश संवैधानिक प्रणाली के वास्तविक कामकाज की आधारशिला हैं। वे कानूनों की व्याख्या करने, सरकार के अंगों के बीच संबंध स्थापित करने और राजनीतिक व्यवहार को विनियमित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। यद्यपि ये कानूनी रूप से बाध्यकारी नहीं हैं, लेकिन इनकी अनदेखी से गंभीर राजनीतिक परिणाम और संवैधानिक संकट पैदा हो सकते हैं। यह दर्शाता है कि एक मजबूत राजनीतिक संस्कृति और स्थापित प्रथाएँ एक लिखित संवैधानिक पाठ के बिना भी एक सफल लोकतांत्रिक प्रणाली का संचालन कर सकती हैं।

<u>प्रश्न न0 6–</u> विधि का शासन किसे कहते है? भारत में विधि शासन का महत्व क्या है?

<u>उत्तर–</u> विधि का शासन (Rule of Law) एक मूलभूत संवैधानिक सिद्धांत है जो यह बताता है कि एक देश में सभी व्यक्ति, संस्थाएँ और सरकार स्वयं भी कानून के अधीन हैं, न कि व्यक्तियों की मनमानी इच्छाओं या व्यक्तिगत शक्ति के। इसका सीधा अर्थ है कि "कानून का शासन होगा, न कि व्यक्तियों का शासन।" यह एक सुव्यवस्थित, न्यायपूर्ण और लोकतांत्रिक समाज की आधारशिला है।

इस अवधारणा को ब्रिटिश विधिवेत्ता **ए.वी. डाइसी (A.V. Dicey)** ने अपनी पुस्तक "लॉ ऑफ द कॉन्स्टिट्यूशन" (1885) में तीन मुख्य सिद्धांतों के रूप में प्रतिपादित किया था:

1. **विधि की सर्वोच्चता (Supremacy of Law):**

- इसका अर्थ है कि देश में कोई भी व्यक्ति, चाहे वह कितना भी उच्च पद पर क्यों न हो, कानून से ऊपर नहीं है।
- सरकार या सार्वजनिक अधिकारियों की कोई भी मनमानी या विवेकाधीन शक्ति नहीं होगी।
- किसी व्यक्ति को केवल कानून के उल्लंघन के लिए ही दंडित किया जा सकता है, किसी और कारण से नहीं। यानी, किसी को भी तब तक दंडित नहीं किया जा सकता जब तक कि उसने स्थापित कानून का स्पष्ट उल्लंघन न किया हो और यह साधारण कानूनी तरीके से साधारण न्यायालयों में सिद्ध न हो जाए।

2. **कानून के समक्ष समानता (Equality Before Law):**
   - इसका अर्थ है कि कानून सभी के लिए समान है और सभी लोग, चाहे उनकी स्थिति, रैंक, धर्म, जाति या लिंग कुछ भी हो, देश के सामान्य कानून के अधीन हैं।
   - कोई भी व्यक्ति कानून से ऊपर नहीं है और किसी को भी विशेष अधिकार या छूट नहीं मिलती।
   - सामान्य कानून अदालतों द्वारा सभी वर्गों पर समान कानून लागू किया जाएगा। डाइसी ने इस बात पर जोर दिया कि सरकारी अधिकारियों के लिए कोई विशेष न्यायाधिकरण या विशेष कानून नहीं होना चाहिए।
3. **विधि का सामान्य कानून का परिणाम है (Predominance of Legal Spirit / Judge-made Constitution):**
   - डाइसी का मानना था कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता और अधिकार लिखित संविधान के किसी प्रावधान से नहीं निकलते , बल्कि वे अदालतों द्वारा दिए गए न्यायिक निर्णयों और सामान्य कानून (Common Law) के परिणाम होते हैं।
   - उनका तर्क था कि न्यायालय ही इन अधिकारों और स्वतंत्रता के वास्तविक संरक्षक होते हैं, और अधिकारों को एक दस्तावेज़ में मात्र घोषित करने की तुलना में यदि वे न्यायालयों में लागू करने योग्य हों तो अधिक सुरक्षित होते हैं।

संक्षेप में, विधि का शासन मनमानी शक्ति को अस्वीकार करता है , सभी की कानून के समक्ष समानता पर जोर देता है , और एक स्वतंत्र न्यायपालिका की आवश्यकता पर बल देता है जो कानूनों की व्याख्या और प्रवर्तन करती है।

भारत में विधि का शासन का महत्व:

भारत ने ब्रिटेन से संसदीय प्रणाली और विधि का शासन का सिद्धांत अपनाया है। भारतीय संविधान की प्रस्तावना , मौलिक अधिकार, न्यायपालिका की स्वतंत्रता और संविधान की सर्वोच्चता जैसे प्रावधान स्पष्ट रूप से भारत में विधि के शासन के महत्व को दर्शाते हैं। भारतीय सर्वोच्च न्यायालय ने विधि के शासन को संविधान के **मूल ढांचे (Basic Structure)** का हिस्सा माना है, जिसका अर्थ है कि संसद भी इसमें बदलाव नहीं कर सकती।

भारत में विधि के शासन का महत्व निम्नलिखित बिंदुओं से स्पष्ट होता है:

1. **संवैधानिक सरकार का आधार:**
   - विधि का शासन यह सुनिश्चित करता है कि सरकार संविधान और कानून के अनुसार कार्य करे , न कि किसी व्यक्ति या समूह की इच्छा के अनुसार। यह मनमानी सरकार को रोकता है और एक संवैधानिक सरकार की स्थापना करता है।
   - भारत में, संविधान सर्वोच्च है और विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका तीनों ही संविधान से अपनी शक्तियाँ प्राप्त करते हैं और उसी के अधीन कार्य करते हैं।
2. **नागरिक अधिकारों और स्वतंत्रता का संरक्षण:**
   - विधि का शासन नागरिकों के मौलिक अधिकारों और स्वतंत्रता का सबसे बड़ा संरक्षक है। यह सुनिश्चित करता है कि किसी भी व्यक्ति को कानून के उल्लंघन के बिना उसकी स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जा सकता।
   - भारतीय संविधान में निहित मौलिक अधिकार (अनुच्छेद 12-35) विधि के शासन की भावना को दर्शाते हैं , जैसे अनुच्छेद 14 जो कानून के समक्ष समानता और कानूनों के समान संरक्षण की बात करता है।
3. **कानून के समक्ष समानता:**
   - भारत में, सभी नागरिक, चाहे वे किसी भी धर्म, जाति, लिंग, पद या आर्थिक स्थिति के हों, कानून के समक्ष समान हैं। प्रधानमंत्री से लेकर एक आम नागरिक तक , सभी पर समान कानून लागू होते हैं और सभी को समान न्यायालयों के अधीन न्याय प्राप्त होता है।
   - अनुच्छेद 14 इस सिद्धांत को स्पष्ट रूप से स्थापित करता है।
4. **स्वतंत्र और निष्पक्ष न्यायपालिका:**
   - विधि के शासन को बनाए रखने के लिए एक स्वतंत्र और निष्पक्ष न्यायपालिका अनिवार्य है। भारत में न्यायपालिका को कार्यपालिका और विधायिका के हस्तक्षेप से मुक्त रखा गया है ताकि वह बिना किसी डर या पक्षपात के कानूनों की व्याख्या कर सके और न्याय प्रदान कर सके।

- o सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों को न्यायिक समीक्षा की शक्ति प्राप्त है , जिसके तहत वे विधायिका द्वारा बनाए गए किसी भी कानून या कार्यपालिका के किसी भी आदेश को असंवैधानिक घोषित कर सकते हैं यदि वे संविधान या स्थापित कानूनों का उल्लंघन करते हैं। यह सरकार को अपनी शक्तियों का दुरुपयोग करने से रोकता है।

5. **न्याय और निष्पक्षता का आधार:**
   - o यह सुनिश्चित करता है कि न्याय निष्पक्ष और पारदर्शी तरीके से दिया जाए। कोई भी निर्णय व्यक्तिगत पूर्वाग्रह या शक्ति के आधार पर नहीं लिया जाएगा, बल्कि केवल कानून के आधार पर लिया जाएगा।
   - o यह आपराधिक न्याय प्रणाली में निष्पक्ष सुनवाई और उचित प्रक्रिया (Due Process) के सिद्धांतों को बढ़ावा देता है।
6. **पारदर्शिता और जवाबदेही:**
   - o विधि का शासन सरकार और उसके अधिकारियों को अपने कार्यों के लिए जवाबदेह बनाता है। हर सरकारी कार्रवाई कानूनी होनी चाहिए और इसका आधार कानून होना चाहिए।
   - o सूचना का अधिकार (RTI) जैसे कानून भी विधि के शासन के अनुरूप पारदर्शिता को बढ़ावा देते हैं।
7. **अराजकता और अराजकता की रोकथाम:**
   - o यदि कानून का शासन न हो , तो समाज में अराजकता और अव्यवस्था फैल सकती है , जहां शक्तिशाली व्यक्ति या समूह अपनी इच्छा थोप सकते हैं। विधि का शासन एक स्थिर और व्यवस्थित समाज के लिए आवश्यक है।
8. **प्रशासनिक कानून का विकास:**
   - o भारत में प्रशासनिक कानून का विकास विधि के शासन के सिद्धांतों पर आधारित है। यह सरकारी अधिकारियों की विवेकाधीन शक्तियों को नियंत्रित करता है और सुनिश्चित करता है कि प्रशासनिक कार्रवाई कानून के अनुरूप हो।

निष्कर्ष:

विधि का शासन भारतीय संवैधानिक व्यवस्था का एक अंतर्निहित और महत्वपूर्ण सिद्धांत है। यह केवल एक कानूनी अवधारणा नहीं, बल्कि एक नैतिक और राजनीतिक आदर्श है जो लोकतंत्र, समानता और न्याय की नींव रखता है। भारत में, संविधान, न्यायपालिका और विभिन्न वैधानिक प्रावधानों के माध्यम से विधि के शासन को लगातार बनाए रखने और मजबूत करने का प्रयास किया जाता है , जिससे नागरिकों को मनमानी शक्ति से सुरक्षा मिलती है और एक सुव्यवस्थित समाज का निर्माण होता है। यह भारतीय लोकतंत्र की आत्मा है और देश में सुशासन का प्रतीक है।

प्रश्न न0 7– स्विटजरलैण्ड के संविधान के अनुसार प्रत्यक्ष प्रजातंत्र की व्याख्या कीजिए?

उत्तर– स्विट्जरलैंड को "प्रत्यक्ष प्रजातंत्र का घर " (Home of Direct Democracy) कहा जाता है , क्योंकि इसका संविधान जनता को सीधे कानून बनाने , कानूनों में संशोधन करने और सरकार की नीतियों पर नियंत्रण रखने की अद्वितीय शक्तियाँ प्रदान करता है। जबकि अधिकांश आधुनिक लोकतंत्र प्रतिनिधि लोकतंत्र (Representative Democracy) हैं, जहाँ नागरिक अपने प्रतिनिधियों को चुनते हैं जो उनके बदले में निर्णय लेते हैं , स्विट्जरलैंड में जनता की भागीदारी नीति-निर्माण के हर स्तर पर प्रत्यक्ष और सक्रिय होती है।

प्रत्यक्ष प्रजातंत्र (Direct Democracy) क्या है?

प्रत्यक्ष प्रजातंत्र सरकार का वह रूप है जिसमें नागरिक बिना किसी प्रतिनिधि के सीधे तौर पर नीति निर्माण में भाग लेते हैं। इसमें जनता सीधे कानूनों पर मतदान करती है , नीतियों पर निर्णय लेती है और कभी-कभी अधिकारियों को वापस बुलाती है।

स्विट्जरलैंड में प्रत्यक्ष प्रजातंत्र की व्याख्या:

स्विट्जरलैंड का संविधान कई उपकरणों (Instruments) के माध्यम से प्रत्यक्ष प्रजातंत्र को साकार करता है। ये उपकरण संघीय (National), कैंटनल (Cantonal) और कम्यूनल (Communal/Local) तीनों स्तरों पर लागू होते हैं , हालांकि उनकी व्यापकता संघीय स्तर पर सबसे अधिक दिखाई देती है।

स्विट्जरलैंड में प्रत्यक्ष प्रजातंत्र के मुख्य उपकरण निम्नलिखित हैं:

1. **अनिवार्य जनमत संग्रह (Compulsory Referendum):**
   - o **क्या है:** यह एक ऐसा प्रावधान है जिसके तहत संविधान में किए गए किसी भी संशोधन या कुछ विशिष्ट अंतर्राष्ट्रीय संधियों को तब तक लागू नहीं किया जा सकता जब तक कि उन्हें मतदाताओं के बहुमत और अधिकांश कैंटनों (राज्यों) के बहुमत द्वारा अनुमोदित न किया जाए।
   - o **कार्यप्रणाली:** यदि संघीय संसद संविधान में कोई संशोधन पारित करती है , तो उसे अनिवार्य रूप से जनता के वोट के लिए प्रस्तुत किया जाता है। जनता उस पर 'हां' या 'ना' में मतदान करती है। 'दोहरे बहुमत' (Double

Majority) की आवश्यकता होती है: यानी , मतदान करने वाले नागरिकों का बहुमत और साथ ही कैंटनों का बहुमत (कैंटन में आधे से अधिक कैंटन को भी प्रस्ताव का समर्थन करना चाहिए)।

- **महत्व:** यह सुनिश्चित करता है कि संविधान में कोई भी बड़ा बदलाव बिना जनता की सीधी सहमति के नहीं किया जा सकता, जिससे संविधान की पवित्रता और जनता की संप्रभुता बनी रहती है।

2. **वैकल्पिक जनमत संग्रह (Optional Referendum):**
   - **क्या है:** यह एक ऐसा प्रावधान है जिसके तहत संघीय संसद द्वारा पारित किसी भी साधारण कानून (संविधान संशोधन को छोड़कर) पर जनता को मतदान करने का अधिकार होता है , बशर्ते निर्धारित संख्या में मतदाता या कैंटन इसकी मांग करें।
   - **कार्यप्रणाली:** यदि संघीय संसद कोई नया कानून बनाती है , तो उसे लागू करने से पहले 100 दिनों की अवधि के लिए रोका जाता है। यदि इस अवधि के भीतर 50,000 मतदाता या 8 कैंटन यह मांग करते हैं कि उस कानून पर जनमत संग्रह कराया जाए , तो कानून को जनता के मतदान के लिए प्रस्तुत किया जाता है। यदि बहुमत 'ना' में वोट करता है, तो कानून रद्द हो जाता है।
   - **महत्व:** यह जनता को संसद द्वारा बनाए गए कानूनों पर अंतिम निर्णय लेने की शक्ति देता है। यह विधायिका को अधिक जवाबदेह बनाता है और सुनिश्चित करता है कि जनभावना के विरुद्ध कोई कानून न बनाया जाए।
3. **लोक पहल / पहल अधिकार (Popular Initiative / Initiative Right):**
   - **क्या है:** यह जनता को स्वयं संविधान में नए प्रावधानों को प्रस्तावित करने या मौजूदा प्रावधानों में संशोधन का प्रस्ताव रखने का अधिकार देता है।
   - **कार्यप्रणाली:** यदि 100,000 मतदाता (18 महीने के भीतर) किसी संवैधानिक संशोधन का प्रस्ताव करने वाली याचिका पर हस्ताक्षर करते हैं , तो उस प्रस्ताव को संघीय संसद के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। संसद उस प्रस्ताव को स्वीकार कर सकती है या अस्वीकार कर सकती है , लेकिन किसी भी स्थिति में , प्रस्ताव को जनता के वोट के लिए प्रस्तुत किया जाना चाहिए (और इसके लिए भी दोहरे बहुमत की आवश्यकता होती है)।
   - **महत्व:** यह जनता को केवल कानूनों पर प्रतिक्रिया देने के बजाय , सक्रिय रूप से नीति-निर्माण की प्रक्रिया शुरू करने की शक्ति देता है। यह नागरिकों को अपने एजेंडा को सीधे सरकार के समक्ष रखने और उसे संवैधानिक रूप से लागू करने की संभावना प्रदान करता है।

कैंटनल और स्थानीय स्तर पर प्रत्यक्ष प्रजातंत्र:

जबकि संघीय स्तर पर उपर्युक्त उपकरण सबसे प्रमुख हैं , कैंटनों और कम्यूनों में भी प्रत्यक्ष प्रजातंत्र के मजबूत रूप देखने को मिलते हैं:

- **लैंड्सगेमाइंडे (Landsgemeinde):** स्विट्जरलैंड के कुछ छोटे कैंटनों (जैसे ऐपेंज़ेल इनररोडन , ग्लारस) में आज भी 'लैंड्सगेमाइंडे' या 'कैंटोनल असेंबली' (Cantonal Assembly) की प्रथा है। इसमें सभी योग्य नागरिक खुले आसमान के नीचे एक साथ इकट्ठा होते हैं और अपने हाथों को ऊपर उठाकर सीधे कानून बनाते हैं , बजट को मंजूरी देते हैं और अधिकारियों का चुनाव करते हैं। यह प्रत्यक्ष लोकतंत्र का सबसे शुद्ध रूप है।
- **कैंटनल और कम्यूनल स्तर पर जनमत संग्रह और पहल:** संघीय स्तर की तरह ही , कैंटन और कम्यून भी विभिन्न स्थानीय कानूनों और नीतियों पर अनिवार्य या वैकल्पिक जनमत संग्रह और लोक पहल का उपयोग करते हैं।

स्विट्जरलैंड में प्रत्यक्ष प्रजातंत्र की सफलता के कारण:

स्विट्जरलैंड में प्रत्यक्ष प्रजातंत्र की सफलता के कई कारण हैं:

1. **छोटा आकार और जनसंख्या:** स्विट्जरलैंड एक छोटा देश है जिसकी जनसंख्या अपेक्षाकृत कम है, जिससे नागरिकों के लिए सीधे भागीदारी करना आसान हो जाता है।
2. **उच्च साक्षरता और राजनीतिक चेतना:** स्विट्जरलैंड में उच्च साक्षरता दर और राजनीतिक रूप से जागरूक नागरिक हैं जो जटिल मुद्दों को समझने और उन पर मतदान करने में सक्षम हैं।
3. **संघीय ढाँचा और कैंटनों की स्वायत्तता:** देश का अत्यधिक विकेन्द्रीकृत और संघीय ढाँचा , जहाँ कैंटनों को व्यापक स्वायत्तता प्राप्त है, प्रत्यक्ष लोकतंत्र के प्रयोग के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करता है।
4. **बहुलतावादी समाज:** देश में विभिन्न भाषाई (जर्मन , फ्रेंच, इतालवी, रोमांश) और धार्मिक समूह मौजूद हैं , और प्रत्यक्ष लोकतंत्र उन्हें निर्णय लेने की प्रक्रिया में शामिल होने का अवसर प्रदान करता है, जिससे अल्पसंख्यकों के हितों की भी रक्षा होती है।
5. **स्थिर राजनीतिक संस्कृति:** स्विस लोगों में एक मजबूत संवैधानिक संस्कृति और समझौते तथा सहमति की भावना है, जो सीधे लोकतंत्र के लिए आवश्यक है।

प्रत्यक्ष प्रजातंत्र के लाभ और चुनौतियाँ (स्विट्जरलैंड के संदर्भ में):

लाभ:

- **जनता की सर्वोच्चता:** यह वास्तव में जनता की संप्रभुता को सुनिश्चित करता है और उन्हें अपने भाग्य का मालिक बनाता है।
- **सरकार की जवाबदेही:** सरकार और संसद जनता के प्रति अधिक जवाबदेह रहते हैं क्योंकि उनके निर्णयों को जनता द्वारा बदला जा सकता है।
- **राजनीतिक शिक्षा:** यह नागरिकों को राजनीतिक प्रक्रिया में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए प्रेरित करता है , जिससे उनकी राजनीतिक शिक्षा और जागरूकता बढ़ती है।
- **स्थिरता:** जनता की सीधी भागीदारी के कारण , नीतियों को व्यापक वैधता मिलती है और उनके खिलाफ विद्रोह या अस्थिरता की संभावना कम होती है।
- **अल्पसंख्यकों की रक्षा:** जनमत संग्रह और पहल अल्पसंख्यक समूहों को अपनी आवाज उठाने और उनके हितों को प्रभावित करने वाले निर्णयों को चुनौती देने का अवसर प्रदान करते हैं।

चुनौतियाँ:

- **जटिलता और विलंब:** बार-बार जनमत संग्रह और पहल की प्रक्रिया लंबी और जटिल हो सकती है , जिससे निर्णय लेने में देरी होती है।
- **मतदाताओं की उदासीनता:** कभी-कभी मतदाता सभी मुद्दों पर रुचि नहीं दिखा सकते या उन्हें समझने में असमर्थ हो सकते हैं, जिससे मतदान प्रतिशत कम हो सकता है।
- **भावनात्मक निर्णय:** कुछ मुद्दों पर जनता भावनात्मक या अल्पकालिक विचारों के आधार पर निर्णय ले सकती है , जो दीर्घकालिक राष्ट्रीय हित के लिए हानिकारक हो सकता है।
- **शक्तिशाली हित समूहों का प्रभाव:** धनी और संगठित हित समूह (लॉबी) जनमत संग्रह अभियानों में भारी निवेश करके जनमत को प्रभावित कर सकते हैं।
- **बहुसंख्यकवाद का खतरा:** यद्यपि दोहरे बहुमत का प्रावधान है, फिर भी कुछ मामलों में बहुमत के निर्णय अल्पसंख्यकों के हितों के प्रतिकूल हो सकते हैं।

निष्कर्षतः, स्विट्जरलैंड का संविधान प्रत्यक्ष प्रजातंत्र का एक बेजोड़ उदाहरण प्रस्तुत करता है , जहां जनमत संग्रह और पहल जैसे उपकरण जनता को नीति-निर्माण प्रक्रिया के केंद्र में रखते हैं। यह प्रणाली भले ही धीमी और जटिल हो , लेकिन इसने स्विट्जरलैंड को एक स्थिर , जवाबदेह और अत्यधिक लोकतांत्रिक राष्ट्र बनाए रखने में मदद की है , जहां जनता वास्तविक अर्थों में संप्रभु है।

<u>प्रश्न न0 8–</u> संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान के अनुसार राष्ट्रपति के चुनाव की प्रक्रिया बताइए।

<u>उत्तर–</u> संयुक्त राज्य अमेरिका का राष्ट्रपति दुनिया के सबसे शक्तिशाली पदों में से एक है। संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान के अनुसार राष्ट्रपति का चुनाव एक जटिल और बहु-चरणीय प्रक्रिया है , जो सीधे लोकप्रिय वोट (popular vote) पर आधारित नहीं होती, बल्कि 'इलेक्टोरल कॉलेज' (Electoral College) नामक एक विशिष्ट प्रणाली के माध्यम से होती है। यह प्रक्रिया लगभग एक वर्ष तक चलती है और इसमें कई चरण शामिल होते हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति के चुनाव की प्रक्रिया:

1. योग्यताएँ (Qualifications):

संयुक्त राज्य अमेरिका का राष्ट्रपति बनने के लिए एक व्यक्ति को निम्नलिखित योग्यताएँ पूरी करनी होती हैं:

- कम से कम 35 वर्ष की आयु होनी चाहिए।
- संयुक्त राज्य अमेरिका का जन्म से नागरिक (natural-born citizen) होना चाहिए।
- संयुक्त राज्य अमेरिका में कम से कम 14 वर्षों तक निवास किया हो।

2. नामांकन और प्राइमरी/कॉकेस (Nomination and Primaries/Caucuses - जनवरी से जून, चुनाव वर्ष से पहले):

प्रत्येक प्रमुख राजनीतिक दल (डेमोक्रेटिक और रिपब्लिकन) अपने राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार का चयन करता है। यह प्रक्रिया 'प्राइमरी' और 'कॉकेस' के माध्यम से होती है।

- **प्राइमरी (Primaries):** ये राज्य-स्तरीय चुनाव होते हैं जहाँ पंजीकृत मतदाता अपने पसंदीदा राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार के लिए वोट डालते हैं। प्राइमरी दो प्रकार की होती हैं:
    - **खुली प्राइमरी (Open Primaries):** मतदाता किसी भी पार्टी की प्राइमरी में मतदान कर सकते हैं , भले ही वे उस पार्टी के पंजीकृत सदस्य न हों।

- o **बंद प्राइमरी (Closed Primaries):** मतदाता केवल उस पार्टी की प्राइमरी में मतदान कर सकते हैं जिसके वे पंजीकृत सदस्य हैं।
- **कॉकेस (Caucuses):** ये राज्य-स्तरीय बैठकें होती हैं जहाँ पंजीकृत पार्टी के सदस्य एकत्र होते हैं और अपने पसंदीदा उम्मीदवार पर चर्चा करते हैं और मतदान करते हैं। कॉकेस अधिक सामुदायिक-उन्मुख और व्यक्तिगत होती हैं।
- इन प्राइमरी और कॉकेस के परिणाम प्रत्येक उम्मीदवार को उस पार्टी के **राष्ट्रीय सम्मेलन (National Convention)** में कितने प्रतिनिधि (delegates) मिलेंगे, यह निर्धारित करते हैं। प्रतिनिधि एक विशेष उम्मीदवार का समर्थन करने के लिए प्रतिबद्ध होते हैं।

3. राष्ट्रीय सम्मेलन (National Conventions - जुलाई-अगस्त):

गर्मियों में, प्रत्येक प्रमुख राजनीतिक दल अपना राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित करता है।

- इस सम्मेलन में, प्राइमरी और कॉकेस से चुने गए प्रतिनिधि औपचारिक रूप से पार्टी के राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार (और उपराष्ट्रपति पद के उम्मीदवार) को नामित करने के लिए मतदान करते हैं।
- उम्मीदवार आमतौर पर अपने उपराष्ट्रपति पद के साथी (running mate) का चयन करते हैं, जिसे सम्मेलन द्वारा अनुमोदित किया जाता है।
- इस सम्मेलन का उपयोग पार्टी के मंच (platform) को अपनाने और अभियान की औपचारिक शुरुआत के लिए भी किया जाता है।

4. आम अभियान (General Election Campaign - सितंबर-अक्टूबर):

राष्ट्रीय सम्मेलनों के बाद, नामांकित उम्मीदवार देश भर में व्यापक प्रचार अभियान चलाते हैं।

- इस चरण में, राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति पद के उम्मीदवार पूरे देश में यात्रा करते हैं, रैलियां करते हैं, विज्ञापन जारी करते हैं, और अपने प्रतिद्वंद्वियों के साथ टेलीविजन बहस में भाग लेते हैं।
- अभियान का ध्यान मतदाताओं को जीतने और 'स्विंग राज्यों' (swing states) पर विशेष ध्यान केंद्रित करने पर होता है, जहां परिणाम अप्रत्याशित होते हैं।

5. चुनाव का दिन (Election Day - नवंबर का पहला मंगलवार):

नवंबर के पहले सोमवार के बाद आने वाले पहले मंगलवार को आम चुनाव होता है।

- इस दिन, नागरिक सीधे राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के लिए मतदान नहीं करते हैं, बल्कि वे **इलेक्टोरल कॉलेज के प्रतिनिधियों (electors)** के लिए मतदान करते हैं।
- प्रत्येक राज्य को उसकी जनसंख्या के आधार पर इलेक्टोरल कॉलेज में विशिष्ट संख्या में प्रतिनिधि आवंटित किए जाते हैं। यह संख्या राज्य के कांग्रेस के सदस्यों की कुल संख्या (हाउस ऑफ रिप्रेजेंटेटिव्स के सदस्य + सीनेटरों की संख्या, जो हमेशा 2 होती है) के बराबर होती है। उदाहरण के लिए, कैलिफोर्निया में सबसे अधिक (54) प्रतिनिधि हैं, जबकि कुछ छोटे राज्यों में केवल 3 प्रतिनिधि हैं।
- कोलंबिया जिले (District of Columbia) को भी 3 प्रतिनिधि मिलते हैं। इलेक्टोरल कॉलेज में कुल 538 प्रतिनिधि होते हैं (435 हाउस + 100 सीनेट + 3 DC)।

6. इलेक्टोरल कॉलेज (Electoral College - दिसंबर):

चुनाव के दिन मतदाताओं द्वारा डाले गए मतों का उपयोग इलेक्टोरल कॉलेज के प्रतिनिधियों को चुनने के लिए किया जाता है।

- **'विनर-टेक-ऑल' प्रणाली (Winner-Take-All System):** अधिकांश राज्यों में, जो उम्मीदवार राज्य के लोकप्रिय वोट में सबसे अधिक मत प्राप्त करता है, उसे उस राज्य के सभी इलेक्टोरल कॉलेज के प्रतिनिधि मिल जाते हैं। (केवल मेन और नेब्रास्का अपवाद हैं, जहां प्रतिनिधि आनुपातिक रूप से या कांग्रेस के जिलों के आधार पर आवंटित किए जा सकते हैं)।
- दिसंबर में, प्रत्येक राज्य के प्रतिनिधि अपनी राजधानी में मिलते हैं और औपचारिक रूप से राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के लिए अपना वोट डालते हैं। ये वोट इलेक्टोरल कॉलेज के वोटों के रूप में गिने जाते हैं।
- जीतने के लिए, एक उम्मीदवार को इलेक्टोरल कॉलेज के कुल 538 वोटों में से **कम से कम 270 वोट** (बहुमत) प्राप्त करने होते हैं।

7. वोटों की गिनती और प्रमाणन (Counting and Certification - जनवरी):

जनवरी के शुरुआती दिनों में, संयुक्त राज्य अमेरिका की कांग्रेस एक संयुक्त सत्र में इलेक्टोरल कॉलेज के वोटों की गिनती करती है।

- कांग्रेस औपचारिक रूप से वोटों को प्रमाणित करती है और राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति पद के विजेता की घोषणा करती है।

8. उद्घाटन (Inauguration - 20 जनवरी):

राष्ट्रपति-निर्वाचित और उपराष्ट्रपति-निर्वाचित 20 जनवरी को पद की शपथ लेते हैं। यह समारोह कैपिटल हिल (Capitol Hill) में होता है और नए राष्ट्रपति औपचारिक रूप से कार्यभार संभालते हैं।

प्रणाली की विशेषताएँ और बहस:

- **अप्रत्यक्ष चुनाव:** यह एक अप्रत्यक्ष चुनाव प्रणाली है, जहाँ नागरिक सीधे राष्ट्रपति को नहीं चुनते, बल्कि इलेक्टोरल कॉलेज के प्रतिनिधियों को चुनते हैं।
- **लोकप्रिय वोट और इलेक्टोरल कॉलेज का अंतर:** सबसे विवादास्पद पहलू यह है कि एक उम्मीदवार लोकप्रिय वोट (देश भर में डाले गए कुल व्यक्तिगत वोट) हार सकता है, लेकिन इलेक्टोरल कॉलेज जीत कर राष्ट्रपति बन सकता है (उदाहरण के लिए, 2000 में जॉर्ज डब्ल्यू. बुश और 2016 में डोनाल्ड ट्रम्प)। ऐसा तब होता है जब एक उम्मीदवार कुछ प्रमुख राज्यों में संकीर्ण अंतर से जीतता है, जिससे उसे उन राज्यों के सभी इलेक्टोरल वोट मिल जाते हैं, जबकि देश के अन्य हिस्सों में वह बड़े अंतर से हारता है।
- **कम आबादी वाले राज्यों का प्रतिनिधित्व:** इलेक्टोरल कॉलेज प्रणाली को कम आबादी वाले राज्यों को राष्ट्रपति चुनाव में अधिक प्रतिनिधित्व देने के लिए डिज़ाइन किया गया था, क्योंकि प्रत्येक राज्य को कम से कम 3 प्रतिनिधि मिलते हैं, भले ही उसकी आबादी कितनी भी कम क्यों न हो।
- **फेडरलिज्म का प्रतिबिंब:** यह प्रणाली अमेरिकी संविधान के संघीय सिद्धांत को दर्शाती है, जहां राज्यों को भी एक इकाई के रूप में महत्व दिया जाता है।
- **निरंतर बहस:** इस प्रणाली को अक्सर लोकतांत्रिक भावना के विपरीत और पुराने जमाने का बताया जाता है, और इसे बदलने के लिए लगातार बहस और प्रस्ताव आते रहते हैं, लेकिन संविधान संशोधन के लिए आवश्यक उच्च बाधाओं के कारण इसमें बदलाव मुश्किल रहा है।

संक्षेप में, संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति का चुनाव प्राइमरी/कॉकेस से शुरू होता है, राष्ट्रीय सम्मेलनों के माध्यम से उम्मीदवारों का नामांकन होता है, एक आम चुनाव अभियान चलता है, और अंततः इलेक्टोरल कॉलेज के वोटों से विजेता का निर्धारण होता है। यह एक अनूठी प्रणाली है जो अमेरिकी इतिहास, संघीय ढांचे और लोकतांत्रिक सिद्धांतों के मिश्रण को दर्शाती है।

प्रश्न न0 9– भारत में न्यायपालिका की स्वतंत्रता पर टिप्पणी कीजिए?

उत्तर– भारत में न्यायपालिका की स्वतंत्रता (Independence of Judiciary) भारतीय संविधान की एक आधारभूत विशेषता है और भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था का एक स्तंभ है। यह सुनिश्चित करती है कि न्यायपालिका बिना किसी भय या पक्षपात के, निष्पक्ष रूप से न्याय प्रदान कर सके, कानूनों की व्याख्या कर सके, और संविधान की रक्षा कर सके। संविधान निर्माताओं ने यह सुनिश्चित किया कि न्यायपालिका कार्यपालिका और विधायिका के प्रभाव से मुक्त रहे, ताकि वह नागरिक अधिकारों की संरक्षक और संविधान की अंतिम व्याख्याकर्ता के रूप में अपनी भूमिका प्रभावी ढंग से निभा सके।

न्यायपालिका की स्वतंत्रता का अर्थ:

न्यायपालिका की स्वतंत्रता का अर्थ है कि:

- **कार्यपालिका और विधायिका से अलगाव:** न्यायपालिका सरकार के अन्य दो अंगों (कार्यपालिका और विधायिका) के दबाव या हस्तक्षेप के बिना कार्य करती है।
- **निष्पक्षता:** न्यायाधीश बिना किसी व्यक्तिगत हित, राजनीतिक दबाव या बाहरी प्रभाव के निर्णय ले सकें।
- **संविधान की सर्वोच्चता:** न्यायपालिका संविधान की सर्वोच्चता को बनाए रखने और यह सुनिश्चित करने में सक्षम है कि सरकार के सभी अंग संविधान के दायरे में कार्य करें।
- **नागरिक अधिकारों का संरक्षण:** यह नागरिकों के मौलिक अधिकारों की संरक्षक है और राज्य या किसी अन्य शक्ति द्वारा उनके उल्लंघन को रोकती है।

भारतीय संविधान में न्यायपालिका की स्वतंत्रता सुनिश्चित करने वाले प्रावधान:

भारतीय संविधान ने न्यायपालिका की स्वतंत्रता को बनाए रखने के लिए कई विशिष्ट प्रावधान किए हैं:

1. **न्यायाधीशों की नियुक्ति की प्रक्रिया (Appointment of Judges):**
   - न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है (जो कार्यपालिका का अंग है), लेकिन यह प्रक्रिया स्वतंत्र न्यायपालिका को बनाए रखने के लिए डिज़ाइन की गई है।

- सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों में न्यायाधीशों की नियुक्ति में 'कॉलेजियम प्रणाली' (Collegium System) विकसित की गई है, जहाँ वरिष्ठ न्यायाधीशों का एक समूह नियुक्ति के लिए नामों की सिफारिश करता है। यद्यपि राष्ट्रपति की अंतिम मुहर लगती है , लेकिन व्यवहार में कॉलेजियम की सिफारिशों का सम्मान किया जाता है। यह सुनिश्चित करता है कि कार्यपालिका का न्यायाधीशों की नियुक्ति पर पूर्ण नियंत्रण न हो।

2. **कार्यकाल की सुरक्षा (Security of Tenure):**
   - न्यायाधीशों को कार्यकाल की सुरक्षा प्रदान की जाती है। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश 65 वर्ष की आयु तक और उच्च न्यायालय के न्यायाधीश 62 वर्ष की आयु तक पद पर बने रहते हैं।
   - उन्हें केवल 'साबित कदाचार या अक्षमता ' (proven misbehaviour or incapacity) के आधार पर संसद द्वारा निर्धारित एक जटिल महाभियोग प्रक्रिया (महाभियोग प्रस्ताव का संसद के दोनों सदनों में विशेष बहुमत से पारित होना) के माध्यम से ही पद से हटाया जा सकता है। यह प्रक्रिया इतनी कठिन है कि आज तक किसी भी भारतीय न्यायाधीश को इस तरह से नहीं हटाया गया है , जिससे उन्हें बिना किसी डर के काम करने की स्वतंत्रता मिलती है।
3. **वेतन और भत्ते (Salaries and Allowances):**
   - न्यायाधीशों के वेतन, भत्ते और अन्य सेवा शर्तें संसद द्वारा निर्धारित की जाती हैं , लेकिन वे नियुक्ति के बाद उनके लिए अलाभकारी रूप से परिवर्तित नहीं किए जा सकते (वित्तीय आपातकाल को छोड़कर)।
   - उनके वेतन और भत्ते भारत की संचित निधि (Consolidated Fund of India) पर भारित होते हैं, जिसका अर्थ है कि इन पर संसद में मतदान नहीं किया जा सकता , केवल चर्चा की जा सकती है। यह उनकी वित्तीय स्वतंत्रता सुनिश्चित करता है।
4. **संसद में न्यायाधीशों के आचरण पर चर्चा पर प्रतिबंध (Restriction on Discussion in Parliament):**
   - संसद में न्यायाधीशों के आचरण पर केवल तभी चर्चा की जा सकती है जब उनके खिलाफ महाभियोग प्रस्ताव विचाराधीन हो (अनुच्छेद 121)। यह प्रावधान न्यायाधीशों को अनुचित आलोचना या राजनीतिक हमलों से बचाता है।
5. **न्यायालय की अवमानना की शक्ति (Power to Punish for Contempt of Court):**
   - सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों को अपनी अवमानना के लिए दंडित करने की शक्ति प्राप्त है। यह शक्ति न्यायालय की गरिमा और अधिकार को बनाए रखने में मदद करती है और बाहरी हस्तक्षेप को रोकती है।
6. **सेवानिवृत्ति के बाद वकालत पर प्रतिबंध (Ban on Practice after Retirement):**
   - सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश और न्यायाधीश सेवानिवृत्ति के बाद भारत के किसी भी न्यायालय या किसी प्राधिकरण के समक्ष वकालत नहीं कर सकते। यह सुनिश्चित करता है कि वे अपने फैसलों को भविष्य के व्यावसायिक लाभ से प्रभावित न होने दें।
7. **कार्यपालिका से न्यायपालिका का पृथक्करण (Separation from Executive):**
   - भारतीय संविधान का अनुच्छेद 50 राज्य को निर्देश देता है कि वह सार्वजनिक सेवाओं में कार्यपालिका से न्यायपालिका को अलग करने के लिए कदम उठाए।
   - यह सुनिश्चित करता है कि प्रशासनिक अधिकारी या पुलिस अधिकारियों के पास न्यायिक शक्तियाँ न हों , जिससे न्याय निष्पक्ष रहे।
8. **न्यायिक समीक्षा (Judicial Review):**
   - न्यायपालिका को न्यायिक समीक्षा की शक्ति प्राप्त है , जिसके तहत वह संसद द्वारा बनाए गए कानूनों और कार्यपालिका के आदेशों की संवैधानिकता की जांच कर सकती है। यदि कोई कानून या आदेश संविधान के विरुद्ध पाया जाता है, तो उसे असंवैधानिक घोषित किया जा सकता है। यह शक्ति न्यायपालिका को संविधान का अंतिम संरक्षक बनाती है और सुनिश्चित करती है कि सरकार के अन्य अंग अपनी संवैधानिक सीमाओं के भीतर कार्य करें।

न्यायपालिका की स्वतंत्रता का महत्व:

1. **संविधान का संरक्षक:** न्यायपालिका संविधान का संरक्षक है और यह सुनिश्चित करती है कि सभी कानून और सरकारी कार्य संवैधानिक प्रावधानों के अनुरूप हों। यह संविधान की सर्वोच्चता को बनाए रखती है।
2. **मौलिक अधिकारों का रक्षक:** यह नागरिकों के मौलिक अधिकारों का रक्षक है। यदि सरकार या कोई व्यक्ति किसी नागरिक के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करता है, तो न्यायपालिका उन्हें बचाने के लिए हस्तक्षेप कर सकती है।

3. **संघीय संतुलन का अनुरक्षक:** भारत एक संघीय देश है जहाँ केंद्र और राज्यों के बीच शक्तियों का विभाजन है। न्यायपालिका केंद्र और राज्यों के बीच या राज्यों के बीच विवादों का निपटारा करती है , जिससे संघीय संतुलन बना रहता है।
4. **सरकार पर नियंत्रण:** यह कार्यपालिका और विधायिका को अपनी शक्तियों का दुरुपयोग करने से रोकती है , जिससे मनमानी और निरंकुशता को रोका जा सके।
5. **न्याय और निष्पक्षता का आधार:** एक स्वतंत्र न्यायपालिका ही निष्पक्ष और समान न्याय सुनिश्चित कर सकती है। यह सभी नागरिकों को समान रूप से कानून के समक्ष न्याय प्राप्त करने का अवसर देती है।
6. **लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा:** न्यायपालिका लोकतंत्र के सिद्धांतों , जैसे कानून का शासन , समानता और स्वतंत्रता को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।
7. **अंतिम व्याख्याकर्ता:** संविधान के किसी भी प्रावधान की व्याख्या के मामले में , न्यायपालिका का निर्णय अंतिम होता है।

चुनौतियाँ और चिंताएँ:

हालांकि भारतीय संविधान न्यायपालिका की स्वतंत्रता को सुनिश्चित करने के लिए कई प्रावधान करता है, कुछ चुनौतियाँ और चिंताएँ भी हैं:

- **न्यायाधीशों की नियुक्ति प्रक्रिया:** कॉलेजियम प्रणाली पर कार्यपालिका के प्रभाव या पारदर्शिता की कमी को लेकर अक्सर बहस होती रहती है।
- **न्यायालयों में लंबित मामले:**अत्यधिक संख्या में लंबित मामले न्याय की गति और दक्षता को प्रभावित करते हैं।
- **न्यायाधीशों की जवाबदेही:**न्यायाधीशों को हटाने की कठिन प्रक्रिया के कारण उनकी जवाबदेही सुनिश्चित करना कभी-कभी मुश्किल हो जाता है, खासकर जब कदाचार के आरोप लगते हैं।
- **न्यायिक सक्रियता बनाम न्यायिक अतिरेक:** कभी-कभी न्यायपालिका की सक्रियता को 'न्यायिक अतिरेक' के रूप में देखा जाता है, जहाँ न्यायपालिका कार्यपालिका या विधायिका के क्षेत्र में अतिक्रमण करती प्रतीत होती है।
- **राजनीतिक दबाव:**यद्यपि स्वतंत्र, कुछ मामलों में राजनीतिक दबाव की आशंका बनी रहती है, विशेषकर निचले स्तर की न्यायपालिका में।
- **भ्रष्टाचार के आरोप:**न्यायपालिका में भी कभी-कभी भ्रष्टाचार के आरोप लगते हैं, जो इसकी स्वतंत्रता और विश्वसनीयता के लिए खतरा पैदा करते हैं।

निष्कर्ष:

भारत में न्यायपालिका की स्वतंत्रता भारतीय लोकतांत्रिक प्रणाली का एक आधारभूत सिद्धांत है। संविधान ने इसे कार्यपालिका और विधायिका के हस्तक्षेप से बचाने के लिए व्यापक सुरक्षा उपाय प्रदान किए हैं। यह संविधान का संरक्षक , नागरिक अधिकारों का रक्षक और संघीय संतुलन का अनुरक्षक है। यद्यपि कुछ चुनौतियाँ हैं , एक स्वतंत्र न्यायपालिका ही भारत में कानून के शासन, न्याय और लोकतंत्र के सिद्धांतों को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रहेगी। यह भारत के जीवंत लोकतंत्र का एक आवश्यक और गौरवपूर्ण पहलू है।

B.A.LL.B.-6th Sem. Paper-II Social Psychology

प्रश्न न0 1– सामाजिक मनोविज्ञान का अर्थ, प्रकृति एवं इतिहास की व्याख्या कीजिए?

उत्तर– सामाजिक मनोविज्ञान एक विस्तृत और आकर्षक क्षेत्र है जो व्यक्तियों के विचारों , भावनाओं और व्यवहारों पर सामाजिक कारकों के प्रभाव का अध्ययन करता है। यह समझने की कोशिश करता है कि लोग सामाजिक दुनिया को कैसे समझते हैं, दूसरों के साथ कैसे बातचीत करते हैं , और समूह, संस्कृति और सामाजिक संदर्भ उनके कार्यों और विश्वासों को कैसे आकार देते हैं।

आइए इसके अर्थ, प्रकृति और इतिहास को विस्तार से समझते हैं।

सामाजिक मनोविज्ञान का अर्थ (Meaning of Social Psychology):

सामाजिक मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की वह शाखा है जो इस बात का वैज्ञानिक अध्ययन करती है कि व्यक्तियों के विचार , भावनाएँ और व्यवहार दूसरों की वास्तविक , काल्पनिक या निहित उपस्थिति से कैसे प्रभावित होते हैं। इसे सरल शब्दों में कहें तो, यह इस बात का अध्ययन है कि सामाजिक वातावरण व्यक्ति को कैसे प्रभावित करता है।

- **वैज्ञानिक अध्ययन:** इसका अर्थ है कि सामाजिक मनोवैज्ञानिक परिकल्पनाओं का परीक्षण करने और निष्कर्ष निकालने के लिए व्यवस्थित विधियों, जैसे प्रयोगों, सर्वेक्षणों और सहसंबंधी अध्ययनों का उपयोग करते हैं।
- **व्यक्ति के विचार, भावनाएँ और व्यवहार:** सामाजिक मनोविज्ञान का ध्यान व्यक्ति पर होता है , भले ही वह सामाजिक संदर्भ में हो। यह अध्ययन करता है कि व्यक्ति कैसे सोचता है (सामाजिक संज्ञान) , कैसा महसूस करता है (दृष्टिकोण, भावनाएँ), और कैसे व्यवहार करता है (सामाजिक प्रभाव, पारस्परिक संबंध)।
- **वास्तविक, काल्पनिक या निहित उपस्थिति:**
  - **वास्तविक उपस्थिति:** जब लोग वास्तव में हमारे आस-पास होते हैं (जैसे भीड़ में व्यवहार)।
  - **काल्पनिक उपस्थिति:** जब हम कल्पना करते हैं कि दूसरे क्या सोचेंगे या हम पर क्या प्रभाव डालेंगे (जैसे परीक्षा में नकल न करना क्योंकि हमें लगता है कि कोई देख रहा है)।
  - **निहित उपस्थिति:** जब सामाजिक मानदंड और सांस्कृतिक अपेक्षाएँ हमारे व्यवहार को प्रभावित करती हैं , भले ही कोई व्यक्ति विशेष रूप से मौजूद न हो (जैसे सड़क पर बाईं ओर चलना)।

सामाजिक मनोविज्ञान की प्रकृति (Nature of Social Psychology):

सामाजिक मनोविज्ञान की प्रकृति को कई प्रमुख विशेषताओं से समझा जा सकता है:

1. **वैज्ञानिक प्रकृति:** जैसा कि ऊपर बताया गया है, यह अनुभवजन्य अनुसंधान विधियों पर आधारित है। यह अवलोकन, प्रयोग और सांख्यिकीय विश्लेषण का उपयोग करके सिद्धांतों का निर्माण और परीक्षण करता है। यह सहज ज्ञान या सामान्य ज्ञान पर निर्भर नहीं करता है।
2. **व्यक्ति-केंद्रित:** यद्यपि यह सामाजिक प्रभावों का अध्ययन करता है , इसका अंतिम ध्यान व्यक्ति पर होता है कि सामाजिक कारक व्यक्ति के भीतर कैसे काम करते हैं।
3. **व्यापकता और बहु-स्तरीय विश्लेषण:** यह सूक्ष्म स्तर (जैसे व्यक्ति के विचार और भावनाएँ) से लेकर मैक्रो स्तर (जैसे संस्कृति और समाज का प्रभाव) तक के कारकों का अध्ययन करता है।
4. **गत्यात्मक और परस्पर क्रियात्मक:** यह मानता है कि व्यक्ति और सामाजिक वातावरण के बीच एक निरंतर और गत्यात्मक परस्पर क्रिया होती है। लोग समाज को प्रभावित करते हैं और समाज लोगों को प्रभावित करता है।
5. **अनुप्रयुक्त प्रकृति:** सामाजिक मनोविज्ञान के निष्कर्षों का उपयोग विभिन्न वास्तविक दुनिया की समस्याओं को समझने और हल करने के लिए किया जाता है, जैसे पूर्वाग्रह को कम करना, नेतृत्व कौशल में सुधार करना, स्वास्थ्य व्यवहार को बढ़ावा देना और संघर्षों का समाधान करना।
6. **संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं पर जोर:** आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान में सामाजिक संज्ञान पर बहुत जोर दिया जाता है - यह समझना कि लोग अपने और दूसरों के बारे में कैसे सोचते हैं , सामाजिक जानकारी को कैसे संसाधित करते हैं , और सामाजिक दुनिया को कैसे समझते हैं।
7. **विविध अनुसंधान विधियाँ:** यह विभिन्न प्रकार की अनुसंधान विधियों का उपयोग करता है, जिनमें प्रयोगशाला प्रयोग, क्षेत्र प्रयोग, सर्वेक्षण, सहसंबंधी अध्ययन, केस स्टडी और अवलोकन शामिल हैं।
8. **सांस्कृतिक संवेदनशीलता:** हाल के वर्षों में, सामाजिक मनोविज्ञान ने सांस्कृतिक संदर्भ के महत्व को पहचाना है। यह स्वीकार करता है कि सामाजिक व्यवहार और प्रक्रियाएं विभिन्न संस्कृतियों में भिन्न हो सकती हैं।

सामाजिक मनोविज्ञान का इतिहास (History of Social Psychology):

सामाजिक मनोविज्ञान का इतिहास अपेक्षाकृत नया है, लेकिन इसकी जड़ें दर्शनशास्त्र और समाजशास्त्र में गहरी हैं।

प्रारंभिक जड़ें (Early Roots):

- **दर्शनशास्त्र:** प्लेटो और अरस्तू जैसे प्राचीन यूनानी दार्शनिकों ने समाज और व्यक्ति के बीच संबंधों के बारे में विचार व्यक्त किए थे। बाद में, हॉब्स, लॉक और रूसो जैसे विचारकों ने सामाजिक अनुबंध और मानवीय स्वभाव पर चर्चा की, जो सामाजिक मनोविज्ञान के लिए वैचारिक आधार प्रदान करते हैं।
- **समाजशास्त्र:** 19वीं शताब्दी के अंत में , समाजशास्त्रियों ने सामाजिक मानदंडों , भीड़ व्यवहार और समूह प्रक्रियाओं का अध्ययन करना शुरू किया। एमिल दुर्खीम के काम ने सामाजिक तथ्यों और सामूहिक चेतना पर जोर दिया , जबकि मैक्स वेबर ने सामाजिक क्रिया और शक्ति की भूमिका पर ध्यान केंद्रित किया।

सामाजिक मनोविज्ञान का उदय (Emergence of Social Psychology):

- **19वीं सदी के अंत:** इस अवधि में सामाजिक मनोविज्ञान को एक अलग अनुशासन के रूप में मान्यता मिलने लगी।
  - **ट्रिपल (Triplett, 1898):** नॉर्मन ट्रिपल ने पहला अनुभवजन्य सामाजिक मनोविज्ञान प्रयोग किया , जिसमें उन्होंने पाया कि साइकिल चालक दूसरों के साथ प्रतिस्पर्धा करते समय तेज दौड़ते हैं (सामाजिक सुविधा का एक प्रारंभिक प्रदर्शन)।
  - **ले बॉन (Le Bon, 1895):** गुस्ताव ले बॉन की पुस्तक "द क्राउड: ए स्टडी ऑफ द पॉपुलर माइंड " ने भीड़ मनोविज्ञान पर प्रकाश डाला और सुझाव दिया कि व्यक्ति भीड़ में अपनी पहचान खो देते हैं और तर्कहीन हो जाते हैं।
- **20वीं सदी की शुरुआत:**
  - **मैकडूगल (McDougall, 1908):** विलियम मैकडूगल ने "सोशल साइकोलॉजी का एक परिचय" नामक पुस्तक लिखी, जिसमें उन्होंने वृत्ति को सामाजिक व्यवहार के प्राथमिक प्रेरक के रूप में देखा।
  - **रॉस (Ross, 1908):** एडवर्ड रॉस ने "सोशल साइकोलॉजी" नामक एक और पुस्तक प्रकाशित की , जिसमें उन्होंने सामाजिक प्रभाव और अनुकरण पर जोर दिया। इन दोनों पुस्तकों को अक्सर सामाजिक मनोविज्ञान की पहली पाठ्यपुस्तकों के रूप में देखा जाता है।
  - **मनोविश्लेषण का प्रभाव:** सिगमंड फ्रायड के काम ने अचेतन प्रेरणाओं और समूह गतिशीलता पर प्रभाव डाला।

स्वर्ण युग: द्वितीय विश्व युद्ध के बाद (Golden Age: Post-World War II):

द्वितीय विश्व युद्ध ने सामाजिक मनोविज्ञान के विकास को उत्प्रेरित किया। युद्ध के दौरान और उसके बाद की घटनाओं ने सामाजिक मनोवैज्ञानिकों को महत्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार करने के लिए प्रेरित किया:

- **तानाशाही और अत्याचार:** लोग नाजी शासन और होलोकॉस्ट जैसी भयावह घटनाओं में कैसे शामिल हो सकते हैं ? (जैसे एडोर्नो एट अल. का सत्तावादी व्यक्तित्व पर काम)।
- **समूह संघर्ष और पूर्वाग्रह:** समूह संघर्ष क्यों होता है और पूर्वाग्रह को कैसे कम किया जा सकता है?
- **अनुरूपता और आज्ञाकारिता:** लोग दूसरों के दबाव के आगे क्यों झुकते हैं या अधिकार का पालन क्यों करते हैं? (आशे का अनुरूपता प्रयोग, मिलग्राम का आज्ञाकारिता प्रयोग)।
- **कर्ट लेविन (Kurt Lewin):** उन्हें अक्सर "सामाजिक मनोविज्ञान का जनक" माना जाता है। उन्होंने समूह गतिशीलता , कार्रवाई अनुसंधान और इस विचार पर जोर दिया कि व्यवहार व्यक्ति और उसके पर्यावरण के बीच की परस्पर क्रिया का एक कार्य है (B = f(P,E))।

आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान (Modern Social Psychology):

- **1960 और 1970 के दशक:** यह अवधि संज्ञानात्मक क्रांति से प्रभावित थी। सामाजिक संज्ञान का क्षेत्र उभरा , जिसमें इस बात पर ध्यान केंद्रित किया गया कि लोग सामाजिक जानकारी को कैसे संसाधित करते हैं, व्याख्या करते हैं और याद रखते हैं। लियोन फेस्टिंगर का संज्ञानात्मक विसंगति सिद्धांत इस अवधि का एक महत्वपूर्ण योगदान था।
- **1980 और 1990 के दशक:** इस दशक में सामाजिक संज्ञान में वृद्धि जारी रही , साथ ही दृष्टिकोण, आत्म-अवधारणा, सामाजिक प्रभाव और पारस्परिक आकर्षण जैसे क्षेत्रों में भी अनुसंधान का विस्तार हुआ। विकासवादी मनोविज्ञान और तंत्रिका विज्ञान के प्रभावों को भी महसूस किया जाने लगा।
- **21वीं सदी:** सामाजिक मनोविज्ञान आज एक विविध और गतिशील क्षेत्र है।
  - **बहु-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य:** सांस्कृतिक संदर्भ के महत्व को अत्यधिक मान्यता मिली है।
  - **जैविक और तंत्रिका वैज्ञानिक दृष्टिकोण:** सामाजिक तंत्रिका विज्ञान और सामाजिक आनुवंशिकी जैसे क्षेत्र यह समझने की कोशिश कर रहे हैं कि मस्तिष्क और जीव विज्ञान सामाजिक व्यवहार को कैसे प्रभावित करते हैं।
  - **लागू सामाजिक मनोविज्ञान:** स्वास्थ्य मनोविज्ञान, पर्यावरणीय मनोविज्ञान, कानूनी मनोविज्ञान और संगठनात्मक मनोविज्ञान जैसे क्षेत्रों में सामाजिक मनोविज्ञान के सिद्धांतों को लागू किया जा रहा है।

- **खुला विज्ञान और प्रतिकृति संकट:** हाल के वर्षों में, सामाजिक मनोविज्ञान ने प्रतिकृति संकट (reliability crisis) को संबोधित करने और खुले विज्ञान (open science) प्रथाओं को अपनाने का प्रयास किया है ताकि अनुसंधान की विश्वसनीयता और पारदर्शिता में सुधार हो सके।

संक्षेप में, सामाजिक मनोविज्ञान एक युवा लेकिन तेजी से विकसित होने वाला क्षेत्र है जो मानवीय व्यवहार के सामाजिक पहलुओं को समझने के लिए वैज्ञानिक कठोरता, व्यक्तिगत फोकस और व्यापक दृष्टिकोण को जोड़ता है। इसका इतिहास दार्शनिक पूछताछ से शुरू होकर आज के अत्याधुनिक न्यूरोसाइंस और क्रॉस-सांस्कृतिक अध्ययनों तक फैला हुआ है, जो हमें यह समझने में मदद करता है कि हम सामाजिक दुनिया में कौन हैं और हम कैसे कार्य करते हैं।

प्रश्न न0 2– सामाजिक मनोविज्ञान के क्षेत्र, चुनौतियाँ एवं नई समस्याओं के समाधान की व्याख्या कीजिए?

उत्तर– सामाजिक मनोविज्ञान एक गतिशील क्षेत्र है जो व्यक्तियों और सामाजिक दुनिया के बीच जटिल परस्पर क्रिया को समझने का प्रयास करता है। यह न केवल मानव व्यवहार को समझाने के लिए सिद्धांतों का विकास करता है, बल्कि सामाजिक समस्याओं के व्यावहारिक समाधान खोजने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

आइए इसके क्षेत्र, चुनौतियों और नई समस्याओं के समाधान पर विस्तार से चर्चा करें:

सामाजिक मनोविज्ञान के क्षेत्र (Areas of Social Psychology):

सामाजिक मनोविज्ञान का विषय-क्षेत्र अत्यंत व्यापक है और इसमें मानव व्यवहार के कई पहलू शामिल हैं जो सामाजिक संदर्भों से प्रभावित होते हैं। इसके प्रमुख अध्ययन क्षेत्र निम्नलिखित हैं:

1. **सामाजिक संज्ञान (Social Cognition):** यह इस बात का अध्ययन करता है कि लोग अपने और दूसरों के बारे में कैसे सोचते हैं, सामाजिक जानकारी को कैसे संसाधित करते हैं, उसे कैसे याद रखते हैं, और सामाजिक दुनिया को कैसे समझते हैं। इसमें स्कीमा, दृष्टिकोण, रूढ़िवादिता (stereotypes), पूर्वाग्रह (biases), और निर्णय लेने की प्रक्रियाएँ शामिल हैं।
2. **दृष्टिकोण और दृष्टिकोण परिवर्तन (Attitudes and Attitude Change):** यह इस बात का अध्ययन करता है कि दृष्टिकोण (हमारी भावनाओं, विचारों और व्यवहार के पूर्व-निपटान) कैसे बनते हैं, वे व्यवहार को कैसे प्रभावित करते हैं, और उन्हें कैसे बदला जा सकता है (जैसे अनुनय के माध्यम से)। इसमें संज्ञानात्मक विसंगति (cognitive dissonance) का अध्ययन भी शामिल है।
3. **सामाजिक प्रभाव (Social Influence):** यह अध्ययन करता है कि लोग एक-दूसरे को कैसे प्रभावित करते हैं। इसमें अनुरूपता (conformity), आज्ञाकारिता (obedience), अनुनय (persuasion), भीड़ व्यवहार और सामाजिक सुविधा/अवरोध (social facilitation/inhibition) जैसे विषय शामिल हैं।
4. **पारस्परिक संबंध (Interpersonal Relationships):** यह अध्ययन करता है कि लोग एक-दूसरे को कैसे पसंद करते हैं, प्यार करते हैं, और रिश्ते कैसे बनाते हैं और बनाए रखते हैं। इसमें आकर्षण, दोस्ती, प्रेम, संघर्ष समाधान और संबंध विच्छेद जैसे विषय शामिल हैं।
5. **समूह प्रक्रियाएँ (Group Processes):** यह अध्ययन करता है कि समूह कैसे बनते हैं, कार्य करते हैं और व्यक्तियों को कैसे प्रभावित करते हैं। इसमें समूह ध्रुवीकरण (group polarization), समूह सोच (groupthink), नेतृत्व, टीमवर्क, अंतर्समूह संबंध (intergroup relations), और सामाजिक आलस्य (social loafing) जैसे विषय शामिल हैं।
6. **पूर्वाग्रह और भेदभाव (Prejudice and Discrimination):** यह अध्ययन करता है कि पूर्वाग्रह (पूर्वनिर्धारित नकारात्मक भावनाएं), रूढ़िवादिता (समूहों के बारे में अतिसरलीकृत विश्वास), और भेदभाव (नकारात्मक व्यवहार) कैसे विकसित होते हैं, उनके क्या प्रभाव होते हैं, और उन्हें कैसे कम किया जा सकता है।
7. **आक्रामकता और परोपकारिता (Aggression and Altruism):** आक्रामकता में दूसरों को नुकसान पहुँचाने का इरादा रखने वाला व्यवहार शामिल है, जबकि परोपकारिता दूसरों की मदद करने का स्वार्थहीन व्यवहार है। सामाजिक मनोवैज्ञानिक इन व्यवहारों के कारणों और परिणामों का अध्ययन करते हैं।
8. **स्वयं और पहचान (Self and Identity):** यह अध्ययन करता है कि व्यक्ति स्वयं को कैसे समझते हैं, आत्म-सम्मान कैसे विकसित करते हैं, और सामाजिक संदर्भ उनकी पहचान को कैसे आकार देते हैं।
9. **संस्कृति और सामाजिक व्यवहार (Culture and Social Behavior):** आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान में संस्कृति की भूमिका पर जोर दिया जाता है, यह समझते हुए कि सांस्कृतिक मानदंड, मूल्य और विश्वास सामाजिक व्यवहार को कैसे प्रभावित करते हैं।
10. **अनुप्रयुक्त सामाजिक मनोविज्ञान (Applied Social Psychology):** सामाजिक मनोविज्ञान के सिद्धांतों और निष्कर्षों को विभिन्न वास्तविक दुनिया की समस्याओं को हल करने के लिए लागू किया जाता है, जैसे कि स्वास्थ्य व्यवहार

को बढ़ावा देना, संगठनात्मक प्रभावशीलता में सुधार करना, कानूनी निर्णयों को समझना, और पर्यावरणीय समस्याओं का समाधान करना।

सामाजिक मनोविज्ञान की चुनौतियाँ (Challenges of Social Psychology):

सामाजिक मनोविज्ञान एक गतिशील क्षेत्र होने के साथ-साथ कई चुनौतियों का भी सामना करता है:

1. **मानव व्यवहार की जटिलता:** मानव व्यवहार अत्यंत जटिल और बहुआयामी होता है, जो कई आंतरिक और बाहरी कारकों से प्रभावित होता है। इन सभी कारकों को नियंत्रित करना और उनका अध्ययन करना चुनौतीपूर्ण हो सकता है।
2. **संस्कृति और संदर्भ की भूमिका:** सामाजिक व्यवहार सांस्कृतिक संदर्भ पर बहुत अधिक निर्भर करता है। एक संस्कृति में जो मान्य है या सच है, वह दूसरी में नहीं हो सकता। यह सामान्य सिद्धांतों का विकास करना मुश्किल बना सकता है जो सभी संस्कृतियों पर लागू होते हैं।
3. **प्रयोगशाला में बाहरी वैधता (External Validity in Lab Experiments):** अधिकांश सामाजिक मनोविज्ञान के प्रयोग प्रयोगशाला में किए जाते हैं जहाँ चर को नियंत्रित करना आसान होता है। हालांकि, इन नियंत्रित सेटिंग्स के निष्कर्षों को वास्तविक दुनिया की जटिल सामाजिक स्थितियों में सामान्यीकृत करना चुनौतीपूर्ण हो सकता है।
4. **नैतिक चिंताएँ (Ethical Concerns):** सामाजिक मनोविज्ञान अक्सर संवेदनशील विषयों जैसे पूर्वाग्रह, अनुरूपता और आज्ञाकारिता का अध्ययन करता है। इसमें प्रतिभागियों को संभावित रूप से मनोवैज्ञानिक संकट का अनुभव हो सकता है, जिससे शोधकर्ताओं के लिए नैतिक दिशानिर्देशों का पालन करना और प्रतिभागियों की भलाई सुनिश्चित करना महत्वपूर्ण हो जाता है। (उदाहरण के लिए, मिलग्राम के आज्ञाकारिता प्रयोग को आज के नैतिक मानकों के तहत अनुमति नहीं दी जाएगी)।
5. **प्रतिकृति संकट (Replication Crisis):** हाल के वर्षों में, मनोविज्ञान, जिसमें सामाजिक मनोविज्ञान भी शामिल है, को एक प्रतिकृति संकट का सामना करना पड़ा है। इसका मतलब है कि कुछ प्रकाशित अध्ययनों के निष्कर्षों को स्वतंत्र शोधकर्ताओं द्वारा दोहराया नहीं जा सका है। इसने क्षेत्र में अनुसंधान की कठोरता और विश्वसनीयता पर सवाल उठाए हैं, हालांकि इसे संबोधित करने के लिए महत्वपूर्ण प्रयास किए जा रहे हैं।
6. **सामाजीकरण और आत्म-चेतना (Social Desirability and Self-Awareness):** प्रतिभागी सामाजिक रूप से वांछनीय तरीके से व्यवहार कर सकते हैं या शोधकर्ताओं की उम्मीदों के अनुसार प्रतिक्रिया दे सकते हैं, जिससे परिणामों में पूर्वाग्रह आ सकता है। लोग हमेशा अपने व्यवहार के अंतर्निहित कारणों से अवगत नहीं होते हैं।
7. **परिवर्तनशील सामाजिक परिदृश्य (Changing Social Landscape):** समाज लगातार बदल रहा है - नई तकनीकें, सामाजिक मानदंड और वैश्विक घटनाएँ उत्पन्न हो रही हैं। सामाजिक मनोवैज्ञानिकों को अपने शोध को प्रासंगिक बनाए रखने और इन परिवर्तनों के प्रभावों का अध्ययन करने के लिए अनुकूल होना पड़ता है।
8. **अंतःविषय दृष्टिकोण की आवश्यकता:** सामाजिक मनोविज्ञान को अक्सर समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीति विज्ञान, तंत्रिका विज्ञान और कंप्यूटर विज्ञान जैसे अन्य विषयों के साथ सहयोग करने की आवश्यकता होती है ताकि सामाजिक समस्याओं की पूरी समझ विकसित की जा सके, जो अपने आप में एक चुनौती हो सकती है।

नई समस्याओं के समाधान (Solutions to New Problems):

सामाजिक मनोविज्ञान लगातार विकसित हो रहा है और नई सामाजिक समस्याओं के समाधान खोजने में सक्रिय रूप से योगदान दे रहा है:

1. **डिजिटल दुनिया और ऑनलाइन व्यवहार (Digital World and Online Behavior):**
   - **समस्याएँ:** साइबरबुलिंग, ऑनलाइन कट्टरता, गलत सूचना का प्रसार, सोशल मीडिया की लत, ऑनलाइन पहचान निर्माण।
   - **समाधान:** सामाजिक मनोवैज्ञानिक ऑनलाइन सामाजिक संपर्क की गतिशीलता का अध्ययन करते हैं, साइबरबुलिंग को रोकने के लिए हस्तक्षेप विकसित करते हैं, गलत सूचना के प्रसार को समझने और मुकाबला करने के लिए संज्ञानात्मक पूर्वाग्रहों का विश्लेषण करते हैं, और स्वस्थ ऑनलाइन व्यवहार को बढ़ावा देने के लिए दिशानिर्देश बनाते हैं। वे ऑनलाइन समुदायों में पहचान निर्माण और समूह ध्रुवीकरण का भी अध्ययन करते हैं।
2. **जलवायु परिवर्तन और पर्यावरणीय व्यवहार (Climate Change and Environmental Behavior):**
   - **समस्याएँ:** पर्यावरणीय गिरावट, जलवायु परिवर्तन को लेकर उदासीनता या इनकार, टिकाऊ व्यवहार अपनाने में बाधाएँ।
   - **समाधान:** सामाजिक मनोवैज्ञानिक यह अध्ययन करते हैं कि लोग पर्यावरणीय जोखिमों को कैसे समझते हैं, पर्यावरणीय मुद्दों के प्रति दृष्टिकोण कैसे बनाते हैं, और टिकाऊ व्यवहार (जैसे ऊर्जा संरक्षण, पुनर्चक्रण) को बढ़ावा

देने के लिए कौन से सामाजिक प्रभाव तकनीक सबसे प्रभावी हैं। वे पर्यावरणीय सक्रियता और सामाजिक आंदोलन का भी अध्ययन करते हैं।

3. **ध्रुवीकरण और राजनीतिक विभाजन (Polarization and Political Divide):**
   - **समस्याएँ:** राजनीतिक ध्रुवीकरण में वृद्धि, अंतर्समूह संघर्ष, गलत सूचना और "इको चैंबर"।
   - **समाधान:** सामाजिक मनोवैज्ञानिक समूह पहचान, अंतर्समूह पूर्वाग्रह और सामाजिक संपर्क के सिद्धांतों का उपयोग करते हुए ध्रुवीकरण के मनोवैज्ञानिक कारकों का अध्ययन करते हैं। वे संघर्ष कम करने, सामान्य पहचान को बढ़ावा देने और विभिन्न समूहों के बीच संचार और समझ में सुधार के लिए हस्तक्षेपों पर शोध करते हैं।
4. **महामारी और सार्वजनिक स्वास्थ्य व्यवहार (Pandemics and Public Health Behavior):**
   - **समस्याएँ:** वैक्सीन हेसिटेंसी, मास्क पहनने से इनकार, सामाजिक दूरी का पालन न करना, सार्वजनिक स्वास्थ्य दिशानिर्देशों के प्रति प्रतिरोध।
   - **समाधान:** महामारी के दौरान, सामाजिक मनोवैज्ञानिकों ने जोखिम धारणा, विश्वास, सामाजिक मानदंडों और अनुनय की भूमिका का अध्ययन किया ताकि सार्वजनिक स्वास्थ्य संदेशों की प्रभावशीलता को बढ़ाया जा सके और स्वस्थ व्यवहार को बढ़ावा दिया जा सके।
5. **कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) और मानव-एआई अंतःक्रिया (Artificial Intelligence and Human-AI Interaction):**
   - **समस्याएँ:** AI के प्रति विश्वास या अविश्वास, AI द्वारा पूर्वाग्रहों का बढ़ाना, AI के साथ भावनात्मक जुड़ाव।
   - **समाधान:** एक नया उभरता हुआ क्षेत्र मानव-एआई अंतःक्रिया के सामाजिक और मनोवैज्ञानिक पहलुओं की पड़ताल कर रहा है। इसमें यह समझना शामिल है कि लोग AI को कैसे समझते हैं, AI-जनित पूर्वाग्रहों को कैसे कम किया जाए, और AI को इस तरह से डिज़ाइन किया जाए जो नैतिक और सामाजिक रूप से स्वीकार्य हो।
6. **कार्यस्थल में विविधता और समावेशन (Diversity and Inclusion in the Workplace):**
   - **समस्याएँ:** कार्यस्थल में पूर्वाग्रह, भेदभाव, समावेशन की कमी, विविधता को अपनाने में बाधाएँ।
   - **समाधान:** सामाजिक मनोविज्ञान विविधता प्रशिक्षण, पूर्वाग्रह कम करने की रणनीतियों और समावेशी कार्य संस्कृतियों को बढ़ावा देने के लिए साक्ष्य-आधारित दृष्टिकोण विकसित करने में मदद करता है।
7. **सामाजिक न्याय और असमानता (Social Justice and Inequality):**
   - **समस्याएँ:** प्रणालीगत असमानता, उत्पीड़न, हाशिए पर पड़े समूहों के मुद्दे।
   - **समाधान:** सामाजिक मनोवैज्ञानिक सामाजिक पहचान, शक्ति गतिशीलता और सामाजिक आंदोलन के सिद्धांतों का उपयोग करके सामाजिक न्याय के मुद्दों को समझने और संबोधित करने में मदद करते हैं। वे सामाजिक परिवर्तन को बढ़ावा देने और असमानता को कम करने के लिए हस्तक्षेपों पर शोध करते हैं।

संक्षेप में, सामाजिक मनोविज्ञान का क्षेत्र व्यापक है और यह मानव व्यवहार के उन सभी पहलुओं को छूता है जो सामाजिक संदर्भों से प्रभावित होते हैं। जबकि इसे अपनी अंतर्निहित जटिलता और अनुसंधान चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, यह लगातार उभरती हुई सामाजिक समस्याओं का समाधान खोजने के लिए अपने सिद्धांतों और अनुसंधान विधियों को लागू कर रहा है, जिससे यह आधुनिक समाज के लिए एक अत्यंत प्रासंगिक और मूल्यवान अनुशासन बन गया है।

प्रश्न न0 3– सामाजिक शक्ति के आधार पर व्यवहार मनोविज्ञान के आधारभूत शक्तियों की व्याख्या कीजिए?

उत्तर– सामाजिक शक्ति के आधार पर व्यवहार मनोविज्ञान, यह अध्ययन करता है कि कैसे सामाजिक शक्ति व्यक्ति के व्यवहार, भावनाओं और विचारों को प्रभावित करती है। सामाजिक शक्ति, किसी व्यक्ति या समूह की दूसरों पर प्रभाव डालने की क्षमता है, और यह व्यवहार मनोविज्ञान में एक महत्वपूर्ण अवधारणा है।

सामाजिक शक्ति के विभिन्न आधार हैं जैसे:

- **औपचारिक शक्ति:** यह शक्ति किसी पद या स्थिति के कारण होती है, जैसे कि एक बॉस के पास अपने कर्मचारियों पर शक्ति होती है।
- **अनौपचारिक शक्ति:** यह शक्ति दूसरों के बीच लोकप्रियता, वरिष्ठता या विशेषज्ञता के कारण होती है।
- **पुरस्कार शक्ति:** यह शक्ति दूसरों को पुरस्कृत करने की क्षमता के कारण होती है, जैसे कि एक शिक्षक द्वारा छात्रों को अच्छे ग्रेड देना।
- **बलपूर्वक शक्ति:** यह शक्ति दूसरों को दंडित करने की क्षमता के कारण होती है, जैसे कि एक पुलिस अधिकारी द्वारा अपराधियों को गिरफ्तार करना।
- **वैध शक्ति:** यह शक्ति किसी व्यक्ति के पद या स्थिति के कारण होती है, जैसे कि एक न्यायाधीश द्वारा कानून लागू करना।

- **संदर्भ शक्ति:** यह शक्ति किसी व्यक्ति के गुणों या विशेषताओं के कारण होती है , जैसे कि एक प्रसिद्ध व्यक्ति का अनुसरण करना।
- **विशेषज्ञ शक्ति:** यह शक्ति किसी व्यक्ति के ज्ञान या कौशल के कारण होती है , जैसे कि एक डॉक्टर द्वारा बीमारी का निदान करना।

सामाजिक शक्ति व्यक्ति के व्यवहार को कई तरह से प्रभावित करती है। उदाहरण के लिए , उच्च शक्ति वाले लोग अधिक आत्मविश्वास और निर्णय लेने वाले हो सकते हैं, जबकि निम्न शक्ति वाले लोग अधिक आज्ञाकारी और अनुशासित हो सकते हैं।

सामाजिक शक्ति सामाजिक मनोविज्ञान में एक महत्वपूर्ण अवधारणा है क्योंकि यह सामाजिक अंतःक्रियाओं , समूहों और संगठनों के कामकाज को समझने में मदद करती है।

सामाजिक शक्ति के अध्ययन में, सामाजिक मनोवैज्ञानिक यह भी जांच करते हैं कि लोग कैसे सामाजिक शक्ति का उपयोग करते हैं और इसका दुरुपयोग करते हैं, और इसका दूसरों के व्यवहार पर क्या प्रभाव पड़ता है।

उदाहरण के लिए, एक बॉस अपने कर्मचारियों पर शक्ति का दुरुपयोग कर सकता है , जिससे वे काम करने में कम प्रेरित हो सकते हैं।

इसके विपरीत, एक नेता अपनी शक्ति का उपयोग दूसरों को प्रेरित करने और प्रोत्साहित करने के लिए कर सकता है, जिससे समूह का प्रदर्शन बेहतर हो सकता है।

सामाजिक मनोविज्ञान के माध्यम से , हम सामाजिक शक्ति के प्रभावों को बेहतर ढंग से समझ सकते हैं और अधिक सकारात्मक और उत्पादक सामाजिक वातावरण बना सकते हैं।

कुल मिलाकर, सामाजिक शक्ति एक जटिल अवधारणा है जो व्यक्ति के व्यवहार को कई तरह से प्रभावित करती है। सामाजिक मनोविज्ञान, सामाजिक शक्ति के प्रभावों को समझने और अधिक सकारात्मक सामाजिक वातावरण बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

<u>प्रश्न न0 4–</u> सामाजिक मनोविज्ञान में प्रचार–प्रसार का महत्व एवं सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए?

<u>उत्तर–</u> सामाजिक मनोविज्ञान में प्रचार-प्रसार (Propaganda and Persuasion) का अध्ययन एक महत्वपूर्ण और गहरा क्षेत्र है। यह इस बात पर केंद्रित है कि कैसे संदेशों को व्यक्तियों के विचारों , भावनाओं और व्यवहारों को प्रभावित करने के लिए डिजाइन और प्रसारित किया जाता है। जबकि "प्रचार-प्रसार" शब्द अक्सर नकारात्मक अर्थों में प्रयोग होता है (विशेषकर जब इसका उपयोग बड़े पैमाने पर जनता की राय को नियंत्रित करने के लिए किया जाता है) , सामाजिक मनोविज्ञान इसे एक व्यापक अवधारणा के रूप में देखता है जिसमें अनुनय (persuasion) के सिद्धांत और प्रक्रियाएं शामिल हैं।

सामाजिक मनोविज्ञान में प्रचार-प्रसार का महत्व (Importance of Propaganda/Persuasion in Social Psychology):

प्रचार-प्रसार (या व्यापक अर्थ में, अनुनय) का अध्ययन सामाजिक मनोविज्ञान में कई कारणों से महत्वपूर्ण है:

1. **सामाजिक प्रभाव को समझना (Understanding Social Influence):** प्रचार-प्रसार सामाजिक प्रभाव का एक शक्तिशाली रूप है। इसका अध्ययन करके , सामाजिक मनोवैज्ञानिक यह समझ सकते हैं कि लोग संदेशों से कैसे प्रभावित होते हैं, निर्णय कैसे लेते हैं, और अपने विश्वासों और व्यवहारों को कैसे बदलते हैं।
2. **मानवीय व्यवहार की भविष्यवाणी और नियंत्रण (Predicting and Controlling Human Behavior):** अनुनय के सिद्धांतों को समझकर, यह भविष्यवाणी करना संभव हो जाता है कि लोग विशिष्ट संदेशों पर कैसे प्रतिक्रिया देंगे और कुछ हद तक उनके व्यवहार को कैसे प्रभावित किया जा सकता है। यह राजनीति , विज्ञापन, सार्वजनिक स्वास्थ्य और शिक्षा जैसे क्षेत्रों में महत्वपूर्ण है।
3. **लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं के लिए प्रासंगिकता (Relevance to Democratic Processes):** एक लोकतांत्रिक समाज में, नागरिक चुनावों में मतदान करते हैं , सार्वजनिक नीति पर राय बनाते हैं और सामाजिक आंदोलनों में भाग लेते हैं। इन प्रक्रियाओं में सूचना का प्रसार और अनुनय केंद्रीय भूमिका निभाते हैं। प्रचार-प्रसार के अध्ययन से यह समझने में मदद मिलती है कि सार्वजनिक राय कैसे बनती है और संभावित रूप से कैसे हेरफेर की जा सकती है , जिससे नागरिकों को सूचित और आलोचनात्मक उपभोक्ता बनने में मदद मिलती है।
4. **सांस्कृतिक और वैचारिक प्रभाव (Cultural and Ideological Impact):** प्रचार-प्रसार अक्सर सामाजिक मानदंडों, मूल्यों और विचारधाराओं को आकार देने और मजबूत करने में मदद करता है। इसका अध्ययन करके , हम समझ सकते हैं कि कैसे कुछ विश्वास या विचार समाज में प्रमुख बन जाते हैं।
5. **गलत सूचना और दुष्प्रचार का मुकाबला (Combating Misinformation and Disinformation):** आज के डिजिटल युग में, गलत सूचना (misinformation) और दुष्प्रचार (disinformation) का प्रसार एक गंभीर चुनौती है। सामाजिक

मनोविज्ञान के अनुनय के सिद्धांत यह समझने में मदद करते हैं कि ये संदेश क्यों प्रभावी होते हैं और उन्हें कैसे प्रतिवाद किया जा सकता है या उनके प्रभावों को कम किया जा सकता है।

6. **व्यावहारिक अनुप्रयोग (Practical Applications):** अनुनय के सिद्धांतों का उपयोग विभिन्न सकारात्मक उद्देश्यों के लिए किया जाता है:
   - **सार्वजनिक स्वास्थ्य अभियान:** धूम्रपान रोकने, टीकाकरण को बढ़ावा देने, या स्वस्थ खाने की आदतों को अपनाने के लिए।
   - **पर्यावरणीय जागरूकता:** पर्यावरणीय संरक्षण को बढ़ावा देने के लिए।
   - **शिक्षा:** छात्रों को सीखने और कुछ दृष्टिकोणों को अपनाने के लिए प्रेरित करने हेतु।
   - **विज्ञापन और विपणन:** उत्पादों या सेवाओं को बेचने के लिए।
   - **सामाजिक परिवर्तन:** सामाजिक न्याय या मानवाधिकारों के लिए आंदोलन।

7. **ज्ञान का हथियार (A Tool of Knowledge):** प्रचार-प्रसार का अध्ययन हमें यह समझने में मदद करता है कि संचार कैसे काम करता है और लोग सूचनाओं पर कैसे प्रतिक्रिया करते हैं। यह हमें अपने स्वयं के संज्ञानात्मक पूर्वाग्रहों और कमजोरियों को पहचानने में भी मदद करता है जो हमें हेरफेर के प्रति संवेदनशील बनाते हैं।

प्रचार-प्रसार के सिद्धांत (Theories of Propaganda/Persuasion):

सामाजिक मनोविज्ञान में अनुनय को समझाने के लिए कई प्रमुख सिद्धांत विकसित किए गए हैं। ये सिद्धांत बताते हैं कि संदेश, स्रोत और दर्शक कैसे एक साथ मिलकर दृष्टिकोण और व्यवहार परिवर्तन को प्रभावित करते हैं:

1. एलबोरेशन लाइकलीहुड मॉडल (Elaboration Likelihood Model - ELM) - पेटी और कैसिओप्पो (Petty & Cacioppo):

यह अनुनय का सबसे प्रभावशाली और व्यापक रूप से स्वीकृत मॉडल है। यह बताता है कि अनुनय दो अलग-अलग मार्गों से हो सकता है:

- **केंद्रीय मार्ग (Central Route):** यह तब होता है जब लोग संदेश की सामग्री (तर्कों की गुणवत्ता, साक्ष्य) पर ध्यान से विचार करते हैं और उसके बारे में गहनता से सोचते हैं। यह तब होता है जब संदेश प्राप्तकर्ता के लिए प्रासंगिक होता है, उसके पास प्रसंस्करण के लिए प्रेरणा और क्षमता होती है। इस मार्ग से होने वाला दृष्टिकोण परिवर्तन अधिक स्थायी और व्यवहार के प्रति अधिक प्रतिरोधी होता है।
  - **उदाहरण:** एक कार खरीदने वाला व्यक्ति जो इंजन के प्रदर्शन, ईंधन दक्षता और सुरक्षा सुविधाओं पर गहन शोध करता है।
- **परिधीय मार्ग (Peripheral Route):** यह तब होता है जब लोग संदेश के बाहरी संकेतों (जैसे स्रोत की विश्वसनीयता, आकर्षण, संदेश की लंबाई, संगीत, ब्रांडिंग) पर ध्यान केंद्रित करते हैं, बजाय इसके कि वे तर्क की वास्तविक गुणवत्ता का मूल्यांकन करें। यह तब होता है जब प्रेरणा या क्षमता कम होती है। इस मार्ग से होने वाला दृष्टिकोण परिवर्तन आमतौर पर कम स्थायी और व्यवहार के प्रति कम प्रतिरोधी होता है।
  - **उदाहरण:** एक कार खरीदना क्योंकि एक प्रसिद्ध सेलिब्रिटी उसका प्रचार कर रहा है, भले ही कार की विशेषताओं के बारे में कुछ भी न पता हो।

2. हेयुरिस्टिक-सिस्टमैटिक मॉडल (Heuristic-Systematic Model - HSM) - चैकिन (Chaiken):

यह मॉडल ELM के समान है, लेकिन थोड़ी अलग शब्दावली का उपयोग करता है। यह भी मानता है कि लोग दो तरीकों से जानकारी संसाधित कर सकते हैं:

- **व्यवस्थित प्रसंस्करण (Systematic Processing):** केंद्रीय मार्ग के समान, इसमें संदेश की सामग्री का गहन मूल्यांकन शामिल है।
- **अनुमानी प्रसंस्करण (Heuristic Processing):** परिधीय मार्ग के समान, इसमें सरल नियमों या "हेयुरिस्टिक्स" का उपयोग शामिल है (जैसे "विशेषज्ञ सही होते हैं," "अधिक तर्क बेहतर होते हैं")। HSM इस बात पर जोर देता है कि लोग अक्सर दोनों प्रक्रियाओं का एक साथ उपयोग कर सकते हैं, या यदि वे पर्याप्त रूप से प्रेरित हैं तो अनुमानी प्रसंस्करण के बावजूद व्यवस्थित प्रसंस्करण में संलग्न हो सकते हैं।

3. सामाजिक निर्णय सिद्धांत (Social Judgment Theory - Sherif & Hovland):

यह सिद्धांत बताता है कि एक प्रेरक संदेश की प्रभावशीलता इस बात पर निर्भर करती है कि प्राप्तकर्ता का पूर्व-मौजूदा दृष्टिकोण संदेश के साथ कैसे इंटरैक्ट करता है। इसमें तीन मुख्य क्षेत्र होते हैं:

- **स्वीकृति का अक्षांश (Latitude of Acceptance):** वह सीमा जिसमें संदेश स्वीकार्य या सहमत होने योग्य प्रतीत होता है।

- **अस्वीकृति का अक्षांश (Latitude of Rejection):** वह सीमा जिसमें संदेश अस्वीकार्य या असहमत होने योग्य प्रतीत होता है।
- **गैर-प्रतिबद्धता का अक्षांश (Latitude of Non-Commitment):** वह सीमा जिसमें संदेश तटस्थ या अस्पष्ट लगता है।

यह सिद्धांत बताता है कि लोग उन संदेशों से सबसे अधिक प्रभावित होते हैं जो उनके स्वीकृति के अक्षांश में आते हैं। यदि संदेश अस्वीकृति के अक्षांश में बहुत गहराई से है, तो यह "बूमरैंग प्रभाव" पैदा कर सकता है और प्राप्तकर्ता को विपरीत दिशा में धकेल सकता है।

4. सामाजिक प्रभाव के सिद्धांत (Principles of Social Influence - Cialdini):

रॉबर्ट सियालडिनी ने अनुनय के छह प्रमुख सिद्धांतों की पहचान की है जिनका उपयोग अक्सर प्रचार और विपणन में किया जाता है:

- **पारस्परिकता (Reciprocity):** लोग अक्सर उन्हें चुकाना पसंद करते हैं जिन्होंने उनके लिए कुछ किया है (जैसे मुफ्त नमूने देना)।
- **प्रतिबद्धता और संगति (Commitment and Consistency):** लोग एक बार प्रतिबद्ध होने के बाद अपने निर्णयों और व्यवहारों के अनुरूप रहना चाहते हैं (जैसे एक छोटे से अनुरोध से सहमत होने के बाद बड़े अनुरोध से सहमत होना - "फुट-इन-द-डोर" तकनीक)।
- **सामाजिक प्रमाण (Social Proof):** लोग यह निर्धारित करने के लिए दूसरों के व्यवहार पर भरोसा करते हैं कि क्या सही है (जैसे "सबसे ज्यादा बिकने वाला" उत्पाद)।
- **अधिकार (Authority):** लोग विशेषज्ञ या प्राधिकारी आंकड़ों का पालन करने के लिए अधिक प्रवृत्त होते हैं (जैसे डॉक्टर या प्रोफेसर द्वारा प्रचारित उत्पाद)।
- **पसंद (Liking):** लोग उन लोगों से प्रभावित होने की अधिक संभावना रखते हैं जिन्हें वे पसंद करते हैं (जैसे आकर्षक या समान दिखने वाले लोग)।
- **दुर्लभता (Scarcity):** जो चीजें दुर्लभ या सीमित उपलब्धता वाली होती हैं , वे अधिक वांछनीय प्रतीत होती हैं (जैसे "सीमित समय का प्रस्ताव")।

5. संज्ञानात्मक विसंगति सिद्धांत (Cognitive Dissonance Theory - Festinger):

हालांकि सीधे तौर पर अनुनय का सिद्धांत नहीं है , यह दृष्टिकोण परिवर्तन को समझाने में महत्वपूर्ण है। यह बताता है कि जब लोगों के पास दो या दो से अधिक असंगत संज्ञान (विचार , विश्वास, दृष्टिकोण, व्यवहार) होते हैं , तो वे एक अप्रिय मानसिक स्थिति (विसंगति) का अनुभव करते हैं। इस विसंगति को कम करने के लिए, वे अपने किसी एक संज्ञान को बदल सकते हैं, अक्सर उस दृष्टिकोण को बदल सकते हैं जो प्रेरक संदेश के अनुरूप है।

- **उदाहरण:** एक धूम्रपान करने वाला व्यक्ति जानता है कि धूम्रपान हानिकारक है (ज्ञान) लेकिन वह धूम्रपान करता रहता है (व्यवहार)। इस विसंगति को कम करने के लिए वह या तो धूम्रपान छोड़ सकता है या यह विश्वास कर सकता है कि धूम्रपान उतना हानिकारक नहीं है।

निष्कर्ष:

सामाजिक मनोविज्ञान में प्रचार-प्रसार और अनुनय का अध्ययन हमें यह समझने में मदद करता है कि मानव मन पर कैसे प्रभाव डाला जा सकता है। यह हमें न केवल यह समझने में सक्षम बनाता है कि कैसे संदेशों को प्रभावी ढंग से डिजाइन किया जाए, बल्कि यह भी कि हमें उन संदेशों का आलोचनात्मक मूल्यांकन कैसे करना चाहिए जिनसे हम प्रतिदिन घिरे रहते हैं। यह ज्ञान व्यक्तियों को अधिक सूचित निर्णय लेने और संभावित हेरफेर से खुद को बचाने के लिए सशक्त बनाता है , जो आज के सूचना-अधिशेष समाज में पहले से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है।

प्रश्न न0 5– विकार या घबराहट के प्रकार की व्याख्या कीजिए?

उत्तर– सामाजिक मनोविज्ञान व्यक्तियों के व्यवहार , विचारों और भावनाओं पर सामाजिक कारकों के प्रभाव का अध्ययन करता है। हालांकि, सामाजिक कारक चिंता या घबराहट को ट्रिगर या बढ़ा सकते हैं (जैसे सामाजिक चिंता) , लेकिन "विकार या घबराहट के प्रकार" का विस्तृत वर्गीकरण और व्याख्या असामान्य मनोविज्ञान का कार्यक्षेत्र है।

फिर भी, चूंकि प्रश्न पूछा गया है, मैं आपको **"घबराहट विकार" (Anxiety Disorders)** के विभिन्न प्रकारों की विस्तृत व्याख्या प्रदान कर सकता हूँ , जो मनोवैज्ञानिक विकारों के एक प्रमुख समूह का प्रतिनिधित्व करते हैं और अक्सर "विकार" या "घबराहट" शब्द से संबंधित होते हैं।

घबराहट विकार (Anxiety Disorders):

घबराहट विकार मानसिक स्वास्थ्य स्थितियों का एक समूह है जिनकी विशेषता अत्यधिक चिंता , भय या घबराहट है जो व्यक्ति के दैनिक जीवन में हस्तक्षेप करती है। यह केवल occasional चिंता या तनाव महसूस करने से बहुत अलग है , क्योंकि यह अधिक तीव्र, लगातार और अक्सर बिना किसी स्पष्ट कारण के होता है।

अमेरिकन साइकियाट्रिक एसोसिएशन (APA) द्वारा प्रकाशित **मानसिक विकारों के नैदानिक और सांख्यिकीय मैनुअल (DSM-5-TR)** में घबराहट विकारों को वर्गीकृत किया गया है। यहाँ प्रमुख प्रकारों का विस्तृत विवरण दिया गया है:

1. सामान्यीकृत घबराहट विकार (Generalized Anxiety Disorder - GAD):

- **परिभाषा:** यह एक ऐसी स्थिति है जिसमें व्यक्ति को विभिन्न प्रकार की घटनाओं या गतिविधियों (जैसे काम , स्कूल, स्वास्थ्य) के बारे में अत्यधिक, अनियंत्रित और लगातार चिंता होती है, जो कम से कम छह महीने तक बनी रहती है। यह चिंता अक्सर वास्तविक समस्याओं के अनुपात में नहीं होती।
- **लक्षण:**
  - लगातार चिंता और घबराहट।
  - बेचैनी या किनारे पर महसूस करना।
  - आसानी से थक जाना।
  - ध्यान केंद्रित करने में कठिनाई या दिमाग का खाली हो जाना।
  - चिड़चिड़ापन।
  - मांसपेशियों में तनाव।
  - नींद की गड़बड़ी (गिरने में कठिनाई, सोते रहना, या बेचैन, असंतोषजनक नींद)।
- **सामाजिक मनोविज्ञान से संबंध (परोक्ष):** सामाजिक कारक जैसे पुरानी सामाजिक-आर्थिक असुरक्षा , कार्यस्थल का तनाव, या पारिवारिक मुद्दे इस प्रकार की चिंता को ट्रिगर या बढ़ा सकते हैं।

2. पैनिक डिसऑर्डर (Panic Disorder):

- **परिभाषा:** इस विकार की विशेषता अप्रत्याशित और बार-बार होने वाले पैनिक अटैक होते हैं , जिसके बाद कम से कम एक महीने तक एक और अटैक होने की लगातार चिंता या अटैक के परिणामों (जैसे नियंत्रण खोना , दिल का दौरा पड़ना, पागल हो जाना) के बारे में चिंता रहती है।
- **पैनिक अटैक के लक्षण (अचानक और चरम पर पहुँचते हैंआमतौर पर 10 मिनट के भीतर):**
  - तेज धड़कन, धड़कन का तेज़ होना या दिल का तेज़ चलना।
  - पसीना आना।
  - कांपना या हिलना।
  - सांस लेने में तकलीफ या दम घुटना।
  - सीने में दर्द या बेचैनी।
  - मतली या पेट खराब।
  - चक्कर आना, अस्थिर महसूस करना, हल्का सिरदर्द या बेहोशी।
  - ठंड लगना या गर्मी लगना।
  - संवेदनाओं का सुन्न होना या झुनझुनी।
  - अवास्तविकता (derealization) या खुद से अलग होने (depersonalization) की भावना।
  - नियंत्रण खोने या पागल होने का डर।
  - मरने का डर।
- **सामाजिक मनोविज्ञान से संबंध (परोक्ष):** सार्वजनिक स्थानों या सामाजिक स्थितियों में पैनिक अटैक का अनुभव करना व्यक्ति को ऐसी स्थितियों से बचने के लिए प्रेरित कर सकता है, जिससे सामाजिक अलगाव हो सकता है।

3. अगोराफोबिया (Agoraphobia):

- **परिभाषा:** यह एक ऐसी चिंता विकार है जिसमें व्यक्ति उन स्थितियों या स्थानों से बचने लगता है जहाँ से निकलना मुश्किल हो सकता है या जहाँ पैनिक अटैक या अन्य अप्रिय लक्षणों की स्थिति में मदद उपलब्ध न हो। यह अक्सर पैनिक डिसऑर्डर के साथ होता है, लेकिन स्वतंत्र रूप से भी हो सकता है।
- **प्रमुख भयभीत स्थितियाँ:**
  - सार्वजनिक परिवहन का उपयोग करना।
  - खुली जगहें (जैसे पार्किंग स्थल, बाजार)।
  - बंद जगहें (जैसे दुकानें, थिएटर)।

- o भीड़ में खड़े होना या लाइन में लगना।
- o घर से बाहर अकेले होना।

- **सामाजिक मनोविज्ञान से संबंध:** यह विकार सीधे सामाजिक संदर्भों से बचने पर केंद्रित है, जिससे सामाजिक भागीदारी और संपर्क में गंभीर कमी आती है। सार्वजनिक स्थानों पर दूसरों द्वारा देखे जाने या न्याय किए जाने का डर भी इसमें शामिल हो सकता है।

4. विशिष्ट फोबिया (Specific Phobia):

- **परिभाषा:** यह एक विशेष वस्तु या स्थिति के प्रति अत्यधिक , तर्कहीन और लगातार भय है जो उस वस्तु या स्थिति द्वारा उत्पन्न वास्तविक खतरे के अनुपात में नहीं होता। भयभीत वस्तु या स्थिति के संपर्क में आने पर लगभग हमेशा तत्काल चिंता प्रतिक्रिया होती है।
- **सामान्य प्रकार:**
  - o **जानवरों का प्रकार:** (जैसे मकड़ियों, सांप, कुत्ते)
  - o **प्राकृतिक पर्यावरण का प्रकार:** (जैसे ऊँचाई, तूफान, पानी)
  - o **रक्त-इंजेक्शन-चोट का प्रकार:** (जैसे सुई, रक्त, चोट)
  - o **स्थितिजन्य प्रकार:** (जैसे हवाई जहाज, लिफ्ट, बंद जगहें)
  - o **अन्य प्रकार:** (जैसे उल्टी, दम घुटना, तेज़ आवाज़)
- **सामाजिक मनोविज्ञान से संबंध:** जबकि फोबिया का मूल आमतौर पर व्यक्तिगत अनुभव (जैसे आघात) से आता है , सामाजिक अधिगम (दूसरों को डरते हुए देखकर) या सांस्कृतिक कारक (कुछ जानवरों के प्रति आम डर) फोबिया के विकास और रखरखाव में भूमिका निभा सकते हैं।

5. सामाजिक घबराहट विकार (Social Anxiety Disorder - SAD) / सामाजिक फोबिया (Social Phobia):

- **परिभाषा:** यह एक ऐसी स्थिति है जिसमें व्यक्ति को सामाजिक स्थितियों में दूसरों द्वारा नकारात्मक रूप से आंके जाने या शर्मिंदा होने के बारे में तीव्र चिंता और भय होता है। यह डर इतना तीव्र हो सकता है कि व्यक्ति उन स्थितियों से पूरी तरह बचने लगता है।
- **सामान्य भयभीत सामाजिक स्थितियाँ:**
  - o सार्वजनिक रूप से बोलना या प्रदर्शन करना।
  - o अपरिचित लोगों से मिलना।
  - o दूसरों के सामने खाना या पीना।
  - o पार्टियों या सामाजिक आयोजनों में भाग लेना।
  - o दूसरों की उपस्थिति में कुछ करना (जैसे लिखना)।
- **लक्षण:**
  - o सामाजिक स्थितियों से पहले या उसके दौरान तीव्र चिंता।
  - o शारीरिक लक्षण जैसे पसीना, कंपकंपी, तेज धड़कन, लाल होना।
  - o सामाजिक स्थितियों से बचना या उन्हें अत्यधिक संकट के साथ सहना।
  - o यह मानना कि दूसरे उन्हें नकारात्मक रूप से देख रहे हैं।
- **सामाजिक मनोविज्ञान से सीधा संबंध:** यह विकार सीधे सामाजिक संदर्भों और दूसरों की उपस्थिति से संबंधित है। आत्म-प्रस्तुति, सामाजिक तुलना, और दूसरों द्वारा मूल्यांकन का डर केंद्रीय भूमिका निभाते हैं , जो सभी सामाजिक मनोविज्ञान के प्रमुख विषय हैं।

6. पृथक्करण घबराहट विकार (Separation Anxiety Disorder):

- **परिभाषा:** यह किसी महत्वपूर्ण लगाव के व्यक्ति से अलग होने के बारे में अत्यधिक चिंता है (जैसे बच्चे का अपने माता-पिता से)। यह विकार वयस्कों में भी हो सकता है , जहाँ उन्हें अपने जीवनसाथी या बच्चों से अलग होने पर अत्यधिक चिंता होती है।
- **लक्षण:**
  - o अलग होने की आशंका या अनुभव पर अत्यधिक संकट।
  - o पृथक्करण के कारण शारीरिक लक्षण (सिरदर्द, मतली)।
  - o अकेले या किसी लगाव के व्यक्ति के बिना रहने की अनिच्छा।
  - o आवर्ती बुरे सपने जो अलगाव की थीम पर केंद्रित होते हैं।
  - o अकेले सोने से इनकार।

- **सामाजिक मनोविज्ञान से संबंध (परोक्ष):** लगाव सिद्धांत, जो सामाजिक मनोविज्ञान और विकास मनोविज्ञान दोनों से संबंधित है, इस विकार को समझने में मदद करता है। यह प्रारंभिक सामाजिक संबंधों की गुणवत्ता और उनके अलगाव पर प्रतिक्रियाओं को प्रभावित करने के तरीके पर प्रकाश डालता है।

7. सिलेक्टिव म्यूटिज्म (Selective Mutism):

- **परिभाषा:** यह एक दुर्लभ घबराहट विकार है जिसमें एक बच्चा (या वयस्क) कुछ सामाजिक स्थितियों में बोलने में लगातार विफल रहता है जहाँ बोलने की उम्मीद की जाती है (जैसे स्कूल), जबकि अन्य स्थितियों में बोलने में सक्षम होता है (जैसे घर पर परिवार के सदस्यों के साथ)। यह विकार शैक्षणिक या व्यावसायिक उपलब्धि या सामाजिक संचार में हस्तक्षेप करता है।

सामाजिक मनोविज्ञान से संबंध (परोक्ष): सामाजिक भय और दूसरों द्वारा मूल्यांकन किए जाने का डर इस विकार का एक महत्वपूर्ण घटक है, जो सामाजिक चिंता के चरम रूप में प्रकट होता है।

प्रश्न न0 6– संवेदना की प्रकृति, व्यवहारिक चुनौतियों की व्याख्या कीजिए?

उत्तर– संवेदना (sensation) और सामाजिक मनोविज्ञान (social psychology) के बीच संबंध को समझना महत्वपूर्ण है , क्योंकि हमारी संवेदनाएं हमारे सामाजिक व्यवहार और अनुभवों को प्रभावित करती हैं। संवेदना , वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा हम अपनी इंद्रियों के माध्यम से दुनिया को अनुभव करते हैं , जैसे कि देखना, सुनना, सूंघना, चखना और छूना। सामाजिक मनोविज्ञान, व्यक्तियों के विचारों, भावनाओं और व्यवहारों पर सामाजिक स्थितियों के प्रभाव का अध्ययन है।

संवेदना की प्रकृति:

संवेदना, मस्तिष्क द्वारा संसाधित होने से पहले, संवेदी अंगों (जैसे आंख, कान, नाक, जीभ, त्वचा) द्वारा प्राप्त जानकारी है। यह जानकारी विद्युत आवेगों में परिवर्तित हो जाती है और फिर मस्तिष्क तक पहुंचती है , जहां इसे व्याख्यायित किया जाता है और हमें दुनिया का अनुभव होता है।

व्यवहारिक चुनौतियाँ:

संवेदना और सामाजिक मनोविज्ञान के बीच कई व्यवहारिक चुनौतियाँ हैं:

- **सामाजिक प्रभाव:** हमारी संवेदनाएं सामाजिक संदर्भ से प्रभावित होती हैं। उदाहरण के लिए , हम किसी व्यक्ति को आकर्षक पाते हैं, यह इस बात पर निर्भर हो सकता है कि हम उसे किसके साथ देखते हैं , या हम किसी विशेष स्थिति में कैसा महसूस करते हैं।
- **भेदभाव:** हमारी संवेदनाएं पूर्वाग्रहों और रूढ़ियों से प्रभावित हो सकती हैं, जिससे दूसरों के साथ भेदभाव हो सकता है।
- **सामाजिक मानदंड:** सामाजिक मानदंड, जो सामाजिक अपेक्षाएं हैं, हमारी संवेदनाओं को भी प्रभावित कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, हम दूसरों की प्रतिक्रियाओं को देखने के बाद ही किसी विशेष चीज को स्वादिष्ट या अप्रिय मान सकते हैं।
- **सामाजिक संज्ञान:** हम दूसरों के बारे में जो जानकारी प्राप्त करते हैं, वह हमारे सामाजिक व्यवहार को प्रभावित करती है।

उदाहरण:

- **सामाजिक तुलना:** हम दूसरों के साथ अपनी तुलना करते हैं, और यह हमारी संवेदनाओं को प्रभावित कर सकता है। यदि हम देखते हैं कि कोई व्यक्ति हमसे अधिक सफल है, तो हम अपनी क्षमताओं के बारे में बुरा महसूस कर सकते हैं।
- **सामाजिक समर्थन:** सामाजिक समर्थन, जैसे कि दोस्तों और परिवार से मिलने वाला प्रोत्साहन, हमारी संवेदनाओं और मानसिक स्वास्थ्य को बेहतर बनाने में मदद कर सकता है।
- **सामाजिक प्रदर्शन:** हम दूसरों के सामने अच्छा प्रदर्शन करने के लिए उत्सुक हो सकते हैं, और यह हमारी संवेदनाओं को प्रभावित कर सकता है। उदाहरण के लिए , हम किसी सार्वजनिक भाषण के दौरान घबराहट महसूस कर सकते हैं।

प्रश्न न0 7– सामाजिक मनोविज्ञान में मानव व्यवहार के प्रभाव, सामाजिक जीवन में किस प्रकार प्रभावित करता है?

उत्तर– सामाजिक मनोविज्ञान वह वैज्ञानिक अध्ययन है जो इस बात पर केंद्रित है कि व्यक्तियों के विचार , भावनाएँ और व्यवहार दूसरों की वास्तविक, काल्पनिक या निहित उपस्थिति से कैसे प्रभावित होते हैं। संक्षेप में , यह इस बात की पड़ताल करता है कि सामाजिक दुनिया मानव व्यवहार को कैसे आकार देती है और यह मानव के सामाजिक जीवन में किस प्रकार महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

मानव व्यवहार और सामाजिक जीवन पर सामाजिक मनोविज्ञान के प्रभाव को समझने के लिए , हमें विभिन्न सामाजिक प्रक्रियाओं और घटनाओं की जांच करनी होगी जिनका यह अध्ययन करता है:

1. सामाजिक प्रभाव (Social Influence):

यह सामाजिक मनोविज्ञान का केंद्रीय स्तंभ है, और यह सीधे तौर पर बताता है कि कैसे दूसरों की उपस्थिति हमारे व्यवहार को प्रभावित करती है।

- **अनुरूपता (Conformity):** लोग अक्सर दूसरों के समूह के मानदंडों या अपेक्षाओं के अनुरूप व्यवहार करते हैं, भले ही वे व्यक्तिगत रूप से असहमत हों। उदाहरण के लिए, एक नए कार्यालय में कर्मचारी यह देखने के लिए दूसरों का पालन कर सकते हैं कि कब दोपहर का भोजन करना है या कौन से कपड़े पहनना उचित है। यह सामाजिक मानदंडों को स्थापित करता है और सामाजिक व्यवस्था बनाए रखने में मदद करता है।
- **आज्ञाकारिता (Obedience):** लोग अधिकारिक आंकड़ों के निर्देशों का पालन करते हैं, भले ही वे उन निर्देशों से असहज महसूस करें। मिलग्राम के प्रसिद्ध प्रयोगों ने दिखाया कि लोग एक अधिकारिक व्यक्ति के कहने पर दूसरों को नुकसान पहुँचाने के लिए कितने इच्छुक हो सकते हैं। यह पदानुक्रमित संरचनाओं (जैसे सेना, कार्यस्थल) में व्यवहार को आकार देता है।
- **अनुमोदन (Compliance):** यह तब होता है जब लोग सीधे अनुरोध के जवाब में व्यवहार करते हैं। अनुनय की विभिन्न तकनीकें, जैसे "फुट-इन-द-डोर" (एक छोटे से अनुरोध के साथ शुरू करना, फिर एक बड़े की ओर बढ़ना) या "डोर-इन-द-फेस" (एक बड़े, अस्वीकार्य अनुरोध से शुरू करना, फिर एक छोटे की ओर बढ़ना), सामाजिक संदर्भों में दूसरों को प्रभावित करने के तरीके को उजागर करती हैं।
- **समूह सोच (Groupthink) और समूह ध्रुवीकरण (Group Polarization):** समूह में निर्णय लेने की प्रक्रिया में, अनुरूपता का दबाव गलत या चरम निर्णय लेने का कारण बन सकता है। समूह सोच तब होती है जब समूह के सदस्य सर्वसम्मति के लिए संघर्ष करते हैं, जबकि समूह ध्रुवीकरण तब होता है जब समूह चर्चा के बाद समूह की प्रारंभिक प्रवृत्ति मजबूत हो जाती है। यह बोर्डरूम से लेकर राजनीतिक आंदोलनों तक, समूह निर्णय लेने को प्रभावित करता है।

2. सामाजिक संज्ञान (Social Cognition):

यह अध्ययन करता है कि लोग सामाजिक दुनिया के बारे में कैसे सोचते हैं, जानकारी कैसे संसाधित करते हैं, और दूसरों को कैसे समझते हैं।

- **दृष्टिकोण (Attitudes):** हमारे दृष्टिकोण (लोगों, वस्तुओं, या विचारों के प्रति सकारात्मक या नकारात्मक मूल्यांकन) हमारे व्यवहार को दृढ़ता से प्रभावित करते हैं। सामाजिक मनोविज्ञान बताता है कि दृष्टिकोण कैसे बनते हैं (जैसे सामाजिक अधिगम, प्रत्यक्ष अनुभव), कैसे बदलते हैं (जैसे अनुनय), और वे हमारे व्यवहार को कैसे निर्देशित करते हैं (जैसे पर्यावरण के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण वाले व्यक्ति रीसाइक्लिंग कर सकते हैं)।
- **आरोपण (Attribution):** लोग दूसरों के व्यवहार के कारणों को कैसे समझाते हैं (क्या यह व्यक्ति के स्वभाव के कारण है या स्थिति के कारण?) यह समझने में मदद करता है कि हम दूसरों पर कैसे प्रतिक्रिया करते हैं और उनके साथ बातचीत करते हैं। एक नकारात्मक कार्य को आंतरिक विशेषता (बुरा व्यक्ति) के रूप में आरोपित करने से गुस्सा और बचाव का व्यवहार हो सकता है, जबकि इसे स्थितिजन्य कारक (तनाव में था) के रूप में आरोपित करने से सहानुभूति हो सकती है।
- **रूढ़िवादिता, पूर्वाग्रह और भेदभाव (Stereotypes, Prejudice, and Discrimination):** सामाजिक संज्ञान यह समझने में मदद करता है कि ये हानिकारक सामाजिक घटनाएँ कैसे उत्पन्न होती हैं और बनी रहती हैं। रूढ़िवादिता (समूहों के बारे में अतिसरलीकृत विश्वास), पूर्वाग्रह (समूह के प्रति नकारात्मक भावनाएँ), और भेदभाव (नकारात्मक व्यवहार) हमारे सामाजिक जीवन में गहरा विभाजन पैदा करते हैं और विभिन्न समूहों के बीच बातचीत को प्रभावित करते हैं।
- **आत्म-अवधारणा (Self-Concept) और आत्म-सम्मान (Self-Esteem):** सामाजिक मनोविज्ञान यह बताता है कि हमारा आत्म-बोध सामाजिक तुलना, दूसरों की प्रतिक्रियाओं और सामाजिक भूमिकाओं से कैसे आकार लेता है। हमारा आत्म-सम्मान इस बात को प्रभावित करता है कि हम सामाजिक स्थितियों में कितना जोखिम उठाते हैं, दूसरों के साथ कैसे बातचीत करते हैं, और चुनौतियों का सामना कैसे करते हैं।

3. पारस्परिक संबंध (Interpersonal Relationships):

सामाजिक मनोविज्ञान आकर्षण, दोस्ती, प्रेम और संघर्ष सहित लोगों के बीच संबंधों का गहराई से अध्ययन करता है।

- **आकर्षण (Attraction):** कौन से कारक लोगों को एक-दूसरे के प्रति आकर्षित करते हैं (निकटता, समानता, शारीरिक आकर्षण)? यह समझने से दोस्ती और रोमांटिक रिश्ते कैसे बनते हैं, इसकी जानकारी मिलती है।
- **प्रेम (Love):** विभिन्न प्रकार के प्रेम (जैसे जुनूनी प्रेम, करुणामय प्रेम) और उनके विकास का अध्ययन सामाजिक संबंधों की जटिलता को उजागर करता है।

- **संघर्ष और सहयोग (Conflict and Cooperation):** सामाजिक मनोविज्ञान समूह में संघर्षों के कारणों (जैसे संसाधन प्रतिस्पर्धा, गलत संचार) और उन्हें हल करने के तरीकों (जैसे संपर्क परिकल्पना , सामान्य लक्ष्य) का अध्ययन करता है। यह राष्ट्रों के बीच युद्ध से लेकर परिवार के भीतर कलह तक , सामाजिक जीवन के महत्वपूर्ण पहलुओं को प्रभावित करता है।
- **परोपकारिता और आक्रामकता (Altruism and Aggression):** लोग दूसरों की मदद क्यों करते हैं (परोपकारिता) और दूसरों को नुकसान क्यों पहुँचाते हैं (आक्रामकता) ? ये व्यवहार सामाजिक जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सामाजिक मनोवैज्ञानिक इन व्यवहारों के अंतर्निहित कारणों (जैसे सहानुभूति, सामाजिक मानदंड, कुंठा) और उन्हें कैसे बढ़ावा या कम किया जा सकता है, इसका पता लगाते हैं।

4. समूह गतिशीलता (Group Dynamics):

यह अध्ययन करता है कि समूह कैसे कार्य करते हैं और व्यक्तियों को कैसे प्रभावित करते हैं।

- **सामाजिक आलस्य (Social Loafing):** यह घटना बताती है कि लोग एक समूह में काम करते समय अकेले काम करने की तुलना में कम प्रयास क्यों करते हैं। यह कार्यस्थल में उत्पादकता को प्रभावित करता है।
- **नेतृत्व (Leadership):** विभिन्न नेतृत्व शैलियाँ और वे समूह के प्रदर्शन और संतुष्टि को कैसे प्रभावित करती हैं। प्रभावी नेतृत्व सामाजिक जीवन के कई क्षेत्रों (जैसे राजनीति, व्यवसाय, समुदाय) में महत्वपूर्ण है।
- **अंतर्समूह संबंध (Intergroup Relations):** विभिन्न सामाजिक समूहों के सदस्य एक-दूसरे के साथ कैसे बातचीत करते हैं। इसमें समूह के भीतर पूर्वाग्रह, संघर्ष और सहयोग का अध्ययन शामिल है।

सामाजिक जीवन पर समग्र प्रभाव (Overall Impact on Social Life):

सामाजिक मनोविज्ञान हमारे सामाजिक जीवन को कई तरीकों से प्रभावित करता है:

- **आत्म-समझ (Self-Understanding):** यह हमें यह समझने में मदद करता है कि हमारे अपने विचार , भावनाएं और व्यवहार सामाजिक संदर्भों से कैसे प्रभावित होते हैं। यह हमें अपने स्वयं के पूर्वाग्रहों और प्रतिक्रियाओं को पहचानने में मदद करता है।
- **दूसरों को समझना (Understanding Others):** यह हमें दूसरों के व्यवहार को समझने , उनके इरादों का अनुमान लगाने और उनके साथ प्रभावी ढंग से बातचीत करने के लिए उपकरण प्रदान करता है।
- **सामाजिक समस्याओं का समाधान (Solving Social Problems):** पूर्वाग्रह और भेदभाव को कम करने , संघर्षों को हल करने, सार्वजनिक स्वास्थ्य व्यवहार को बढ़ावा देने, पर्यावरणीय जागरूकता बढ़ाने और कार्यस्थल में उत्पादकता में सुधार करने जैसे क्षेत्रों में इसके सिद्धांतों का उपयोग करके वास्तविक दुनिया की समस्याओं का समाधान किया जाता है।
- **बेहतर निर्णय लेना (Better Decision-Making):** अनुनय और सामाजिक प्रभाव के तंत्र को समझने से व्यक्ति मीडिया संदेशों, राजनीतिक अभियानों और विज्ञापन के बारे में अधिक सूचित और आलोचनात्मक निर्णय लेने में सक्षम होते हैं।
- **स्वस्थ संबंध बनाना (Building Healthier Relationships):** पारस्परिक आकर्षण, संचार और संघर्ष समाधान के सिद्धांतों को समझने से व्यक्तियों को अधिक मजबूत और संतोषजनक व्यक्तिगत और समूह संबंध बनाने में मदद मिल सकती है।

सार्वजनिक नीति और सामाजिक न्याय (Public Policy and Social Justice): सामाजिक मनोवैज्ञानिक अनुसंधान नीति निर्माताओं को ऐसे कार्यक्रम और कानून विकसित करने में मदद करता है जो सामाजिक न्याय को बढ़ावा देते हैं , समानता को बढ़ाते हैं और सामाजिक सद्भाव में सुधार करते हैं।

<u>प्रश्न न0 8–</u> मानसिक स्वस्थ्य एवं मानसिक आघात का परीक्षण कीजिए?

<u>उत्तर–</u> सामाजिक मनोविज्ञान सीधे तौर पर मानसिक स्वास्थ्य विकारों का निदान या मानसिक आघात का उपचार नहीं करता है - यह कार्य नैदानिक मनोविज्ञान (Clinical Psychology) और मनोरोग विज्ञान (Psychiatry) के क्षेत्र में आता है। हालाँकि, **सामाजिक मनोविज्ञान मानसिक स्वास्थ्य और मानसिक आघात को समझने के लिए एक महत्वपूर्ण लेंस प्रदान करता है, विशेष रूप से सामाजिक कारकों की भूमिका पर प्रकाश डालते हुए।**

आइए, सामाजिक मनोविज्ञान के दृष्टिकोण से मानसिक स्वास्थ्य और मानसिक आघात की अवधारणाओं की जाँच करें:

1. मानसिक स्वास्थ्य (Mental Health) पर सामाजिक मनोविज्ञान का परिप्रेक्ष्य:

मानसिक स्वास्थ्य केवल मानसिक बीमारी की अनुपस्थिति नहीं है , बल्कि इसमें भावनात्मक, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक कल्याण की स्थिति शामिल है। सामाजिक मनोविज्ञान कई तरह से मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले सामाजिक कारकों पर प्रकाश डालता है:

- **सामाजिक समर्थन (Social Support):**
  - **महत्व:** सामाजिक मनोविज्ञान का एक प्रमुख निष्कर्ष यह है कि मजबूत सामाजिक संबंध और समर्थन नेटवर्क मानसिक स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण हैं।
  - **प्रभाव:** अकेलेपन और सामाजिक अलगाव को अवसाद , चिंता और अन्य मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं के बढ़ते जोखिम से जोड़ा गया है। इसके विपरीत , मजबूत सामाजिक समर्थन तनाव से निपटने , लचीलापन (resilience) बनाने और समग्र कल्याण में सुधार करने में मदद करता है।
  - **सिद्धांत:** लगाव सिद्धांत (Attachment Theory) और सामाजिक विनिमय सिद्धांत (Social Exchange Theory) जैसे सामाजिक मनोवैज्ञानिक सिद्धांत बताते हैं कि कैसे लोग सार्थक संबंध बनाते और बनाए रखते हैं जो उनकी भावनात्मक ज़रूरतों को पूरा करते हैं।
- **सामाजिक तुलना (Social Comparison):**
  - **महत्व:** सामाजिक मनोवैज्ञानिकों ने दिखाया है कि लोग अक्सर अपनी क्षमताओं , विचारों और भावनाओं का मूल्यांकन करने के लिए दूसरों के साथ अपनी तुलना करते हैं।
  - **प्रभाव:** यह तुलना मानसिक स्वास्थ्य को सकारात्मक या नकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकती है।
    - **ऊपर की ओर तुलना (Upward Comparison):** जब लोग खुद की तुलना उन लोगों से करते हैं जिन्हें वे बेहतर मानते हैं, तो इससे ईर्ष्या, अपर्याप्तता और कम आत्म-सम्मान हो सकता है, खासकर सोशल मीडिया के युग में जहां 'परिपूर्ण' जीवन अक्सर प्रस्तुत किए जाते हैं।
    - **नीचे की ओर तुलना (Downward Comparison):** दूसरों से खुद की तुलना करना जिन्हें कम भाग्यशाली माना जाता है, आत्म-सम्मान बढ़ा सकता है और कल्याण की भावना को बढ़ावा दे सकता है।
- **सामाजिक मानदंड और अनुरूपता (Social Norms and Conformity):**
  - **महत्व:** सामाजिक मानदंड व्यवहार , विचारों और भावनाओं के लिए अनकहे नियम हैं। अनुरूपता का दबाव इन मानदंडों का पालन करने के लिए व्यक्तियों पर कार्य करता है।
  - **प्रभाव:** कुछ सामाजिक मानदंड मानसिक स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो सकते हैं। उदाहरण के लिए , मानसिक बीमारी से जुड़ा कलंक (stigma) एक सामाजिक मानदंड है जो व्यक्तियों को मदद मांगने से रोकता है और उन्हें अलगाव का अनुभव कराता है। सामाजिक मनोवैज्ञानिक कलंक को कम करने और मानसिक स्वास्थ्य के बारे में अधिक खुलेपन को बढ़ावा देने के लिए हस्तक्षेपों का अध्ययन करते हैं।
- **पहचान और समूह सदस्यता (Identity and Group Membership):**
  - **महत्व:** हमारी सामाजिक पहचान (जाति, लिंग, धर्म, राष्ट्रीयता, आदि) और विभिन्न समूहों में हमारी सदस्यता हमारे आत्म-बोध और मानसिक कल्याण को गहराई से प्रभावित करती है।
  - **प्रभाव:** भेदभाव, बहिष्कार या अल्पसंख्यक समूह में होने के कारण तनाव, चिंता और अवसाद हो सकता है। मजबूत समूह पहचान और संबद्धता की भावना, खासकर उन समूहों में जो समर्थन प्रदान करते हैं, मानसिक स्वास्थ्य के लिए एक सुरक्षात्मक कारक हो सकता है।
- **सामाजिक-आर्थिक स्थिति (Socioeconomic Status - SES):**
  - **महत्व:** सामाजिक असमानताएँ और गरीबी मानसिक स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव डालती हैं।
  - **प्रभाव:** निम्न एसईएस अक्सर तनाव, असुरक्षा, सीमित संसाधनों और स्वास्थ्य सेवाओं तक कम पहुंच से जुड़ा होता है, ये सभी खराब मानसिक स्वास्थ्य परिणामों में योगदान कर सकते हैं।

2. मानसिक आघात (Psychological Trauma) पर सामाजिक मनोविज्ञान का परिप्रेक्ष्य:

मानसिक आघात एक दर्दनाक घटना के लिए भावनात्मक प्रतिक्रिया है जैसे दुर्घटना , आपदा, युद्ध, या हमला। सामाजिक मनोविज्ञान मानसिक आघात को समझने में योगदान देता है, विशेष रूप से इसके सामाजिक कारण, परिणाम और उपचार में सामाजिक कारकों की भूमिका:

- **सामूहिक आघात और साझा अनुभव (Collective Trauma and Shared Experience):**
  - **महत्व:** सामाजिक मनोविज्ञान प्राकृतिक आपदाओं , आतंकवाद, या बड़े पैमाने पर हिंसा जैसी घटनाओं के बाद पूरे समुदायों या समाज द्वारा अनुभव किए गए सामूहिक आघात का अध्ययन करता है।
  - **प्रभाव:** ये साझा अनुभव समूह की एकजुटता , सामूहिक पहचान और बहाली की प्रक्रियाओं को प्रभावित कर सकते हैं। साझा दुःख और सामूहिक लचीलापन सामाजिक समर्थन और सामूहिक कार्रवाई के माध्यम से विकसित हो सकता है।

- **उदाहरण:** 9/11 के बाद न्यूयॉर्क शहर में एकजुटता की भावना या किसी प्राकृतिक आपदा के बाद समुदाय का एक साथ आना।

- **सामाजिक समर्थन और आघात से उबरना (Social Support and Trauma Recovery):**
  - **महत्व:** आघात से उबरने में सामाजिक समर्थन की महत्वपूर्ण भूमिका को सामाजिक मनोविज्ञान रेखांकित करता है।
  - **प्रभाव:** आघातग्रस्त व्यक्तियों के लिए परिवार, दोस्तों या सहायता समूहों से मजबूत सामाजिक समर्थन आघात के नकारात्मक प्रभावों को कम करने में मदद कर सकता है और लचीलेपन को बढ़ावा दे सकता है। इसके विपरीत, सामाजिक अलगाव आघात के बाद के तनाव विकार (PTSD) और अन्य मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं के जोखिम को बढ़ा सकता है।
- **कलंक और आघात (Stigma and Trauma):**
  - **महत्व:** सामाजिक कलंक (stigma) आघात के अनुभव को जटिल बना सकता है, खासकर यदि आघात हिंसा या उत्पीड़न के कारण हुआ हो।
  - **प्रभाव:** युद्ध के दिग्गजों, यौन उत्पीड़न के बचे लोगों, या कुछ बीमारियों से पीड़ित व्यक्तियों को सामाजिक कलंक का सामना करना पड़ सकता है, जिससे उन्हें मदद मांगने में झिझक हो सकती है और अलगाव बढ़ सकता है। सामाजिक मनोवैज्ञानिक कलंक को कम करने और बचे लोगों के लिए सामाजिक स्वीकृति और समर्थन बढ़ाने के लिए रणनीति विकसित करने में मदद करते हैं।
- **सामाजिक पुनर्निर्माण और सामुदायिक उपचार (Social Reconstruction and Community Healing):**
  - **महत्व:** बड़े पैमाने पर आघात के बाद, समुदायों को अक्सर पुनर्निर्माण और उपचार की प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है।
  - **प्रभाव:** सामाजिक मनोविज्ञान सामूहिक स्मृतियों, सामाजिक पहचान के पुनर्निर्माण, और भविष्य के आघात को रोकने के लिए सामाजिक न्याय आंदोलनों में भूमिका निभाता है। सामुदायिक-आधारित हस्तक्षेप और सहकर्मी समर्थन कार्यक्रम सामाजिक मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों से प्रभावित होते हैं।
- **बचाव व्यवहार और आघात (Coping Behaviors and Trauma):**
  - **महत्व:** सामाजिक संदर्भ यह प्रभावित कर सकते हैं कि व्यक्ति आघात से कैसे निपटते हैं।
  - **प्रभाव:** कुछ सामाजिक समूह आघात से निपटने के लिए हानिकारक तरीके (जैसे पदार्थ का दुरुपयोग) अपना सकते हैं, जबकि अन्य समूह सकारात्मक बचाव रणनीतियों (जैसे सक्रियता, सहायता समूहों में भागीदारी) को बढ़ावा दे सकते हैं। सामाजिक मनोविज्ञान सामाजिक अधिगम और समूह मानदंडों की भूमिका को उजागर करता है।
- **पुनर्विकटीकरण आघात (Re-traumatization):**
  - **महत्व:** सामाजिक संदर्भों में (जैसे कानूनी कार्यवाही, मीडिया कवरेज, या असंवेदनशील सामाजिक प्रतिक्रियाएं) आघात का पुनर्विकटीकरण हो सकता है।
  - **प्रभाव:** सामाजिक मनोविज्ञान यह समझने में मदद करता है कि ये सामाजिक इंटरैक्शन कैसे आघात को फिर से सक्रिय कर सकते हैं और कैसे सहायक और सूचित प्रतिक्रियाएं उपचार प्रक्रिया का समर्थन कर सकती हैं।

प्रश्न न0 9– नैतिक विकास एवं सामाजिक विकास के नियंत्रण में नैतिक के महत्व की व्याख्या कीजिए?

उत्तर– वर्तमान समय में, नैतिक विकास और सामाजिक विकास के परस्पर संबंध और नैतिक सिद्धांतों के सामाजिक नियंत्रण में महत्व को समझना बेहद प्रासंगिक है। सामाजिक मनोविज्ञान इस बात की पड़ताल करता है कि व्यक्ति कैसे नैतिकता का विकास करते हैं और कैसे ये नैतिक सिद्धांत सामाजिक व्यवस्था, सहयोग और न्याय को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

1. नैतिक विकास (Moral Development):

नैतिक विकास वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से व्यक्ति सही और गलत, अच्छे और बुरे के बारे में अपनी समझ विकसित करते हैं, और नैतिक सिद्धांतों के अनुसार कार्य करने की क्षमता प्राप्त करते हैं। यह केवल नियमों को याद रखने से कहीं अधिक है; इसमें नैतिक तर्क, निर्णय लेने और व्यवहार शामिल हैं।

नैतिक विकास के प्रमुख सिद्धांत:

- **पियाजे का नैतिक विकास का सिद्धांत (Piaget's Theory of Moral Development):**
  - पियाजे ने बच्चों के नैतिक तर्क के दो मुख्य चरणों की पहचान की:

- **नैतिक यथार्थवाद/हेटेरोनोमस नैतिकता (Moral Realism/Heteronomous Morality):** (5-9 वर्ष) बच्चे नियमों को पूर्ण और अपरिवर्तनीय मानते हैं। वे परिणाम पर ध्यान केंद्रित करते हैं, इरादे पर नहीं। दंड बाहरी अधिकार से आता है।
- **नैतिक सापेक्षवाद/ऑटोनोमस नैतिकता (Moral Relativism/Autonomous Morality):** (10+ वर्ष) बच्चे समझते हैं कि नियम परिवर्तनशील होते हैं और सहमतियों पर आधारित होते हैं। वे इरादे पर विचार करते हैं और मानते हैं कि नैतिक निर्णय व्यक्तिगत रूप से लिए जाने चाहिए, और दंड अपराध के अनुपात में होना चाहिए।

- **कोहलबर्ग का नैतिक विकास का सिद्धांत (Kohlberg's Theory of Moral Development):**
  - कोहलबर्ग ने नैतिक तर्क के तीन स्तरों और छह चरणों का प्रस्ताव किया:
    - **पूर्व-पारंपरिक स्तर (Pre-Conventional Level):** (बच्चों में, लेकिन कुछ वयस्कों में भी) नैतिकता परिणामों पर आधारित होती है (दंड से बचना, पुरस्कार प्राप्त करना)।
      - चरण 1: दंड और आज्ञाकारिता अभिविन्यास (Punishment and Obedience Orientation)
      - चरण 2: व्यक्तिगत हित अभिविन्यास (Individual Interest Orientation)
    - **पारंपरिक स्तर (Conventional Level):** (अधिकांश किशोर और वयस्क) नैतिकता सामाजिक मानदंडों और अपेक्षाओं का पालन करने पर आधारित होती है।
      - चरण 3: अच्छे अंतर्वैयक्तिक संबंध अभिविन्यास (Good Interpersonal Relationships Orientation) - "अच्छा लड़का/अच्छी लड़की"
      - चरण 4: कानून और व्यवस्था अभिविन्यास (Maintaining Social Order Orientation)
    - **उत्तर-पारंपरिक स्तर (Post-Conventional Level):** (कुछ वयस्क) नैतिकता व्यक्तिगत सिद्धांतों और सार्वभौमिक नैतिक मूल्यों पर आधारित होती है जो सामाजिक नियमों से भी आगे निकल सकते हैं।
      - चरण 5: सामाजिक अनुबंध और व्यक्तिगत अधिकार अभिविन्यास (Social Contract and Individual Rights Orientation)
      - चरण 6: सार्वभौमिक नैतिक सिद्धांत अभिविन्यास (Universal Ethical Principles Orientation)
- **नैतिक पहचान का विकास (Development of Moral Identity):** सामाजिक मनोवैज्ञानिकों ने इस बात पर जोर दिया है कि नैतिक विकास केवल तर्क के बारे में नहीं है, बल्कि एक "नैतिक स्वयं" (moral self) या नैतिक पहचान बनाने के बारे में भी है, जहां नैतिक सिद्धांत व्यक्ति के आत्म-अवधारणा का एक केंद्रीय हिस्सा बन जाते हैं।
- **सामाजिक अधिगम सिद्धांत (Social Learning Theory):** बंडुरा जैसे सिद्धांतकारों ने बताया कि बच्चे अवलोकन, मॉडलिंग और सुदृढीकरण (reinforcement) के माध्यम से नैतिक व्यवहार सीखते हैं। वे देखते हैं कि अन्य लोग नैतिक dilemmas पर कैसे प्रतिक्रिया करते हैं और इन प्रतिक्रियाओं के परिणामों का अनुभव करते हैं।

2. सामाजिक विकास (Social Development):

सामाजिक विकास वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से बच्चे और वयस्क दूसरों के साथ बातचीत करने, सामाजिक कौशल सीखने, सामाजिक मानदंडों और मूल्यों को आत्मसात करने और सामाजिक भूमिकाओं को समझने की क्षमता विकसित करते हैं। यह जीवन भर चलने वाली प्रक्रिया है और इसमें भावनात्मक, संज्ञानात्मक और व्यवहारिक घटक शामिल हैं।

सामाजिक विकास के प्रमुख पहलू:

- **सामाजिक कौशल (Social Skills):** दूसरों के साथ प्रभावी ढंग से बातचीत करने की क्षमता, जैसे संचार, सहानुभूति, सहयोग और संघर्ष समाधान।
- **सामाजिक संज्ञान (Social Cognition):** दूसरों के विचारों, भावनाओं और इरादों को समझने की क्षमता (मन के सिद्धांत - Theory of Mind), और सामाजिक स्थितियों की व्याख्या करना।
- **सामाजिक पहचान (Social Identity):** विभिन्न सामाजिक समूहों से संबंधित होने और उनके मानदंडों और मूल्यों को अपनाने की भावना।
- **भावनात्मक विनियमन (Emotional Regulation):** सामाजिक संदर्भों में अपनी भावनाओं को प्रभावी ढंग से प्रबंधित करने की क्षमता।

3. सामाजिक विकास के नियंत्रण में नैतिकता का महत्व (Importance of Morality in Controlling Social Development):

नैतिकता सामाजिक विकास को कई महत्वपूर्ण तरीकों से नियंत्रित और निर्देशित करती है, जिससे एक सुसंगठित, न्यायपूर्ण और सहयोगी समाज का निर्माण होता है।

- **सामाजिक व्यवस्था और स्थिरता बनाए रखना (Maintaining Social Order and Stability):**
  - **नियम और मानदंड:** नैतिक सिद्धांत समाज में आचार संहिता , नियम और कानून स्थापित करने के लिए आधार प्रदान करते हैं। ये नियम व्यक्तिगत व्यवहार को नियंत्रित करते हैं , सामाजिक संपर्क को अनुमानित बनाते हैं और अराजकता को रोकते हैं।
  - **सामूहिक कार्रवाई:** जब व्यक्तियों में कुछ साझा नैतिक सिद्धांत होते हैं (जैसे निष्पक्षता , ईमानदारी), तो वे एक साथ काम करने, साझा लक्ष्यों को प्राप्त करने और सामाजिक समस्याओं को हल करने की अधिक संभावना रखते हैं।
- **सहयोग और सामंजस्य बढ़ाना (Fostering Cooperation and Harmony):**
  - **विश्वास (Trust):** नैतिकता विश्वास का आधार है। जब लोग एक-दूसरे की ईमानदारी और नैतिक सिद्धांतों पर भरोसा करते हैं, तो सहयोग और सकारात्मक सामाजिक संबंध पनपते हैं।
  - **परोपकारिता और सहानुभूति (Altruism and Empathy):** नैतिक विकास व्यक्तियों में दूसरों के प्रति चिंता और सहानुभूति की भावना को बढ़ावा देता है। यह परोपकारी व्यवहार (दूसरों की मदद करना) को प्रोत्साहित करता है, जो सामाजिक सामंजस्य के लिए आवश्यक है।
  - **पारस्परिकता (Reciprocity):** नैतिक सिद्धांत अक्सर पारस्परिकता के विचार को बढ़ावा देते हैं - "जैसा दोगे वैसा पाओगे।" यह एक सामाजिक अनुबंध है जो यह सुनिश्चित करता है कि लोग दूसरों के साथ निष्पक्ष व्यवहार करेंगे, यह जानते हुए कि उन्हें बदले में भी निष्पक्षता की उम्मीद हो सकती है।
- **संघर्ष समाधान और न्याय (Conflict Resolution and Justice):**
  - **निष्पक्षता (Fairness):** नैतिक सिद्धांतों के माध्यम से , समाज न्याय और निष्पक्षता की धारणाएं विकसित करता है। ये सिद्धांत विवादों को सुलझाने , संसाधनों को आवंटित करने और गलतियों को सुधारने के लिए एक ढांचा प्रदान करते हैं।
  - **कानूनी और न्यायिक प्रणालियाँ:** नैतिकता का उपयोग कानूनी प्रणालियों को सूचित और आकार देने के लिए किया जाता है जो सामाजिक मानदंडों को लागू करते हैं और उल्लंघन करने वालों को जवाबदेह ठहराते हैं।
  - **सामाजिक न्याय आंदोलन:** नैतिक तर्क अक्सर सामाजिक न्याय आंदोलनों को प्रेरित करता है , जो प्रणालीगत असमानताओं को चुनौती देते हैं और अधिक न्यायपूर्ण समाज के लिए लड़ते हैं।
- **सामाजिक पहचान और समूह एकजुटता (Social Identity and Group Cohesion):**
  - **साझा मूल्य:** एक समूह या समुदाय के साझा नैतिक मूल्य समूह की पहचान को मजबूत करते हैं और सदस्यों के बीच एकजुटता की भावना को बढ़ावा देते हैं।
  - **इन-ग्रुप/आउट-ग्रुप डायनेमिक्स:** साझा नैतिकता इन-ग्रुप को परिभाषित करने में मदद कर सकती है (वे लोग जो हमारे मूल्यों को साझा करते हैं) , हालांकि यह कभी-कभी आउट-ग्रुप (जिन्हें हमारे मूल्यों को साझा नहीं करने वाला माना जाता है) के प्रति पूर्वाग्रह को भी जन्म दे सकता है।
- **आत्म-नियमन और उत्तरदायित्व (Self-Regulation and Accountability):**
  - **आंतरिकीकरण:** नैतिक विकास के माध्यम से, व्यक्ति बाहरी दंड के भय के बिना नैतिक सिद्धांतों को आंतरिक करते हैं। यह आत्म-नियमन की ओर ले जाता है, जहां व्यक्ति अपनी नैतिक संहिता के अनुसार व्यवहार करते हैं।
  - **उत्तरदायित्व:** नैतिक विकास व्यक्तियों को अपने कार्यों के लिए जिम्मेदारी लेने और दूसरों के प्रति उत्तरदायी होने की क्षमता देता है।
- **मानव कल्याण को बढ़ावा देना (Promoting Human Well-being):**
  - **सम्मान और गरिमा:** नैतिक सिद्धांत सभी मनुष्यों के अंतर्निहित मूल्य और गरिमा के विचार को बढ़ावा देते हैं , जिससे एक ऐसा समाज बनता है जहां व्यक्तियों का सम्मान किया जाता है और उनके अधिकारों की रक्षा की जाती है।
  - **सहानुभूति और दया:** नैतिक विकास व्यक्तियों को दूसरों के दर्द और जरूरतों के प्रति अधिक संवेदनशील बनाता है, जिससे करुणा और दयालुता के कार्य होते हैं जो समग्र कल्याण में सुधार करते हैं।

नैतिक विकास और सामाजिक विकास के बीच परस्पर क्रिया:

यह महत्वपूर्ण है कि नैतिक और सामाजिक विकास एक-दूसरे से अलग-थलग नहीं होते हैं, बल्कि गहराई से जुड़े हुए हैं:

- **सामाजिक संदर्भ नैतिक विकास को आकार देता है:** परिवार, स्कूल, सहकर्मी समूह और संस्कृति नैतिक मूल्यों और अपेक्षाओं को प्रसारित करके नैतिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

- **नैतिक विकास सामाजिक व्यवहार को प्रभावित करता है:** एक व्यक्ति का नैतिक तर्क और पहचान उनके सामाजिक व्यवहार को निर्देशित करती है, जैसे कि वे संघर्षों पर कैसे प्रतिक्रिया करते हैं, दूसरों की मदद करते हैं या अन्याय का विरोध करते हैं।

परस्पर क्रिया का महत्व: एक सुसंगठित समाज के लिए नैतिक विकास की आवश्यकता होती है जो व्यक्तियों को सामाजिक मानदंडों को आंतरिक करने और दूसरों के कल्याण के लिए चिंता विकसित करने में मदद करता है। बदले में, एक न्यायपूर्ण और सहायक सामाजिक वातावरण नैतिक विकास के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ प्रदान करता है।

प्रश्न न0 10– नैतिकता, सामाजिक मनोविज्ञान को किस प्रकार प्रभावित करता है?

उत्तर– नैतिकता और सामाजिक मनोविज्ञान के बीच का संबंध गहरा और जटिल है , क्योंकि नैतिकता सीधे तौर पर यह निर्धारित करती है कि लोग सामाजिक संदर्भों में कैसे सोचते हैं , महसूस करते हैं और व्यवहार करते हैं। सामाजिक मनोविज्ञान नैतिकता के विकास, नैतिक निर्णय लेने की प्रक्रियाओं और नैतिक सिद्धांतों के सामाजिक व्यवहार पर पड़ने वाले प्रभावों का वैज्ञानिक रूप से अध्ययन करता है।

आइए विस्तार से समझते हैं कि नैतिकता सामाजिक मनोविज्ञान को किस प्रकार प्रभावित करती है:

1. नैतिक निर्णय लेने और सामाजिक संज्ञान (Moral Decision-Making and Social Cognition):

सामाजिक मनोविज्ञान इस बात का अध्ययन करता है कि लोग नैतिक दुविधाओं का सामना करते समय कैसे सोचते हैं और निर्णय लेते हैं।

- **नैतिक तर्क (Moral Reasoning):** कोहलबर्ग जैसे सिद्धांतों ने नैतिक विकास के चरणों को उजागर किया है , जो दिखाते हैं कि लोग कैसे सरल , परिणाम-आधारित विचारों से अधिक जटिल , सिद्धांत-आधारित नैतिक तर्क की ओर बढ़ते हैं। सामाजिक मनोविज्ञान यह पता लगाता है कि सामाजिक संदर्भ (जैसे समूह दबाव, प्राधिकरण का प्रभाव) इस तर्क को कैसे प्रभावित कर सकता है।
- **नैतिक पूर्वाग्रह (Moral Biases):** जैसे संज्ञानात्मक पूर्वाग्रह निर्णय लेने को प्रभावित करते हैं , वैसे ही नैतिक पूर्वाग्रह भी होते हैं। उदाहरण के लिए, लोग अक्सर इन-ग्रुप के सदस्यों के प्रति अधिक नैतिक सहिष्णुता दिखाते हैं या अपने स्वयं के अनैतिक व्यवहार को तर्कसंगत ठहराने की कोशिश करते हैं (आत्म-सेवारत पूर्वाग्रह)।
- **भावनात्मक अंतर्ज्ञान (Emotional Intuitions):** जोनाथन हैदट (Jonathan Haidt) जैसे शोधकर्ताओं ने तर्क दिया है कि नैतिक निर्णय अक्सर तर्क के बजाय तीव्र भावनात्मक अंतर्ज्ञान से शुरू होते हैं , और तर्क केवल बाद में अंतर्ज्ञान को तर्कसंगत बनाने के लिए कार्य करता है। सामाजिक मनोविज्ञान इस भावनात्मक घटक और सामाजिक संदर्भों में इसके प्रभावों की पड़ताल करता है।
- **नैतिक दुविधाएँ (Moral Dilemmas):** सामाजिक मनोवैज्ञानिक अक्सर नैतिक दुविधाओं (जैसे ट्रॉली समस्या) का उपयोग करते हैं यह समझने के लिए कि लोग कैसे नैतिक विकल्प बनाते हैं और कौन से कारक (जैसे परिणाम बनाम कर्तव्य) उनके निर्णयों को सबसे अधिक प्रभावित करते हैं।

2. सामाजिक प्रभाव और अनुरूपता पर नैतिकता का प्रभाव (Impact of Ethics on Social Influence and Conformity):

नैतिक सिद्धांत इस बात को प्रभावित करते हैं कि लोग सामाजिक प्रभावों पर कैसे प्रतिक्रिया करते हैं।

- **नैतिक प्रतिरोध (Moral Resistance):** मजबूत नैतिक दृढ़ विश्वास वाले व्यक्ति सामाजिक दबावों के प्रति कम संवेदनशील हो सकते हैं। वे बहुमत के विचारों या प्राधिकरण के आदेशों के अनुरूप होने से इनकार कर सकते हैं यदि वे इन विचारों को अनैतिक मानते हैं (उदाहरण के लिए , युद्ध के दौरान अनैतिक आदेशों का पालन करने से इनकार करना)।
- **नैतिक उदाहरण (Moral Exemplars):** नैतिक रूप से उच्च चरित्र वाले व्यक्ति दूसरों के लिए शक्तिशाली सामाजिक उदाहरण बन सकते हैं, जो समूह में नैतिक व्यवहार और प्रतिरोध को प्रेरित करते हैं।
- **नैतिक मानदंडों का आंतरिककरण (Internalization of Moral Norms):** जब व्यक्ति नैतिक मानदंडों को आंतरिक करते हैं, तो वे बाहरी निगरानी के बिना भी उनके अनुरूप व्यवहार करते हैं। यह अनुरूपता के दबावों से स्वतंत्रता की ओर ले जा सकता है जो केवल दंड से बचने या पुरस्कार प्राप्त करने पर आधारित होते हैं।

3. समूह प्रक्रियाएँ और अंतर्समूह संबंध (Group Processes and Intergroup Relations):

नैतिकता समूहों के भीतर और विभिन्न समूहों के बीच बातचीत को गहराई से प्रभावित करती है।

- **नैतिक एकजुटता (Moral Solidarity):** साझा नैतिक मूल्य समूह एकजुटता को मजबूत करते हैं। जब समूह के सदस्य एक ही नैतिक कोड का पालन करते हैं, तो वे एक-दूसरे पर अधिक भरोसा करते हैं और साझा लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए अधिक प्रभावी ढंग से सहयोग करते हैं।

- **नैतिक बहिष्कार (Moral Exclusion):** यह एक सामाजिक-मनोवैज्ञानिक घटना है जहां एक समूह दूसरे समूह को नैतिक विचार के दायरे से बाहर रखता है। जब ऐसा होता है , तो बाहरी समूह के सदस्यों को मानव के रूप में नहीं देखा जाता है, और उनके प्रति अनैतिक व्यवहार को उचित ठहराया जाता है (जैसे नरसंहार या गंभीर मानवाधिकार उल्लंघन में देखा गया)।
- **पूर्वाग्रह और भेदभाव का औचित्य (Justification of Prejudice and Discrimination):** नैतिक सिद्धांत (अक्सर विकृत रूप में) कभी-कभी पूर्वाग्रह और भेदभाव को सही ठहराने के लिए उपयोग किए जाते हैं। उदाहरण के लिए , यह तर्क देना कि एक निश्चित समूह "अयोग्य" है या "कम नैतिक" है, उनके प्रति अनैतिक व्यवहार को सही ठहरा सकता है।
- **सामाजिक न्याय आंदोलन (Social Justice Movements):** नैतिक रोष और न्याय की गहरी भावना अक्सर सामाजिक न्याय आंदोलनों को बढ़ावा देती है। जब लोग देखते हैं कि नैतिक सिद्धांतों (जैसे समानता , निष्पक्षता) का उल्लंघन किया जा रहा है, तो वे सामाजिक परिवर्तन के लिए संगठित और कार्य करते हैं।

4. परोपकारिता और आक्रामकता (Altruism and Aggression):

नैतिकता सीधे तौर पर परोपकारी (दूसरों की मदद करने वाले) और आक्रामक व्यवहार को प्रभावित करती है।

- **परोपकारिता (Altruism):** सहानुभूति और नैतिक दायित्व की भावनाएं अक्सर परोपकारी कार्यों को प्रेरित करती हैं। जब व्यक्ति दूसरों को पीड़ित देखते हैं और खुद को उनकी मदद करने के लिए नैतिक रूप से बाध्य महसूस करते हैं , तो वे मदद करने की अधिक संभावना रखते हैं। नैतिक सिद्धांत जैसे कि "किसी को नुकसान न पहुँचाएँ" और "कमजोर की मदद करें" परोपकारी व्यवहार को बढ़ावा देते हैं।
- **आक्रामकता (Aggression):** अनैतिकता की धारणाएं आक्रामकता को बढ़ा सकती हैं। यदि लोग मानते हैं कि उनके साथ अन्याय हुआ है या किसी ने अनैतिक रूप से व्यवहार किया है , तो वे बदले में आक्रामक व्यवहार का उपयोग करने के लिए अधिक प्रवृत्त हो सकते हैं। "नैतिक विघटन" (moral disengagement) वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा लोग नैतिक प्रतिबंधों को निष्क्रिय कर देते हैं, जिससे उन्हें दूसरों को नुकसान पहुँचाने की अनुमति मिलती है।

5. आत्म-अवधारणा और पहचान (Self-Concept and Identity):

नैतिकता व्यक्ति की आत्म-धारणा और सामाजिक पहचान के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

- **नैतिक पहचान (Moral Identity):** उन व्यक्तियों के लिए जिनके लिए नैतिक सिद्धांत उनकी आत्म-अवधारणा का एक केंद्रीय हिस्सा हैं (यानी , उनकी एक मजबूत नैतिक पहचान है) , उनके व्यवहार में उनके मूल्यों के अनुरूप होने की अधिक संभावना है।
- **आत्म-सम्मान (Self-Esteem):** नैतिक रूप से कार्य करना आत्म-सम्मान और मनोवैज्ञानिक कल्याण की भावना को बढ़ावा दे सकता है। अनैतिक व्यवहार , इसके विपरीत, अपराधबोध, शर्म और आत्म-मूल्य में कमी ला सकता है , खासकर यदि वह व्यवहार व्यक्ति के नैतिक मानकों के विपरीत हो।

6. सामाजिक नैतिकता और अनुसंधान नैतिकता (Social Ethics and Research Ethics):

नैतिकता न केवल सामाजिक मनोविज्ञान के अध्ययन का एक विषय है, बल्कि यह क्षेत्र के भीतर अनुसंधान आचरण को भी नियंत्रित करती है।

- **शोध नैतिकता (Research Ethics):** सामाजिक मनोवैज्ञानिकों को अपने शोध में सख्त नैतिक दिशानिर्देशों (जैसे सूचित सहमति, गोपनीयता, धोखे का न्यूनतम उपयोग, प्रतिभागियों को नुकसान से बचाना) का पालन करना चाहिए। यह सुनिश्चित करता है कि शोध मानवीय और सम्मानजनक तरीके से आयोजित किया जाए , और यह स्वयं नैतिक सिद्धांतों से प्रभावित है।

निष्कर्षों का अनुप्रयोग (Application of Findings): सामाजिक मनोविज्ञान के निष्कर्षों का नैतिक उपयोग एक महत्वपूर्ण विचार है। उदाहरण के लिए , अनुनय के सिद्धांतों का उपयोग सार्वजनिक स्वास्थ्य अभियानों के लिए किया जा सकता है , लेकिन इसका उपयोग हेरफेर या हानिकारक उद्देश्यों के लिए भी किया जा सकता है।

B.A.LL.B. 6th Sem. Paper-III Law of Crime-II

प्रश्न न0 1– आपराधिक मानव–वध पदावली को समझाइए तथा स्पष्ट कीजिए। हत्या तथा आपराधिक मानव–वध जो हत्या नही है, के मध्य अन्तर स्पष्ट कीजिए।

उत्तर– आपराधिक मानव–वध को भारतीय दण्ड संहिता की धारा 299 के अन्तर्गत निम्नवत् तरह से परिभाषित किया गया है–

धारा 299 आपराधिक मानव–धारा– ''जो कोई मृत्यु कारित करने के आशय से, या ऐसी शारीरिक चोट कारित करने के आशय से, जिससे मृत्यु कारित होने की संभावना हो, या यह जानते हुए कि ऐसे कार्य से मृत्यु कारित होने की संभावना है, कोई कार्य करके मृत्यु कारित करता है, वह दोषी का अपराध करता है, वह आपराधिक मानव–वध करता है।

आपराधिक मानव–वध के आवश्यक तत्व (Essential Elements of Culpable Homicide)–

उपर्युक्त परिभाषा के आधार पर निम्नलिखित आवश्यक तत्व हैं–

(1) किसी कार्य के द्वारा मानव की मृत्यु कारित की गई है,

(2) कार्य मृत्यु करने के आशय से किया गया हो

(3) ऐसी शारीरिक क्षति पहुँचाई गई, जिससे मृत्यु कारित होना सम्भाव्य होने की सम्भावना हो

(4) कार्य इस 'ज्ञान' से किया गया हो कि उससे मृत्यु कारित हो जाना सम्भाव्य हो।

(1) किसी मानव की मृत्यु हुई हो– यह धारा तब तक लागू नहीं सकती है, जब तक किसी व्यक्ति की मृत्यु न कारित की गई हो। यहाँ मृत्यु शब्द का अभिप्राय किसी मानव प्राणी की मृत्यु से है परन्तु मानव प्राणी शब्द के अन्दर, माँ के गर्भ में आया हुआ शिशु शामिल नहीं है। उदाहरणार्थ धारा 299 का स्पष्टीकरण (3) उपबन्धित करता है। '' माँ के गर्भ में स्थिति किसी शिशु की मृत्यु कारित करना मानववध नहीं हैं किन्तु किसी जीवित शिशु की मृत्यु कारित करना आपराधिक मानववध की कोटि में आ सकेगा नहीं है, यदि उस शिशु का कोई भाग बाहर निकल आया हो, यद्यपि उस शिशु ने श्वास न ली हो या पूर्णतः उत्पन्न न हुआ हो''

(2) कार्य मृत्यु कारित करने के आशय से किया किया गया हो– जो कोई मृत्यु कारित करने के आशय से, या ऐसी शारीरिक चोट कारित करने के आशय से, जिससे मृत्यु कारित होने की संभावना हो, या यह जानते हुए कि ऐसे कार्य से मृत्यु कारित होने की संभावना है, कोई कार्य करके मृत्यु कारित करता है, वह दोषी का अपराध करता है हत्या। **जोगिन्दर सिंह बनाम राज्य (1979)** Cr.LJ 1406 S.C. के मामले में अभियुक्त का पीछा खुले मैदान में कर रहे थे। उन्होने उसके साथ जा रहे उसके रिश्तेदार की मृत्यु की कारित कर दी। अभियुक्तों से अपनी जान बचाने के लिए मृतक ने कुएँ में छलाँग लगा दी, जिसके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो गई। सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि ''यदि अभियोजन संदेह से परे साबित कर दे कि मृतक को अपनी जान बचाने के लिए कुएँ में छलांग लगाने के अतिरिक्त कोई अन्य विकल्प नहीं था, तो अभियुक्तों को सदोष मानववध के लिए अवश्य ही दोषी ठहराया जाएगा।

(3) कार्य ऐसी शारारिक क्षति कारित करने के आशय से किया गया हो, जिससे मृत्यु हो जाना सम्भाव्य हो– अभियुक्त द्वारा किया गया कार्य यदि ऐसी शारीरिक क्षति कारित करने के आशय से किया गया है कि उससे मृत्यु का कारित हो जाना असम्भाव्य हो, तो इस प्रकार से कारित की गई, मृत्यु को आपराधिक मानववध की संज्ञा दी जाएगी। 'कार्य' एवं 'कार्य कारित मृत्यु' के मध्य का सम्बन्ध प्रत्यक्ष और स्पष्ट होना चाहिए तथा इन दोनों के मध्य का सम्बन्ध चाहे भले ही तात्कालिक न हो उसके बहुत अधिक दूरवर्ती भी नहीं होना चाहिए। किन्तु यह भी तभी संभव है, जब ऐसी शारीरिक क्षति 300 के खण्ड (3) में वर्णित प्रकृति के सामान्य अनुक्रम में मृत्यु के लिए पर्याप्त शारीरिक क्षति से भिन्न हो।

(4) कार्य इन ज्ञान से किया गया हो, कि उससे मृत्यु कारित होना सम्भाव्य – इस धारा के अन्तर्गत वह व्यक्ति भी आपराधिक मानववध का दोषी होता है, जो यह ज्ञान रखते हुए कि वह उस कार्य से मृत्यु कारित कर दे, कोई कार्य करके मृत्यु कारित कर देता है। आपराधिक मानववध के विषय में 'आशय' अथवा 'ज्ञान' का व्यापक महत्व है, क्योंकि इन मानसिक दशाओं की अनुपस्थिति में अभियुक्त को उसके कार्य के परिणाम हेतु उत्तरदायी बनाना सम्भव नहीं है। उदाहरणार्थ धारा 299 का दृष्टान्त (ग) स्पष्ट करता है–

'' क एक मुर्गे को मार डालने और चुरा लेने के आशय से उस पर गोली चलाकर ख को जो एक झाड़ी के पीछे है, मार डालता है, किन्तु क यह नहीं जानता था कि ख वहाँ है। यहाँ यद्यपि क विधि–विरूद्ध कार्य कर रहा था, तथापि वह आपराधिक मानव–वध का दोषी नहीं है, क्योंकि आशय ख को मार डालने का या कोई ऐसा कार्य करके, जिससे मृत्यु कारित वह सम्भाव्य जानता है हो, मृत्यु कारित करने का नहीं था।''

आपराधिक मानववध कब हत्या नहीं होती है?

निम्नवत् अपवादों के अन्तर्गत आने वाला मानववध नहीं होती है–

अपवादों गम्भीर और अचानक प्रकोपन (Grave and Sudden Provocation)–आत्म–नियंत्रण की शक्ति का अभाव और गंभीर तथा अचानक उकसावे से उस व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है जिसने उकसावे दिया था या गलती या दुर्घटना से किसी व्यक्ति की मृत्यु का कारण बनता है। इस अपवाद के तीन प्रावधान हैं। पहले प्रावधान में कहा गया है कि अपराधी को हत्या या नुकसान पहुंचाने के बहाने के रूप में स्वेच्छा से उकसाया नहीं जाना चाहिए। दूसरे प्रावधान में कहा गया है कि कानून के पालन में या किसी लोक सेवक द्वारा अपनी शक्तियों के वैध प्रयोग के दौरान किए गए किसी भी कार्य से उकसावे की कार्रवाई नहीं की जाएगी। तीसरे प्रावधान में कहा गया है कि निजी रक्षा के अधिकार के वैध प्रयोग के माध्यम से उकसावे की कार्रवाई नहीं की जानी चाहिए।

उदाहरण– ए, बी की बहन को उसके सामने कई बार गाली देता है और थप्पड़ मारता है और गंभीर और अचानक उकसाता है। वही इस अपवाद के अंतर्गत आएगा।

अपवाद 2 प्राइवेट प्रतिरक्षा का अतिक्रमण (Exceding right of Private defense)– शरीर या संपत्ति की निजी रक्षा के अधिकार का सद्भावपूर्वक प्रयोग करना और कानून द्वारा दी गई अपनी शक्ति से अधिक होना और उस व्यक्ति की मृत्यु का कारण बनता है जिसके खिलाफ वह बिना किसी पूर्वचिन्तन के रक्षा के ऐसे अधिकार का प्रयोग कर रहा है और ऐसी रक्षा लेने के लिए आवश्यक से अधिक नुकसान पहुंचाने का इरादा रखता है।

अपवाद 3 लोक सेवक द्वारा अपनी शक्ति का अतिक्रमण (Public Servant exceeding his Power)– यदि अपराधी एक लोक सेवक है या एक लोक सेवक की सहायता कर रहा है और अपने कर्तव्यों के उचित निर्वहन के लिए वैध और आवश्यक मानते हुए, और बिना किसी दुर्भावना के, सद्भावना में अपनी शक्तियों से आगे निकल जाता है। दुखी सिंह बनाम यूपी राज्य (1955) के मामले में, रेलवे सुरक्षा बल के कांस्टेबल ने चोर को पकड़ने के लिए उस पर गोली चला दी, जब वह अपनी गिरफ्तारी से बच रहा था, हालांकि, इससे उसकी मौत हो गई। लेकिन, कांस्टेबल को इस अपवाद के तहत सुरक्षा दी गई और उस पर आपराधिक मानववध का मामला दर्ज किया गया।

अपवाद 4 अचानक लड़ाई (Sudden Fight)– आपराधिक मानववध, हत्या नहीं है अगर यह बिना सोचे–समझे, अचानक हुई लड़ाई में, जोश में आकर, अचानक झगड़े पर की गई हो और अपराधी द्वारा अनुचित लाभ उठाए बिना या क्रूर या असामान्य तरीके से काम किए बिना की गई हो।

आपराधिक मानववध और हत्या में अन्तर

विभेदीकरण का आधार	आपराधिक मानववध	हत्या
अर्थ/संकल्पना	मृत्यु किसी ऐसे कार्य को करने से होती है जिससे मृत्यु होने की संभावना हो।	मृत्यु ऐसे कार्य के कारण होती है जो मृत्यु कारित करने के पर्याप्त इरादे से किया जाता है।
आवश्यक तत्व	मृत्यु कारित करने के इरादे से की गई मृत्यु या ऐसी शारीरिक चोट पहुंचाने के इरादे से जिससे मृत्यु होने की संभावना हो या मृत्यु कारित करने की संभावना का ज्ञान हो।	मृत्यु कारित करने के इरादे से की गई मृत्यु या ऐसी शारीरिक क्षति कारित करने के इरादे से की गई मृत्यु और मृत्यु कारित करने की संभावना का ज्ञान या ऐसी शारीरिक क्षति कारित करने का इरादा जो मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त है या यह जानते हुए कि मृत्यु या शारीरिक क्षति कारित करना आसन्न रूप से खतरनाक है पूरी संभावना है कि इससे मृत्यु हो सकती है।
प्रावधानों	धारा 299 और 304	धारा 300 और 302
इरादे की डिग्री	अपेक्षाकृत कम	मृत्यु का कारण बनने के लिए पर्याप्त
ज्ञान	मृत्यु कारित करने की संभावना का ज्ञान	उपस्थित होना अनिवार्य है
उद्देश्य (प्रमुखतः)	मृत्यु कारित करने की संभावना	के कारण मृत्यु
सजा	यदि मृत्यु मृत्यु या ऐसी शारीरिक चोट पहुंचाने के इरादे से की गई हो जिससे मृत्यु होने की संभावना हो, तो धारा 304 के पहले पैरा में उल्लिखित आजीवन कारावास या दस साल तक की कैद और जुर्माना हो सकता है। धारा 304 के दूसरे पैरा में उल्लिखित आजीवन कारावास या दस साल तक की कैद या जुर्माना या दोनों, यदि कोई कार्य इस ज्ञान के साथ	मृत्यु या आजीवन कारावास और जुर्माना

	किया गया है कि इससे मृत्यु होने की संभावना है, लेकिन वह बिना किसी इरादे या कारण के किया गया है शारीरिक चोट से मृत्यु होने की संभावना है।	

<u>प्रश्न न0 2–</u> आपराधिक दुर्विनियोग क्या है? उपयुक्त दृष्टानों की सहायता से समझाइए। आपराधिक दुर्विनियोग किस प्रकार चोरी से भिन्न हैं?

<u>उत्तर</u>– भारतीय दण्ड संहिता की धारा 403 में आपराधिक दुर्विनियोग को काफी विस्तृत स्वरूप में प्रस्तुत किया गया है अर्थात् ''जब कोई व्यक्ति किसी चल सम्पति को बेईमानी से स्वयं उपयोग करता है, अथवा दुर्विनियोग करता है, तो सम्पति का दुर्विनियोग कहा जाता है।''

संहिता की धारा 403 आपराधिक दुर्विनियोग को परिभाषित करने के साथ–साथ इसके लिए दण्ड का भी उपबन्ध करती है–''जो कोई बेईमानी से किसी जंगम सम्पति का दुर्विनियोग करेगा, या उसको अपने उपयोग के लिए सम्परिवर्तन कर लेगा, वह दोनों में से किसी भाँति के कारावास से, जिसकी अवधि दो वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, या दोनों से दण्डित किया जाएगा।''

दृष्टान्त

(क) क, य की सम्पति को उस समय जबकि क उस सम्पति को लेता है, यह विश्वास रखते हुए ि कवह सम्पति उसी की है, य के कब्जे में से सद्भावपूर्वक लेता है। क चोरी का दोषी नहीं हैं किन्तु यदि क अपनी भूल होने के पश्चात् उस सम्पति का बेईमानी से अपने लिये विनियोग कर लेता है, तो वह इस धारा के अधीन अपराध का दोषी है।

(ख) क, जो य का मित्र है, य की अनुस्थिति में य के पुस्तकालय में जाता है और य की अभिव्यक्त सम्मति के बिना एक पुस्तक ले जाता है। यहाँ, यदि क का यह विचार था कि पढ़ने के प्रयोजन के पुस्तक लेने की उसको य की विवक्षित सम्मति प्राप्त है, क ने चोरी नहीं की है। किन्तु यदि क बाद में उस पुस्तक को अपने फायदे के लिये बेच देता है, तो वह इस धारा के अधीन अपराध का दोषी है।

स्पष्टीकरण 1– केवल कुछ समय के लिए बेईमानी से दुर्विनियोग करना इस धारा के अर्थ के अन्तर्गत दुर्विनियोग है।

दृष्टान्त

क, को य का एक सरकारी वचनपत्र मिलता है, जिस पर निरंक पृष्ठांकन है। क, यह जानते हुए कि वचनपत्र य का है, उसे ऋण के लिये प्रतिभूति के रूप में बैंकर के पास इस आशय से गिरवी रख देता है। कि वह भविष्य में उसे य को प्रत्यावर्तित कर देगा। क ने इस धारा के अधीन अपराध किया है।

स्पष्टीकरण 2– जिस व्यक्ति को ऐसी सम्पत्ति पड़ी मिल जाती है, जो अन्य व्यक्ति के कब्जे में नहीं है और वह उसके स्वामी के लिये उसको संरक्षित रखने या उसके स्वामी को उसे प्रत्यावर्तित करने के प्रयोजन से ऐसी सम्पत्ति को लेता है, वह न तो बेईमानी से उसे लेता है और न बेईमानी से उसका दुर्विनियोग करता है, और किसी अपराध का दोषी नही है, किन्तु वह ऊपर परिभाषित अपराध का दोषी है, यदि वह उसके स्वामी को जानते हुए या खोज निकालने के साधन रखते हुए अथवा उसके स्वामी को खोज निकालने और सूचना देने के युक्तियुक्त साधन उपयोग में लाने और उसके स्वामी को उसकी माँग करने को समर्थ करने के लिए सम्पत्ति को युक्तियुक्त समय तक रखे रहने के पूर्व उसको अपने लिए विनियोजित कर लेता है।

ऐसी दशा में युक्तियुक्त साधन क्या है, या युक्तियुक्त समय क्या है, वह तथ्य का प्रश्न है। यह आवश्यक नहीं है कि पाने वाला यह जानता हो कि सम्पत्ति का स्वामी कौन है, या यह कि कोई विशिष्ट व्यक्ति उसका स्वामी है। यह पर्याप्त है कि उसको विनियोजित करते समय उसे यह विश्वास नहीं है कि उसकी अपनी सम्पत्ति है, या सद्भावपूर्वक यह विश्वास है कि उसका असली स्वामी नहीं मिल सकता।

दृष्टान्त

(क) क को राजमार्ग पर एक रूपया पड़ मिलता है। यह न जानते हुए कि वह रूपया किसका है, क उस रूपये को उठा लेता है। यहाँ क ने इस धारा में परिभाषित अपराध नही किया है।

(ख) क को सड़क पर एक चिट्ठी पड़ी मिलता है, जिसमें एक बैंक नोट है। उस चिट्ठी में दिये हुए निर्देश और विषय–वस्तु से उसे यह ज्ञात हो जाता है ि कवह नोट किसका है। वह उस नोट का विनियोग कर लेता है। वह इस धारा के अधीन अपराध का दोषी है।

आपराधिक दुर्विनियोग– अर्थ– धारायें 403 एवं 404 भा.द.सं. सम्पत्ति के आपराधिक दुर्विनियोग से सम्बन्धित है। धारा 403 आपराधिक दुर्विनियोग को परिभाषित करती है एवं अपराध हेतु दण्ड विहित करती है तथा धारा 404 मृतक व्यक्ति की सम्पत्ति के दुर्विनियोग से सम्बन्धित है। दुर्विनियोग शब्द का अर्थ किसी अन्य की सम्पत्ति का स्वयं अपने प्रयोग हेतु पूँजीकरण करने के एकमात्र प्रयोजन हेतु बेईमानी से विनियोजन एवं प्रयोग।

आपराधिक दुर्विनियोग घटित होता है जब निष्कपटता से कब्जा प्राप्त होता है लेकिन जो बाद में आशय में परिवर्तन के कारण या कोई नया तथ्य पता चलने के बाद जो पक्षकार को पहले पता नही था, जारी रखता है। जब वह तथ्य ज्ञात हो जाता है सम्पत्ति सदोषपूर्ण एवं कपटपूर्ण हो जाता है।

यह अपराध कारावास द्वारा, जो दो वर्षों तक (साधारण या गम्भीर) हो सकता है या जुर्माना या दोनों द्वारा दण्डनीय है।

आवश्यक तत्व–धारा 403 लागू होने की शर्तें–

(1) जब किसी व्यक्ति ने किसी सम्पति का बेईमानी से दुर्विनियोग किया हो अथवा उसको स्वयं अपने उपयोग में सम्परिवर्तित किया हो।

(2) ऐसी सम्पत्ति चल हो

(3) प्रश्नगत सम्पत्ति का कोई अन्य स्वामी हो।

सर्वोच्च न्यायालय ने रामास्वामी नादर बनाम मद्रास राज्य 1958 एस.सी0 56 के वाद में अभिनिर्धारित किया कि धारा 403 तभी लागू होगी जब अभियोजन ने यह साबित किया हो कि–

(क) अभियुक्त ने सम्पत्ति का दुर्विनियोग किया है,

(ख) ऐसी बेईमानी के आशय से किया गया हो,

(ग) ऐसी सम्पत्ति परिवादी का हो।

<u>प्रश्न न0 3–</u> गम्भीर तथा अचानक प्रकोपन से सम्बन्धित भारतीय दण्ड संहिता में समाविष्ट कानून की विवेचना कीजिए।

<u>उत्तर</u>– गम्भीर तथा अचानक प्रकोपन से सम्बन्धित विधि का वर्णन भारतीय दण्ड संहिता की धारा 300 के प्रथम अपवाद में की गई है, जो यह स्पष्ट करता है कि आपराधिक मानव वध कब हत्या नहीं हैं–

अपवाद 1– आपराधिक मानव–वध कब हत्या नहीं है– आपराधिक मानव–वध हत्या नही है, यदि अपराधी उस समय जबकि वह गम्भीर और अचानक प्रकोपन से आत्म–संयम की शक्ति से वंचित हो, उस व्यक्ति की, जिसने कि वह प्रकोपन दिया था, मृम्यु कारित करे या किसी अन्य व्यक्ति की मृत्यु भूल या दुर्घटनावश कारित करे।

ऊपर का अपवाद निम्नलिखित परन्तुकों के अध्यधीन है–

प्रथम–यह कि वह प्रकोपच किसी व्यक्ति का वध करने या अपहानि करने के लिए अपराधी द्वारा प्रतिहेतु के रूप ईप्सित न हो या स्वेच्छाया प्रकोपित न हो।

द्वितीय– यह कि वह प्रकोपन किसी ऐसी बात द्वारा न दिया गया हो जो विधि के पालन में या लोक–सेवक द्वारा ऐसे लोक–सेवक की शक्तियों के विधिपूर्ण प्रयोग में की गयी हो।

तृतीय– यह कि वह प्रकोपन किसी ऐसी बात द्वारा न दिया गया हो, जो प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार के विधि प्रयोग में की गयी हो।

स्पष्टीकरण – प्रकोपन इतना गम्भीर और अचानक था या नहीं कि अपराध को हत्या की कोटि में जाने से बचा दे, यह तथ्य प्रश्न है।

अल्पकीकरण के रूप में गम्भीर एवं अचानक प्रकोपन (Grave and Sudden provocation as mitigation)– संहिता के लेखकों ने संहिता में निम्नलिखित शब्दों में संहिता के उद्देश्य एवं प्रयोजन तथा गम्भीर एवं अचानक प्रकोपन पर कारित हत्या के मामले में उत्तरदायी दण्ड हेतु औचित्य का संक्षिप्त में वर्णन किया है–

हम यह सोचने में सम्पूर्ण मानवता तथा अधिकांश विधिवेत्ताओं चाहे वो प्राचीन हो या आधुनिक, सहमत है कि अचानक आवेश में आकर, अत्यधिक प्रकोपन पर किया गया मानववध दण्डित किया जाना चाहिये, परन्तु इसे उतनी सख्ती से दण्डित नहीं किया जाना चाहिये जितना कि हत्या के मामले में किया जाता है। इसे व्यक्तियों को मानव जीवन के प्रति विशेष सम्मान रखने का पाठ पढ़ाने के लिए दण्डित किया जाना चाहिये, इसे व्यक्तियों कों अपने आवेशों पर नियन्त्रण रखने हेतु अभ्यस्त बनाने के लिए प्रेरणा देने के लिए तथा कुछ मामलों में अत्यन्त कठोरता ये कार्यवाही करने के लिए दण्डित किया जाना चाहिये। फिर भी हम अचानक प्रकोपन पर हिंसापूर्ण आवेश कारित मानववध को विधि की सर्वोच्च शास्तियों द्वारा दण्डित नहीं करेगें। हम सोचते हैं कि किसी व्यक्ति को ऐसे मानववध का दोषी मानना जैसा हमें एक हत्यारे के साथ व्यवहार करना चाहिये, अत्यन्त अविवेकपूर्ण रास्ता जो मानवता की सार्वभौतिक भावना को झकझोर देगा तथा विधि के विरूद्ध अपराधी के पक्ष में लोक सहानुभूति आकर्षित करेगा।

(1) अनिवार्यता (Essentials)– संहिता ने धारा 300 भा.द.सं. के अपवाद 1 के अधीन ऐसी परिस्थितियों को सूचीबद्ध किया है जिनके अधीन हत्या का अपराध धारा 304 भा.द.सं. के अधीन दण्डनीय हत्या की कोटि में नहीं आने वाला मानववध में परिणत हो जायेगा। इस खण्ड का लाभ प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित शर्तों का पालन आवश्यक है–

(1) मृतक द्वारा अभियुक्त को प्रकोपन दिया गया हो।

(2) प्रकोपन गम्भीर होना चाहिये।

(3) प्रकोपन अचानक होना चाहिये।

(4) उक्त प्रकोपन के कारण अपराधी का अपने ऊपर से आत्म–नियन्त्रण खो जाना चाहिये।

(5) अभियुक्त के आत्मनियन्त्रण की शक्ति से वंचित हो जाने के दौरान मृतक को डाला।

(6) अपराधी ने उस व्यक्ति की जिसने उसे प्रकोपन दिया था फिर गलती या दुर्घटना से किसी अन्य व्यक्ति की मृत्यु कारित की हो।

यह कहा जा सकता है कि प्रकोपन का बचाव आगे निम्नलिखित तीन परन्तुक द्वारा और सीमित हो जाता है। कहने का अर्थ है कि अपवाद अपवाद उपलब्ध नहीं है–

(1) यदि अभियुक्त किसी और पर हमला करने के लिए प्रकोपन देता है या बहाने के रूप में इसका प्रयोग करता है,
(2) यदि वो कृत्य किसी लोक सेवक द्वारा सेवक के रूप में अपने विधिक अधिकार के प्रयोग में वैध रूप से किया जाता है,
(3) यदि वो कृत्य प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार के प्रयोग में किया जाता है।

(2) गम्भीर एवं अचानक प्रकोपन अर्थ– उपरोक्त सूचीबद्ध शर्तों में सबसे महत्वपूर्ण शर्त जिसने समय–समय पर न्यायालयों को दुविधा डाला है, गम्भीर एवं अचानक प्रकोपन की कोटि में आता है, जिसके परिणामस्वरूप अभियुक्त अपनी आत्मनियन्त्रण शक्ति से वंचित हो जाता है तो उसे अपवाद के लाभ का हकदार बनायेगा। एल0सी0 साइमन ने **मेनसिनी बनाम डायरेक्टर ऑफ पब्लिक प्रोसीक्यूशन 1942 ए.सी.1(9)** के मामले में प्रकोपन के सिद्वान्त के क्षेत्र का भली–भाँति वर्णन किया जैसा कि नीचे दिया हुआ है– यह केवल प्रकोपन नहीं है जो हत्या के अपराध को नरवध (आपराधिक मानववध) में परिणत कर देगा। उस तरह के परिणाम के लिए प्रकोपन का ऐसा होना आवश्यक है जो अस्थायी रूप से प्रकोपित व्यक्ति को आत्मनियन्त्रण की शक्ति से वंचित कर दे जिसके परिणामस्वरूप वह विधि विरूद्ध कार्य करता है जिससे मृत्यु कारित होती है।

यहाँ पर लागू की जाने वाली परीक्षा यह है कि एक समझदार व्यक्ति का प्रकोपन का क्या प्रभाव पड़ता है जैसा दाण्डिक अपील न्यायालय द्वारा रेक्स बनाम लेसबिनी (1914) 3 के.बी. 1116 के वाद में प्रतिवादित किया गया है जिससे असामान्य से उत्तेजित या झगड़ालू व्यक्ति प्रकोपन पर निर्भर करने का हकदार नहीं होता है जो किसी साधारण व्यक्ति को ऐसा कार्य करने के लिए प्रेरित नहीं करता जैसा उसने किया।

परीक्षा का प्रयोग करने में यह विशेष रूप से महत्वपूर्ण है–
(क) यह विचार करना कि क्या प्रकोपन के बाद से इतना पर्याप्त समय बीत चुका है कि एक समझदार व्यक्ति को शान्त होने का समय मिल सके, तथा
(ख) उपकरण पर ध्यान देना जिससे मानववध किया गया था। प्रकोपन द्वारा अभिप्रेरित किये जाने पर आवेश में एक साधारण प्रहार से भी प्रत्युत्तर देना, एक घातक हथियार जैसे छिपायी गयी कटार का प्रयोग करने से बिल्कुल भिन्न चीज है। संक्षेप में यदि अपराध को नरवध (आपराधिक मानववध) में परिणत किया जाना है तो नाराजगी के तरीके का प्रकोपन से युक्तियुक्त सम्बन्ध होना आवश्यक है।

(3) प्रकोपन की कोटि में आने वाले शब्द या कार्य– यह ध्यान देना महत्वपूर्ण है कि भारतीय न्यायालयों ने जैसा कि आंग्ल विधि के मामले में किया जाता है, प्रकोपन के सिद्धान्त के उपयोग में शब्दों एवं कृत्यों के बीच भेद बनाकर नहीं रखा हैं

ऐसे मामले जिसमें प्रकोपन का बचाव पेश किया जाता है, पर दो पहलुओं से विचार किया जा सकता है–
(1) क्या ऐसे शब्द या इशारे जो कृत्य के साथ–साथा नहीं हुए थे, प्रकोपन की कोटि में आ सकते है, तथा
(2) प्रकोपन के कृत्य एवं अपराध कारित होने के बीच के समय के विलम्ब का क्या प्रभाव है।

मुरूगिन आइ.एल.आर. 1957 मद्रास 805 के मामले में मद्रास उच्च न्यायालय ने धारित किया कि जहाँ मृतक ने न केवल जारकर्म कारित किया था, बल्कि बाद में प्रकट रूप से पति के सामने शपथ लिया कि वो ऐसा जारकर्म जारी रखेगी एवं ऐसे आचारण का विरोध करने के लिए अपने पति को गाली भी दिया। यह मामला धारा 300 भा.द.सं. के प्रथम अपवाद के अन्तर्गत आता था। निर्णय दर्शाते है कि पूर्व कृत्य द्वारा सृष्ट की गयी मानसिक दशा पर यह निर्धारित करने के लिए विचार किया जा सकता है कि क्या पश्चात्वर्ती कृत्य अपराधी को अपना आत्मनियन्त्रण खोने के लिए पर्याप्त था।

(4) समझदार व्यक्ति की परीक्षा–के.एम. नानावती– उच्चतम न्यायालय ने **के.एम. नानावती बनाम स्टेट ऑफ महाराष्ट्र ए.आई.आर. 1962 एस.सी. 605** के मामले में भारत में प्रकोपन से सम्बन्धित विधि पर विस्तार से चर्चा कीया है एवं अवलोकन किया कि
(1) गम्भीर एवं अचानक प्रकोपन की परीक्षा है कि समाज के उसी वर्ग, जिससे अभियुक्त था, के किसी समझदार व्यक्ति को उसी दशा में, जिसमें अभियुक्त था, डाले जाने पर क्या वो भी इतना प्रकोपित होता कि अपना आत्मनियन्त्रण खो बैठेगा।
(2) भारत में कुछ निश्चित परिस्थितियों में एक अभियुक्त को शब्दों एवं इशारों द्वारा भी गम्भीर एवं अचानक प्रकोपन कारित हो सकता है जिससे उसके कृत्य को धारा 300 भा.द.सं. के पहले अपवाद के अधीन लाया जा सकता है।
(3) पीड़ित के पूर्व कृत्य द्वारा सृष्ट मानसिक पृष्ठभूमि पर यह निर्धारित करने के लिए विचार किया जा सकता है कि क्या पश्चात्वर्ती कृत्य ने अपराध कारित करने के लिए गम्भीर एवं अचानक प्रकोपन किया था, एवं
(4) घातक प्रहार स्पष्ट रूप से प्रकोपन से उत्पन्न होने वाले आवेश के प्रभाव से था न कि समय के बीतने के साथ आवेश के ठंडे हो जाने या अन्यथा अभियुक्त को पूर्वचिन्तन एवं विचार किये जाने हेतु अवसर दिये जाने से सम्बन्धित होना चाहिये।

न्यायालय ने आगे कहा– निश्चित परिस्थितियों में एक समझदार व्यक्ति क्या करेगा यह प्रथाओं, आचरण, जीवनशैली, परम्परागत मूल्यों आदि, संक्षेप में कहा जाये तो समाज के उस सांस्कृतिक, सामाजिक एवं भावनात्मक पृष्ठभूमि पर निर्भर करता है जिससे अभियुक्त का सम्बन्ध है। हमारे देश में ऐसे सामाजिक समूह हैं जो सभ्यता के निम्नवत् से उच्चतम अवस्था से है। परिशुद्धता के किसी मानक को निर्धारित करना न तो सम्भव है और न ही

वांछनीय है, यह निर्णय करने का कार्य प्रत्येक मामले की सुसंगत परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए न्यायालय करता है।

इस मामले के तथ्य क्रोधित पति द्वारा अपनी पत्नी के प्रेमी की अभिकथित हत्या की घिसी–पिटी समस्या प्रस्तुत इसे प्राप्त प्रसिद्धि के कारण इसने जनता में काफी दिलचस्पी जाग्रत कर दीया थी। अभियुक्त जो एक नौसेना अधिकार था, के ऊपर बम्बई के व्यापार प्रेम आहूजा की अभियुक्त की पत्नी सिल्विया से अवैध सम्बन्ध रचाने के लिए, हत्या करने का आरोप था। अपनी पत्नी के मृतक के साथ अवैध सम्बन्ध होने के बारे में पता चलने पर वह जहाज पर गया, झूठे बहाने से स्टोर से एक सेमी–ऑटोमेटिक रिवाल्वर तथा 6 काटिरेज लिया उनको रिवाल्वर में लोड किया, फिर आहूजा के फ्लैट में गया, उसके शयनकक्ष में प्रवेश किया और गरमागरम बहस के बाद उसे गोली मार दिया, वो मर गया।

अभियुक्त द्वारा किये गये गम्भीर एवं अचानक प्रकोपन के तर्क को नामंजूर करते हुए न्यायालय ने धारित किया कि धारा 300 भा.द.सं. के अपवाद 1 के उपयोग के लिए आवश्यक है कि वो कृत्य जिसने मृत्यु कारित आत्मनियन्त्रण की अस्थायी क्षति की मानसिक दशा बने रहने के दौरान ही किया जाना चाहिये इससे पूर्व कि आवेश को ठण्डे होने का समय तथा चित्त पर फिर से नियन्त्रण करने का कारण प्राप्त हो। इसमें कोई सन्देह नही कि मृतक के क्षण भर के लिए अपना आत्मनियन्त्रण खो दिया था जब उसकी पत्नी ने उससे मृतक के साथ अपने अवैध सम्बन्ध होने की बात स्वीकार की, उसका पश्चात्वर्ती आचारण स्पष्ट से दर्शाता था कि उसने न केवल फिर से आत्मनियन्त्रण पा लिया था बल्कि वास्तविकता में भावी कार्य की योजना बनाने में समक्ष था। उसने अपनी पत्नी एवं बच्चों को गाड़ी से सिनेमा में छोड़ा, अपने जहाज पर गया, झूठे बहाने से रिवाल्वर लिया काटिरेज लोड किया, कुछ शासकीय कार्य किया, पीड़ित के ऑफिस गया, वहाँ नहीं पाकर उसके फ्लैट गया एवं सीधे उसे गोली मार दिया, वो मर गया। उसका घर छोड़ने तथा हत्या के समय के बीच तीन घण्टों का समयान्तर था, यह समय आवेश के ठण्डे होने तथा फिर से आत्मनियन्त्रण पाने के लिए पर्याप्त था, भले ही उसने पहले आत्मनियन्त्रण नहीं पाया हो अर्थात् उस समयांतर के बीच जब उसकी पत्नी ने उसके सामने अपना अपराध स्वीकार किया था और जब उसने मृतक के विरूद्ध अपनी योजना को अंजाम दिया था।

<u>प्रश्न न0 4–</u> आपराधिक न्यासभंग के आवश्यक तत्वों की विवेचना कीजिए और इसका आपराधिक दुर्विनियोग से अन्तर बताइए।

<u>उत्तर</u>– आपराधिक न्यासभंग (Criminal Breach of Trust) धारा 405 – जब कोई व्यक्ति, किसी ऐसी सम्पत्ति का जो उसको न्यस्त की गई है, न्यास से सम्बन्धित अभिव्यक्त या विवक्षित करार के विरूद्धया न्यास के लिए विहित शर्तों के विरूद्ध दुर्विनियोग करता है या उपयोग करता है या अपने स्वयं के उपयोग के लिए उसका सम्परिवर्तन या व्यय करता है या किसी अन्य व्यक्ति को जानबूझकर ऐसा करने देता है तो न्यास भंग होना कहा जाता है। धारा 405 न्यास भंग की निम्नलिखित परिभाषा बताती है–

''जो कोई सम्पत्ति या सम्पत्ति पर कोई भी अख्त्यार किसी प्रकार अपने को न्यस्त किये जाने पर उस सम्पत्ति का बेईमानी से दुर्विनियोग कर लेता है, या अपने उपयोग में संपरिवर्तित कर लेता है, या जिस प्रकार न्यास निर्वहन किया जाना है, उसका विहित करने वाली विधिच के विसी निदेश का , या ऐसे न्यास के निर्वहन के बारे में उसके द्वारा की गई किसी अभिव्यक्त या विवक्षित वैधसंविदा का अतिक्रमण करके बेईमानी से सम्पत्ति का उपयोग या व्यय करता है, या जानबूझकर किसी अन्य व्यक्ति का ऐसा करना सहन करता है, वह 'आपराधिक न्यासभंग' करता है।''

स्पष्टीकरण 1– जो व्यक्ति {किसी स्थापना का नियोजक होते हुए, चाहे वह स्थापन कर्मचारी भविष्य–निधि और प्रकीर्ण उपबन्ध अधिनियम, 1952 (1952 का 19) की धारा 17 के अधीन छूट प्राप्त है या नहीं,} तत्समय प्रवृत किसी विधि द्वारा स्थापित भविष्य–निधि या कुटुम्ब पेंशन निधि में जमा करने के लिए कर्मचारी–अभिदाय की कटौती कर्मचारी को संदेय मजदूरी में से करता उसके बारे में यह समझा जाएगा कि उसके द्वारा इस प्रकार कटौती किए गए अभिदाय की रकम उसे न्यस्त कर दी गई है और यदि उक्त निधि में ऐसे अभिदाय का संदाय करने में, उक्त विधि का अतिक्रमण करके व्यतिवम करेगा तो उसके बारे में यह समझा जाएगा कि उसने यथापूर्वोक्त विधि के किसी निदेश का अतिक्रमण करके उक्त अभिदाय की रकम का बेईमानी से उपयोग किया है।

स्पष्टीकरण 2– जो व्यक्ति, नियोजक होते हुए, कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948(1948 का 34) के अधीन स्थापित कर्मचारी राज्य बीमा निगम द्वारा धारित और शासित कर्मचारी राज्य बीमा निगम निधि में जमा करने के लिए कर्मचारी को संदेय मजदूरी में से कर्मचारी–अभिदाय की कटौती करता है, उसके बारे में यह समझा जायेगा कि उसे अभिदाय की वह रकम न्यस्त कर दी गई है, जिसकी उसने इस प्रकार कटौती की है और यदि वह उक्त निधि में ऐसे अभिदाय के संदाय करने में, उक्त अधिनियम का अतिक्रमण करके, व्यतिवम करता है, तो उसके बारे में यह समझा जाएगाकि उसने यथापूर्वोक्त विधि के किसी निदेश का अतिक्रमण करके उक्त अभिदाय की रकम का बेईमानी से उपयोग किया है।

दृष्टान्त

(क) क एक मृत व्यक्ति के बिल का निष्पादक होते हुए उस विधि की,जो चीजबस्त वस्तु के बिल के अनुसार विभाजित करने के लिए उसको निदेश देती है, बेईमानी से अवज्ञा करता है और उस चीजबस्त वस्तु को अपने उपयोग के लिये विनियुक्त कर लेता है। क ने आपराधिक न्यासभंग किया है।

(ख) क भाण्डागारिक है। य यात्रा को जाते हुए अपना फर्नीचर क के पास इस संविदा के अधीन न्यस्त कर जाता है कि भाण्डागार के कमरे के लिए ठहराई गई राशि के दे दिये जाने पर लौटा दिया जायेगा। क उस माल को बेईमानी से बेच देता है। क ने आपराधिक न्यासभंग किया है।

(1) न्याास का आपराधिक भंग– अर्थ– धारा 405 भा.द.सं. न्यास के आपराधिक भंग को परिभाषित करती है। यह कहती है कि आपराधिक न्यासभंग का अपराध गठित करने के लिये यह सिद्ध किया जाना आवश्यक है कि अभियुक्त को किसी अन्य की सम्पत्ति या सम्पत्ति पर स्वामित्व या प्रभुत्व सौंपा गया था एवं कि उसने इसे अपने प्रयोग के लिए बेईमानी से दुर्विनियोजित एवं संपरिवर्तित किया था। कहने का अर्थ है कि यह अवश्य साबित किया जाना चाहिये कि सम्पत्ति जिसके सम्बन्ध में अपराध कारित होने का अभिकथन किया गया है, में फायदाप्रद हित अभियुक्त के बजाय किसी अन्य व्यक्ति में निहित था एवं कि अभियुक्त उस व्यक्ति की ओर से वो सम्पत्ति रखे हुए था। अन्तरक एवं अन्तरिती के बीच एक बन जाता है जिसके अधीन अन्तरक सम्पत्ति का वैध स्वामी रहता है एवं अन्तरिती के पास स्वयं अन्तरक या किसी अन्य फायदे हेतु केवल सम्पत्ति की अभिरक्षा रह जाती है। अधिक से अधिक अन्तरिती को उसको सौंपी गयी सम्पत्ति में केवल विशेष हित प्राप्त होता है जो इसके सुरक्षित रख–रखाव के सम्बन्ध में उसके व्ययोंके दावे तक सीमित है एवं किसी भी परिस्थिति में वह सुपुर्दगी की शर्तों के उल्लंघन में उस सम्पत्ति का व्ययन करने का अधिकार नहीं प्राप्त करता है। आपराधिक न्यासभंग का अपराध निम्नलिखित शर्तों के पूर्ण होने पर ही गठित होता है–

(1) किसी व्यक्ति में या तो कोई सम्पत्ति न्यस्त की गई हो या सम्पत्ति का कोई भाग न्यस्त किया गया हो, और

(2) इस प्रकार न्यस्त व्यक्ति ने–

(क) उस सम्पत्ति का बेईमानी से दुर्विनियोग कर लिया हो या अपने उपयोग के लिए संपरिवर्तित कर लिया हो, अथवा

(ख) जिस प्रकार न्यास का पालन किया जाना है उसको विहित करने वाली विधि के किसी निदेश का उल्लंघन किया हो, अथवा

(ग) न्यास का पालन के बारे में हुई संविदा की अभिव्यक्त या विवक्षित शर्तों का उल्लंघन किया हो, जो

(घ) इस प्रकार उस सम्पत्ति का उपयोग या व्यसन कर लिया हो या जानबूझकर किसी अन्य व्यक्ति द्वारा ऐसा किया जाना सहन किया हो।

स्टेट ऑफ महाराष्ट्र बनाम नरायन चम्पालाल बजाज, 1990 Cr.LJ 2635 के मुकदमे में आयकर छापामार पार्टी छापे का कार्य जब उस दिन पूरा न कर सकी तो छापा डालने वाली पार्टी ने पकड़े गए आभूषणों को एक अलमारी में बन्द कर दिया तथा ताला लगाकर सीज कर दिया और अभियुक्त को सौंप दिया। अभियुक्त ने अलमारी काटकर कुछ सामान निकाल लिया। निर्णीत हुआ कि अभियुक्त न्यासभंग का दोषी था।

उच्चतम न्यायालय ने **मधुसूदन मल्होत्रा बनाम किशोर चन्द्र भण्डारी, 1988 एस.सी.सी. (Cri) 854** के मामले में अभिनिर्धारित किया है कि पति यदि पत्नी को स्त्री धन लौटाता नहीं है तो वह आपराधिक न्यासभंग का दोषी होगा।

इसी प्रकार जहाँ एक हिन्दू महिला के पति एवं श्वसुर ने माँगने के बावजूद स्त्रीधन को देने इंकार कर दिया था। निर्णीत हुआ कि वह आपराधिक न्यासभंग के दोषी थे **(मानस कुमार दत्ता बनाम आलोक दत्ता, 1991 Cr.LJ 288 उड़िसा)** एक ट्रस्ट के सभापति ने ट्रस्ट के पैसे से कुछ सम्पत्ति अपने पुत्र के नाम से खरीदी। पुत्र का ट्रस्ट से कोई सम्बन्ध नहीं था। लेकिन परिवादी ने पुत्र के खिलाफ कोई आरोप प्रकट नहीं किया था। मुकदमे के पहले ही अभियुक्त की मृत्यु हो गई। अभिनिर्धारित हुआ कि मुख्य अभियुक्त की मृत्यु हो जाने से द्वितीय अभियुक्त के विरूद्ध कार्यवाही का आधार समाप्त हो गया था **(जर्नादन बन्धु जी दिघे बनाम विश्वकर्मा मन्दिर ट्रस्ट 1991 Cr.LJ 1095 बम्बई) बलराम सिंह बनाम सुखवंत कौर, 1992 Cr.LJ 792** के मुकदमे में न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि न्यासभंग का अपराध निरन्तर चालू रहने वाला अपराध है, इसलिए सम्बन्धित परिवाद को परिसीमा से आबद्ध नहीं किया जा सकता ।

आपराधिक न्यासभंग के आवश्यक तत्व

1. सम्पत्ति का न्यस्त किया जाना– आपराधिक न्यासभंग का प्रथम आवश्यक त्व अभियुक्त को किसी सम्पत्ति का न्यस्त किया जाना है। न्यस्त शब्द का तात्पर्य है किसी प्रयोजन हेतु सम्पत्ति पर कब्जा प्रदान करना, किन्तु जिसमें स्वामित्व सम्बन्धी अधिकारों का प्रदान किया जाना अन्तर्विष्ट नही होता।

शामलाल बनाम पंजाब राज्य, 2001 Cr.LJ 2957 (पंजाब व हरियाणा) के मामले में अभियुक्त के द्वारा आपराधिक न्यासभंग का अपराध कारित किया गया। पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया कि पक्षकारों के मध्य किये गये करार में माध्यस्थम् का प्रावधान धारा 406 के अधीन आपराधिक कार्यवाही को रोक नहीं सकता है। न्यायालय द्वारा यह भी स्पष्ट किया कि सिविल एवं आपराधिक कार्यवहियाँ साथ–साथ चल सकती है।

2. सम्पत्ति– इस धारा के अन्तर्गत सम्पत्ति चल अथवा अचल किसी प्रकार की हो सकती है। सम्पत्ति, जिसके सम्बन्ध में आपराधिक न्यासभंग का अपराध किया जाना अभिकथित है, या तो अभियुक्त को न्यस्त की गयी होनी चाहिए अथवा उसका उेसी सम्पत्ति पर संरक्षण (अख्त्यिार) होना चाहिए।

3. सम्पत्ति का बेईमानी से दुर्विनियेग– आपराधिक न्यासभंग अपराध का मूल तत्व सम्पत्ति का बेईमानी से अपने हित में दुर्विनियोग करना है। किसी व्यक्ति द्वारा सम्पत्ति को दुर्विनियोग के बिना कब्जे में रखना आपराधिक न्यासभंग के तुल्य नहीं है।

4. सम्पत्ति का बेईमानी से उपयोग या व्ययन– इस धारा के अन्तर्गत कोई अपराध चार धनात्मक कार्यों में से किसी एक द्वारा संरचित किया जाता है। चार धनात्मक कार्य हैं– दुर्विनियोग, सम्परिवर्तन, उपयोग तथा व्ययन। उपयोग इस धारा के अन्तर्गत तभी अपराध होता है, जबकि सम्पत्ति के स्वामी को कोई सारवान या महत्वपूर्ण उपहति कारित होती है अथवा अभियुक्त को लाभ पहुँचाता हैं।

5. न्यास– न्यास एक ऐसा आधार दायित्व है जो किसी सम्पत्ति के स्वामित्व के संलग्न है और जो उस विश्वास से उत्पन्न होता है जिसे सम्पत्ति के स्वामी ने दूसरों के लाभ के लिए या दूसरों और स्वयं स्वामी के लाभ के लिये उद्घोषित एवं स्वीकार किया है। विश्वास या न्यास का प्रतिक्रमण उस समय नहीं होता जबकि सम्पत्ति न्यस्त नहीं की गयी है। न्यास का किसी वैध उद्देश्य को अग्रसारित करने के लिए होना आवश्यक नहीं है।

6. अभिव्यक्त या विवक्षित संविदा– किसी संविदा का उल्लंघन केवल तभी आपराधिक न्यासभंग की कोटि में आ सकता है, जब वह विधिक या विधिमान्य संविदा से सम्बन्धित हो, न कि किसी ऐसी संविदा से, जो कि आपराधिक प्रयोजनों के लिए की गई हो। उदाहरणार्थ चुराई गई सम्पत्ति का क्रय।

7. जान–बूझकर किसी अन्य व्यक्ति का ऐसा करना सहन करना– यहाँ प्रयुक्त 'जानबूझकर' अभिव्यक्ति का तात्पर्य सोच–विचारकर और साशय है, न कि दुर्घटना से या उदासीनतावश से है।

न्यासभंग के लिए दण्ड (धारा 406)– न्यासभंग के लिए दण्ड का वर्णन धारा 406 तथा न्यासभंग के अन्य स्वरूपों का दण्ड सहित वर्णन 407 से धारा 409 तक में किया गया है। ये धाराएँ निम्नलिखित हैं

जो कोई आपराधिक न्यासभंग करेगा, वह दोनों में से किसी भाँति के कारावास से, जिनकी अवधि तीन वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने से या दोनों से दण्डित किया जाएगा।

वाहक, घाटवाल आदि आपराधिक न्यासभंग (धारा 407)– जो कोई वाहक, घाटवाल या भाण्डागारिक के रूप में अपने पास सम्पत्ति न्यस्त किये जाने पर ऐसी सम्पत्ति के विषय में आपराधिक न्यासभंग करेगा, वह दोनों में से किसी भाँति के कारावास से, जिसकी अवधि सात वर्ष तक की हो सकेगी, दण्डित किया जायेगा और जुर्माने से भी दण्डनीय होगा।

आपराधिक दुर्विनियोग तथा आपराधिक न्यासभंग में अन्तर (Difference between criminal misappropriation and criminal breach of trust)–

(1) धारा– सम्पत्ति के बेईमानी से दुर्विनियोग को धारा 403 में परिभाषित किया गया है जबकि आपराधिक न्यासभंग को धारा 405 में उपबन्धित किया गया है।

(2) सम्पत्ति पर कब्जा– आपराधिक न्यासभंग में सम्पत्ति का अपराधी को न्यस्त किया जाना आवश्यक है जबकि सम्पत्ति के बेईमानी से दुर्विनियोग में किसी भूल या किसी घटना के कारण ही अपराधी को सम्पत्ति पर कब्जा प्राप्त होता है।

(3) न्यास– आपराधिक न्यासभंग में अपराधी को न्यस्त किया जाना आवश्यक है जबकि आपराधिक दुर्विनियोग में सम्पत्ति को इस प्रकार न्यस्त किया जाना आवश्यक नहीं है।

(4) सहमति– आपराधिक न्यासभंग में सम्पत्ति पर कब्जा सम्पत्ति के स्वामी की सहमति से भी हो सकता है, जबकि सम्पत्ति के बेईमानी से दुर्विनियोग में अपराधी का सम्पत्ति पर कब्जा सम्पत्ति के स्वामी की सहमति से भी हो सकता है और बिना सहमति के भी हो सकता है।

(5) संविदा– आपराधिक न्यासभंग में अपराधि को सम्पत्ति किसी संविदा के अधीन न्यस्त की जाती है जबकि आपराधिक दुर्विनियोग में इस प्रकार की संविदा की कोई आवश्यकता नहीं है।

(6) क्षेत्र– आपराधिक न्यासभंग का अपराध, सम्पत्ति के बेईमानी से दुर्विनियोग की अपेक्षा अधिक व्यापक है और इस तरह इसमें सम्पत्ति का बेईमानी से दुर्विनियेाग भी शामिल है जबकि आपराधिक दुर्विनियोग के अपराध का क्षेत्र व्यापक नहीं है। इसमें न्यासभंग का अपराध शामिल नहीं है।

(7) अपराध की प्रकृति– आपराधिक न्यासभंग का अपराध सम्पत्ति के बेईमानी से दुर्विनियोग की अपेक्षा अधिक गम्भीर है जबकि सम्पत्ति के बेईमानी से दुर्विनियोग का अपराध इतना गम्भीर नहीं है।

(8) दण्ड– आपराधिक न्यासभंग के अपराध का दोषी व्यक्ति तीन वर्ष तक की अवधि के कारावास से या जुर्माने या दोनों से दण्डनीय है, जबकि सम्पत्ति के बेईमानी से दुर्विनियोग के अपराध का दोषी व्यक्ति दो वर्ष तक की अवधि के कारावास से या जुर्माने से या दोनों से दण्डनीय है।

प्रश्न न0 5– "धारा 34 और 149 के विस्तार तथा लागू होने में अत्यधिक अन्तर है। यद्यपि दोनों में कुछ सादृश्यता है तथा कुछ परिणाम तक ये एक–दूसरे को आच्छादित करती है।" व्याख्या कीजिए।

उत्तर– आपराधिक दायित्व का सिद्धांत यह है कि जो व्यक्ति अपराध करता है वह उसकी जिम्मेदारी लेता है और उसे ही दोषी पाया जा सकता है। आम तौर पर, किसी भी अपराधी को किसी अन्य द्वारा किए गए गलत कार्य के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है। हालाँकि, इस नियम के कई अपवाद हैं और ऐसा ही एक अपवाद परोक्ष/रचनात्मक और संयुक्त दायित्व है। रचनात्मक दायित्व दायित्व का एक कानूनी सिद्धांत है जो अदालत को किसी व्यक्ति को दूसरों के कृत्यों या कृत्यों के परिणामों के लिए उत्तरदायी ठहराने का अधिकार देता है। भारतीय दंड संहिता, 1860 (बाद में इसे 'आईपीसी' के रूप में संदर्भित किया जाएगा) के तहत कई प्रावधान हैं, जिसमें किसी अन्य व्यक्ति द्वारा किए गए आपराधिक कृत्यों के लिए किसी व्यक्ति पर परोक्षध्रचनात्मक दायित्व तय किया जा सकता है। इनमें एक सामान्य उद्देश्य, सामान्य इरादे, उकसावे आदि के साथ किए गए कार्य शामिल हैं। हालाँकि,

यह लेख खुद को आईपीसी की धारा 34 और 149 तक ही सीमित रखेगा और दोनों धाराओं की परस्पर क्रिया पर गहराई से चर्चा करेगा।

आईपीसी की धारा 34 और इसका दायरा

आईपीसी की धारा 34 किसी आपराधिक कृत्य को करने में संयुक्त दायित्व के सिद्धांत पर अधिनियमित की गई है। यह धारा केवल साक्ष्य का नियम है और किसी विशिष्ट ठोस अपराध को स्थापित नहीं करती हैं 1870 में संशोधन के बाद आईपीसी की धारा 34 को इस प्रकार पढ़ा गया, ''जब एक आपराधिक कार्य सभी के सामान्य इरादे को आगे बढ़ाने के लिए कई व्यक्तियों द्वारा किया जाता है, तो ऐसा प्रत्येक व्यक्ति उस कार्य के लिए उसी तरह से उत्तरदायी होता है जैसे कि यह उसके द्वारा किया गया होष अकेला।''

आईपीसी की धारा 34 श्सामान्य इरादे से संबंधित है। हालाँकि आईपीसी में 'इरादा' शब्द को परिभाषित नहीं किया गया है, लेकिन यह आपराधिक दायित्व में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। आईपीसी की धारा 34 ऐसी स्थिति की जांच करती है, जहां अपराध के लिए एक विशेष आपराधिक इरादे या ज्ञान की आवश्यकता होती है और यह कई व्यक्तियों द्वारा किया जाता ळें प्रत्येक व्यक्ति जो इस तरह की समझ का हिस्सा बनता है, उसे समान तरीके से उत्तरदायी माना जाता है और आपराधिक कृत्य को सामान्य इरादे वाले सभी व्यक्तियों पर कानून की कल्पना द्वारा थोपा जाता है। इस प्रावधान को न्याय के दुरुपयोग को रोकने और उन विशिष्ट स्थितियों से निपटने के लिए शामिल किया गया है जहां सामान्य इरादे को आगे बढ़ाने के लिए किए गए व्यक्तिगत सदस्यों के कृत्यों के बीच सटीक अंतर करना असंभव हो सकता है। इस धारा के संचालन के लिए प्रारंभिक आवश्यकता को पूरा करने के लिए, एक प्रत्यक्ष अधिनियम की स्थापना कानून की आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह धारा तब आकर्षित होती है जब सभी के सामान्य इरादे को आगे बढ़ाने के लिए कई व्यक्तियों द्वारा एक आपराधिक कार्य किया जाता है। इसलिए, अभियोजन पक्ष को यह स्थापित करना है कि सभी संबंधित व्यक्तियों का एक ही इरादा था। इसका तात्पर्य यह भी है कि कोई भी व्यक्ति जो स्थिर खड़े रहने और प्रतीक्षा करने के अलावा कुछ नहीं करता, उसे भी उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। वाक्यांश 'सामान्य इरादा' का अर्थ है एक पूर्व–व्यवस्थित योजना और योजना के अनुसार मिलकर कार्य करना। इसमें एक सामान्य उद्देश्य को पूरा करने के लिए कई व्यक्तियों का दूसरे के साथ मिलकर कार्य करना भी शामिल है। यहां तक कि कई व्यक्तियों द्वारा अलग–अलग, समान या विविध कार्य करना, जब तक कि वे एक सामान्य इरादे को आगे बढ़ाने के लिए किए जाते हैं, ऐसे प्रत्येक व्यक्ति को उन सभी के परिणाम के लिए उत्तरदायी बना दिया जाता है, जैसे कि उसने उन्हें स्वयं किया हो। संपूर्ण आपराधिक कार्रवाई, चाहे वह प्रकट न हो या केवल एक गुप्त कार्य हो या केवल एक चूक हो जो एक अवैध चूक हो।आईपीसी की धारा 34 के तहत सामान्य इरादे को श्समान इरादेश या श्समान इरादेश या श्सामान्य उद्देश्यश से अलग अर्थ में समझा जाना चाहिए। समान इरादे रखने वाले व्यक्ति जो पूर्व निर्धारित योजना का परिणाम नहीं है, उन्हें आईपीसी की धारा 34 की सहायता से आपराधिक कृत्य के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता है।सामान्य इरादे का प्रत्यक्ष प्रमाण शायद ही कभी उपलब्ध होता है और इसलिए, ऐसे इरादे का अनुमान केवल मामले के सिद्ध तथ्यों और साबित परिस्थितियों से ही लगाया जा सकता है।

आईपीसी की धारा 141 के अनुसार,

पांच या अधिक व्यक्तियों की एक सभा को षैरकानूनी सभाष नामित किया जाता है, यदि उस सभा को बनाने वाले व्यक्तियों का सामान्य उद्देश्य उक्त धारा ख6, और आईपीसी की धारा 142 में परिकल्पित उद्देश्य को पूरा करना है। , जो कोई उन तथ्यों से अवगत होते हुए, जो किसी सभा को गैरकानूनी सभा बनाते हैं, जानबूझकर उस सभा में शामिल होता है, या उसमें बना रहता है, उसे गैरकानूनी सभा का सदस्य कहा जाता है।

आईपीसी की धारा 149 की आवश्यक सामग्री यह है कि (1) एक गैरकानूनी सभा हैय (2) विधानसभा का एक सदस्य अपराध करता हैय (3) किया गया अपराध– (4) विधानसभा के सामान्य उद्देश्य के अभियोजन में किया गया है, या (5) ऐसा है जिसके बारे में विधानसभा के सदस्यों को पता है कि उस उद्देश्य के अभियोजन में अपराध किए जाने की संभावना है। इस प्रकार, एक गैरकानूनी सभा का गठन करने के लिए वैधानिक आवश्यकता यह है कि वहां पांच या पांच से अधिक लोग होने चाहिए। ऐसे मामले में, प्रत्येक व्यक्ति जो अपराध के समय उसी सभा का सदस्य है, दंडनीय है। तथ्य यह है कि बड़ी संख्या में अभियुक्तों को बरी कर दिया गया है और शेष जिन्हें दोषी ठहराया गया है वे पांच से कम हैं, मूल अपराध के साथ पढ़ी जाने वाली धारा 149 के तहत दोषसिद्धि को रद्द नहीं किया जा सकता है यदि अदालत को पता चलता है कि ऐसे अन्य लोग भी हैं जिनकी पहचान नहीं की गई है या दोषी ठहराया गया लेकिन वे अपराध में भागीदार थे और साथ में वैधानिक संख्या का गठन किया। यदि, उदाहरण के लिए, केवल पांच ज्ञात व्यक्तियों पर किसी हमले में भाग लेने का आरोप है, लेकिन अदालतें पाती हैं कि उनमें से दो को गलत तरीके से फंसाया गया था, तो यह अनुमान लगाना या मान लेना काफी स्वाभाविक और तर्कसंगत होगा कि प्रतिभागियों की संख्या पांच से कम थी। दूसरी ओर, यदि न्यायालय यह मानता है कि हमलावर वास्तव में पाँच की संख्या में थे, लेकिन उनमें से दो की पहचान के बारे में संदेह हो सकता है और उनमें से दो को बरी कर देता है, तो अन्य को पहचान के बारे में संदेह का लाभ नहीं मिलेगा। जब तक अच्छे सबूतों और ठोस तर्कों के आधार पर यह पुख्ता निष्कर्ष नहीं मिल जाता कि प्रतिभागियों की संख्या पांच या उससे अधिक थी, तब तक दोनों

आरोपियों के खिलाफ कार्रवाई की जाएगी। 'सामान्य उद्देश्य के अभियोजन में' शब्दों की व्याख्या सख्ती से 'सामान्य उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए' के बराबर की जानी चाहिए। गैरकानूनी सभा के सामान्य उद्देश्य को सभा की प्रकृति, उनके द्वारा उपयोग किए गए हथियारों और से इकट्ठा किया जा सकता है। घटना स्थल पर या उससे पहले सभा का व्यवहार। यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से निकाला जाने वाला एक अनुमान है। किसी अपराध के घटित होने के समय, श्जानता थाश शब्द मन की स्थिति को दर्शाता है। श्संभावनाश शब्द का अर्थ कुछ मजबूत सबूत है कि ऐसा ज्ञान गैरकानूनी सभा को उपलब्ध था। धारा 149 के तहत, घटना की निरंतरता के दौरान किए गए अपराध के लिए अन्य सदस्यों का दायित्व इस तथ्य पर निर्भर करता है कि क्या अन्य सदस्यों को पहले से पता था कि वास्तव में किया गया अपराध सामान्य उद्देश्य के अभियोजन में किए जाने की संभावना है और ऐसा ज्ञान हो सकता है। कार्रवाई के स्थल पर या उससे पहले सभा की प्रकृति, हथियार या व्यवहार से उचित रूप से एकत्र किया जाना चाहिए। यदि इस तरह के ज्ञान को विधानसभा के अन्य सदस्यों के लिए उचित रूप से जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है तो घटना के दौरान किए गए अपराध के लिए उनका दायित्व उत्पन्न नहीं होता है।

सामान्य इरादे और सामान्य वस्तु के बीच समानता

धारा 34 और 149 की प्रयोज्यता के दायरे में बहुत अंतर है, हालांकि उनमें कुछ समानता है और कुछ हद तक ओवरलैपिंग भी है। सत्र न्यायालय और उच्च न्यायालय दोनों में 'सामान्य इरादे' और 'सामान्य उद्देश्य' के बीच कुछ भ्रम रहा है और यह सच है कि दोनों कभी–कभी ओवरलैप होते हैं लेकिन कानून में उनका उपयोग अलग–अलग अर्थों में किया जाता है और उन्हें अलग रखा जाना चाहिए। शब्बीर खान बनाम मोहम्मद के मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय। इस्माइल खान. पर आयोजित।

''जिस प्रकार समान उद्देश्य साझा करने वाले व्यक्तियों का संयोजन एक गैरकानूनी जमावड़े की विशेषताओं में से एक है, उसी प्रकार समान इरादे साझा करने वाले व्यक्तियों के संयोजन का अस्तित्व धारा 34 की विशेषताओं में से एक है। कुछ मायनों में दो धाराएं समान हैं और कुछ मामलों में वे ओवरलैप हो सकते हैं। लेकिन फिर भी, सामान्य उद्देश्य, जो धारा 34 का आधार है, उस सामान्य उद्देश्य से भिन्न है जो एक गैरकानूनी सभा की संरचना का आधार है।'' **दलीप सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य** में माननीय उच्चतम न्यायालय ने माना है कि आईपीसी की धारा 34 का सहारा नहीं लिया जा सकता क्योंकि अपीलकर्ताओं पर धारा 34 के लिए आवश्यक वैकल्पिक और सामान्य इरादे और आवश्यक सामान्य उद्देश्य में भी आरोप नहीं लगाया गया था। धारा 149 के अनुसार ये एक ही चीज होने से बहुत दूर हैं। **करनैल सिंह और अन्य में एस.सी. बनाम पंजाब राज्य** ने दलीप सिंह को खारिज कर दिया और राय दी कि सामान्य उद्देश्य और सामान्य इरादे की ओर ले जाने वाले तथ्य कभी–कभी ओवरलैप होते हैं और जब ऐसा मामला होता है तो अदालत यह सुनिश्चित करते हुए आरोपी को दोनों धाराओं में दोषी ठहरा सकती है कि अपराध की अन्य आवश्यकताएं पूरी हो गई हैं। . उक्त मामले में संक्षेप में सिद्ध तथ्य यह थे कि अपीलकर्ता, जिनकी गुरबख्श सिंह के साथ लंबे समय से दुश्मनी थी, उनके घर की छत पर चढ़ गए और आग लगा दी, जिसमें मृतक और श्री भोलान शामिल थे। सुप्रीम कोर्ट ने माना कि अगर धारा 149 के तहत घर को जलाना और गुरबख्श सिंह की मौत का कारण बनना उनका उद्देश्य था, तो धारा 34 के तहत भी यही उनका उद्देश्य था और इस मामले के तथ्यों पर उद्देश्य और उद्देश्य के बीच कोई अंतर नहीं हो सकता है। जिस इरादे से अपराध किये गये। **सुप्रीम कोर्ट की संविधान पीठ ने लछमन सिंह बनाम राज्य** के दृष्टिकोण का समर्थन किया है, जिसमें यह माना गया था कि जब दंड संहिता की धारा 302 के तहत धारा 149 के साथ पढ़ा जाता है और धारा 149 के तहत आरोप बरी हो जाता है तो धारा 149 के तहत आरोप गायब हो जाता है। कुछ आरोपियों के लिए, दंड संहिता की धारा 34 के साथ पढ़ी गई धारा 302 के तहत दोषसिद्धि अच्छी है, भले ही धारा 34 के साथ पढ़ी गई धारा 302 के तहत कोई अलग आरोप नहीं है, बशर्ते आरोपी पर मामले के तथ्यों के आधार पर आरोप लगाया जा सकता था। .

यह इस तथ्य के कारण है कि आईपीसी की धारा 34 और 149 कुछ हद तक ओवरलैप होती हैं, यह माना गया है कि जहां कुछ को बरी कर दिया जाता है, जिससे आरोपी व्यक्तियों की संख्या पांच से कम हो जाती है, इसके आधार पर दोषी ठहराना संभव है। मामले की विशेष परिस्थितियाँ और उसमें दिए गए साक्ष्य, मूल अपराध के लिए शेष अभियुक्त व्यक्तियों को धारा 34 आईपीसी के साथ पढ़ा जाता है। कभी–कभी, सामान्य इरादे और सामान्य उद्देश्य ओवरलैप हो सकते हैं, और ऐसे मामलों में सामान्य उद्देश्य सामान्य उद्देश्य में शामिल होता है और सबूत होने पर आईपीसी की धारा 149 के स्थान पर धारा 34 आईपीसी की सहायता से आरोपी को दोषी ठहराने पर कानून में कोई रोक नहीं है। यह दिखाने के लिए रिकॉर्ड पर कि ऐसे आरोपियों ने अपराध करने का एक ही इरादा साझा किया था और कोई स्पष्ट अन्याय नहीं हुआ है। **धनेश्वर महाकुड और अन्य बनाम उड़ीसा राज्य** के मामले में, अदालत ने निर्णयों के कैटेना पर भरोसा करने के बाद निष्कर्ष निकाला कि यदि रिकॉर्ड पर साक्ष्य सामान्य इरादे की उपस्थिति दिखाता है तो आईपीसी की धारा 34 की सहायता से आरोपी की सजा पर कोई प्रतिबंध नहीं है। अदालत ने गवाहों के सबूतों के साथ–साथ पोस्टमार्टम रिपोर्ट में बताई गई चोटों की जांच की और निष्कर्ष निकाला कि सामान्य इरादा मौजूद था और इस प्रकार कोई पूर्वाग्रह नहीं होगा।

प्रश्न न0 6 बलात्संग क्या है? क्या एक पति के बलात्संग का आरोप लगाया जा सकता है? विवेचना कीजिए। बलात्कार और जारकर्म में अन्तर लिखिए।

उत्तर– मानव शरीर की विभिन्न प्राकृतिक आवश्यकताओं में से एक अत्यन्त महत्वपूर्ण आवश्यकता है–सम्भोग। सम्भोग से तात्पर्य है किसी पुरूष का किसी स्त्री के साथ मैथुन करना, परन्तु इसका तात्पर्य नहीं है कि पुरूष किसी

स्त्री के साथ सम्भोग या मैथुन करने के लिए स्वतंत्र है, यदि ऐसा होता है तो मनुष्य एवं पशु में कोई अन्तर ही नहीं रह जाता है। सम्भोग की इस प्राकृतिक प्रवृत्ति पर नियंत्रण तथा पवित्रता बनाये रखने के लिए पत्नी पर पति के एकाधिपत्य को आवश्यक माना गया है। यदि कोई पुरूष अपनी पत्नी के अतिरिक्त किसी स्त्री के साथ स्वतंत्र सहमति के बिना सम्भोग करता है, तो वह बलात्कार के अपराध का दोषी माना जायेगा। बलात्कार की परिभाषा दण्ड संहिता की धारा 375 में दी गयी है–

बलात्संग की परिभाषा (Definition of Rape)–भारतीय दण्ड संहिता की धारा 375 के अनुसार, यदि कोई पुरूष–

(क) अपने लिंग को किसी भी हद तक, एक महिला के मुँह, योनि, मूत्रमार्ग या गुर्दा में अपना लिंग किसी सीमा तक प्रवेश करता है या उससे ऐसा अपने या किसी अन्य व्यक्ति के साथ करता है, या

(ख) किसी स्त्री की योनि , मूत्रमार्ग या गुर्दा में ऐसी कोई वस्तु या शरीर का कोई भाग, जो लिंग न हो किसी भी सीमा तक प्रवेश कराता है या उससे ऐसा अपने या किसी अनय व्यक्ति के साथ कराता है, या

(ग) किसी स्त्री के शरीर किसी भी हिस्से को इस प्रकार तोड़–मोड़ करता है कि उस महिला को उसके साथ या उससे ऐसा अपने या किसी अन्य व्यक्ति के साथ ऐसा करने के लिए कहता है, या

(घ) किसी स्त्री की योनि, गुर्दा, मूत्रमार्ग पर अपना मुँह लगाता है या उससे ऐसा अपने या किसी अन्य व्यक्ति के साथ कराता है,

ते उसके बारे में यह कहा जायेगा कि उसने बलात्संग किया, जहाँ ऐसा निम्नलिखित सात प्रकार की परिस्थितियों में किसी के अधीन किया जाता है–

(1) उस स्त्री की इच्छा के विरूद्ध,

(2) उस स्त्री की सम्मति के बिना,

(3) उस स्त्री की सम्मति से, जबकि उसकी सम्मति उसे या ऐसे किसी व्यक्ति, जिससे वह हितबद्ध है को मृत्यु या उपहति के भय में डालकर प्राप्त की हो,

(4) उस स्त्री की सम्मति से, जबकि वह पुरूष यह जानता है कि वह उस स्त्री की पति नहीं है और उस स्त्री ने सम्मति इसलिए दी है कि वह विश्वास करती है ि कवह वही पुरूष है जिससे वह विधिपूर्वक विवाहित है,

(5) उस स्त्री की सम्मति से, जबकि वह ऐसी सम्मति देने के समय, मन की विकृत चित्तता अथवा मत्तता अथवा किसी–किसी जड़िमाकारी या अस्वास्थ्यकारी पदार्थ के सेवन में के कारण उस कार्य की प्रकृति एवं परिणाम जान सकने में असमर्थ रही हो, जिस कार्य के लिए उसने सम्मति दी थी,

(6) उस स्त्री की सम्मति से अथवा बिना सम्मति के जब कि वह अठारह वर्ष से कम आयु की हो।

(7) उस स्त्री की सम्मति, जब वह स्त्री की सम्मति संसूचित करने में असमर्थ है।

स्पष्टीकरण– (1) इस धारा के प्रयोजन के लिये योनि के अन्तर्गत वृहत्त भभौष्ठ भी शामिल होगा।

(2) सम्मति से कोई स्पष्ट स्वैच्छिक सहमति अधिप्रेत है, जब स्त्री शब्दों, संकतों या किसी प्रकार की मौखिक या अमौखिक संसूचना द्वारा विनिर्दिष्ट लैंगिक कृत्य में शामिल होने की इच्छा व्यक्त करता है–

किसी ऐसी स्त्री के बारे में जो प्रवेशन के कृत्य का भौतिक रूप से विरोध नही, मात्र इस तथ्य के कारण यह नहीं समझा जायेगा कि उसने विनिर्दिष्ट लैगिंक क्रिया–कलाप के लिए सहमति प्रदान की है।

(क) पुरूष का अपनी पत्नी के साथ मैथुन बलात्कार नहीं होता जब कि कि उसकी पत्नी की आयु 15 वर्ष से कम न हो।

(ख) किसी चिकित्सीय प्रक्रिया का अन्तःप्रवेशन से बलात्संग गठित नहीं होता है।

आवश्यक तत्व– संहिता मकं दी गई परिभाषा के आधार पर बलात्कार के अपराध को गठित के लिए निम्नलिखित 2 तत्वों की आवश्यकता होती है–

(क) किसी पुरूष द्वारा किसी स्त्री के साथ लैंगिक सम्भोग किया गया हो,

(ख) ऐसा लैगिक सम्भोग निम्नलिखत 7 परिथितियों में से किसी एक में किया गया हो–

(1) उस स्त्री की इच्छा के विरूद्ध, (2) उस स्त्री की सम्मति के बिना, (3) भय मे डालकर प्राप्त सम्मति, (4) अपने का उस स्त्री की पति बताकर, (5) किसी विकृतिचित्त के साथ, (6) 16 वर्ष से कम आयु की स्त्री के साथ (7) जब वह स्त्री सम्मति संसूचित करने के असमर्थ हैं।

(1) किसी स्त्री के साथ लैंगिक सम्भोग किया गया हो– बलात्कार के लिए यह आवश्यक है कि किसी महिला के साथ लैंगिक सम्भोग किया गया हो भले ही योनि छिद्र फटा न हो क्योंकि विधि केवल लैंगिक प्रवेशन को ही बलात्कार के अपराध के लिए पर्याप्त मानती है। **पृथ्वी चन्द्र बनाम स्टेट आफ हिमाचल प्रदेश ए.आई.आर.1989 एस. सी. 702** के केस में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि योनिछिद्र रहते हुए भी बलात्कार का अपराध पूर्ण हो सकता है।

(2) उसकी इच्छा के विरूद्ध(धारा 375 क्लाज 1)– बलात्कार का अपराध वहीं हो सकता है जहाँ किसी महिला की इच्छा के विरूद्ध बलात्कार किया गया हो। यहाँ पर इच्छा से तात्पर्य उस महिला की इच्छा से है जो पूर्ण स्वसथचित्त हो और जिसने पुरूष सहवास की इच्छा व्यक्त की हो तथा ऐसी इच्छा सम्भोग से पहले व्यक्त की हो, सम्भोग के बाद नहीं।

(3) सम्मति के बिना (धारा 375 क्लाज 2)– महिला की सम्मति से किया गया सम्भोग बलात्कार के अपराध को गठित नहीं करता। बलात्कार का अपराध तभी गठित होता है जब वह बिना सम्मति के किया गया हो। सम्मति का

तात्पर्य स्वतन्त्र सम्मति से है और धोखखे से, कपट से, भूल से, मिथ्या व्यपदेशन से, प्राप्त सम्मति स्वतन्त्र सम्मति नहीं मानी जाती है। उदाहरणार्थ **आर. बनाम विलियम्स (1923) 1 के.बी. 340** प्रतिवादी किशोर शिकायतकर्ता का गायन शिक्षक था। उसने उसके साथ यौन संबंध बनाए और उसे बताया कि उसकी हरकतें उसकी सांसों को ठीक करने और उसके गायन में सुधार करने का एक तरीका था। लड़की यह मानते हुए सहमत हो गई कि उसे चिकित्सीय या सर्जिकल हस्तक्षेप का सामना करना पड़ रहा है। प्रतिवादी को बलात्कार का दोषी ठहराया गया था। उसने अपनी दोषसिद्धि के खिलाफ इस आधार पर अपील की कि उसने शिकायतकर्ता की सहमति दी थी।

परन्तु न्यायालय ने अभियुक्त के तर्क को अस्वीकार करते हुए दोषी ठहराया। बलात्कार के केस में यह साबित करने का भार अभियुक्त पर होता है कि सम्भोग स्त्री की सम्मति से किया गया था।(**फिट्टा बनाम हिमाचल राज्य, 1987 सीआर. एलजे 1379 एचपी)**

जहाँ अभियोक्त्री की चूड़ियाँ टूटी हो और प्रतिरोध करने में चोट आई हो वहाँ यह नहीं कहा सकता है कि अभियोक्त्री संभोग के लिए राजी थी (**जी.गागुंलू बनाम स्टेट आफ ए.पी. 1993 सीआर. एलजे 3773**)

उच्चतम न्यायालय ने **राजस्थान राज्य बनाम नूरेखान, 2001 द. नि. संग्रह 696** के मामलों में यह अभिनिर्धारित किया है कि बलात्कार के अपराध मे अभियोक्त्री के शरीर पर उपहति का अभाव तात्विक नहीं है यदि उसके कथन अभिपुष्टि चिकित्सीय साक्ष्य तथा अन्य गवाहों के साक्ष्य से होती है। इस मामले के तथ्य निम्नलिखित थे–

अभियोक्त्री की आयु 15 वर्ष थी। जब वह झोंपड़ी में अकेली थी और ट्यूबबेल पर कपड़े धो रही थी, उस समय अभियुक्त वहाँ आया। पहले उसने पानी माँगा उसके ककड़ी के छिलके छीलने के लिए चाकू मांगा। जब अभियोक्त्री चाकू देकर घूमी तो उसे अभियुक्त ने पकड़ लिया और बगल में दीवारों द्वारा घिरे हुए स्थान में ले गया वहाँ उसने उसे जमीन पर लेटने के लिए बाध्य किया उसके पैर को उसके सीने पर रखा और उसके मुँह को अपनी हथेली से बन्द किया, उसके लहँगें को ऊपर की ओर उठाया और इसके बाद उसके साथ बलपूर्वक सम्भोग किया। डाक्टरी परीक्षण में बलात्कार होना पाया गया। घटनास्थल पर टूटी हुई चूड़िया पाई गई तथा अभियोक्त्री के लहँगे पर वीर्य पाया गया। उच्च न्यायालय ने अभियुक्त को इस आधार पर दोषमुक्त कर दिया क्योंकि अभियोक्त्री के शरीर पर कोई उपहति नही थीं। परन्तु अपील में उच्चतम ने अभियुक्त को दोषसिद्ध पाया।

(4) भय में डालकर प्राप्त की गई सम्मति (धारा 375 क्लाज 3)– यदि किसी महिला को मृत्यु या उपहति के भय में डालकर सम्भोग की अनुमति प्राप्त की गई है तो ऐसी सम्मति को स्वतन्त्र सम्मति नही माना जाएगा और सम्भोगकर्ता बलात्कार का दोषी होगा। लेकिन जहाँ महिला ने अपने साथ सम्भोग करने की पैसे के लालच में अनुमति दी हो वहाँ यह तथ्य कि धनराशि देने का प्रस्ताव काल्पनिक था, सम्मति को दूषित नहीं करता (**मोतीराम, 1954 नाग 922**)

सहमति से सम्बन्धित नवीनतम वाद **राजू बनाम राज्य 1994 एस.सी.सी. 538** का है एक नर्स जो भाई की शादी में शामिल होने जा रही थी बस में दोनों अभियुक्तों से उसका परिचय हो गया दोनों ने नर्स का विश्वास जीत लिया। दोनों ने उसे विश्वास दिलाया कि उसे समय से पहुँचा देगें। वे देर रात हासन पहुँचे वहाँ लाज में ठहरे। कमरा एक बिस्तर वाला था। नर्स पलंग पर लेटी और दोनों अभियुक्त जमीन पर लेट गए। रात मे उसका रूमाल से मुँह बाँधकर चाकू दिखाकर दोनों ने बलात्कार किया। उच्चतम न्यायालय ने अभियुक्तों को बलात्कार का दोषी ठहराते हुए दण्डित किया। न्यायालय ने अपने निर्णय में कहा कि यह सही है कि नर्स सावधानी रखती तो ऐसी घटना न होती । उसे अनजान लोगों के साथ होटल में नहीं ठहरना चाहिए था। लेकिन महिला या युवती द्वारा अनजान लोगों पर विश्वास कर लेने से यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकताकि उसने अपने साथ सहवास की अनुमति दी थी।

(5) धोखे से प्राप्त सम्मति (धारा 375 क्लाज 4)– जब किसी ऐसी स्त्री की सम्मति से सम्भोग किया जाता है जिसक बारे में पुरूष यह जानता है कि उसका पति नहीं है परन्तु स्त्री ने उसे अपना पति समझकर सम्भोग की सम्मति दी है, बलात्कार होना कहा जाता है। इस प्रकार यदि कोई पुरूष अपने को किसी स्त्री का पति बताकर उसके साथ उसकी सम्मति से सम्भोग करता है। तो बलात्कार का अपराधी होगा। इसी प्रकार उच्चतम उद**य बनाम स्टेट आफ कर्नाटक, 2003 एआईआर एससीडब्लू 760** के मामले ट्रायल कोर्ट के साथ–साथ हाई कोर्ट ने भी एक साथ माना है कि यद्यपि पीड़िता ने अपीलकर्ता के साथ संभोग के लिए सहमति दी थी, लेकिन सहमति धोखाधड़ी और धोखे से प्राप्त की गई थी, क्योंकि अपीलकर्ता ने उसे इस वादे पर सहमति देने के लिए प्रेरित किया था कि वह उससे शादी करेगा। विशेष अनुमति द्वारा उनकी अपील आपराधिक अपील संख्या 428/1992 में बेंगलुरु में कर्नाटक उच्च न्यायालय के 20 अप्रैल, 1995 के फैसले और आदेश के खिलाफ निर्देशित है, जिसके तहत उच्च न्यायालय ने अपील को खारिज कर दिया और धारा के तहत अपीलकर्ता की सजा को बरकरार रखा। भारतीय दंड संहिता की धारा 376 में सजा को कम करके दो साल के कठोर कारावास और 5000/– रुपये के जुर्माने और डिफॉल्ट पर 6 महीने के लिए अतिरिक्त कठोर कारावास की सजा कम कर दी गई। इससे पहले सत्र न्यायाधीश, कारवार, जिनके समक्ष अपीलकर्ता पर सत्र मामला संख्या 16ध्90 में मुकदमा चलाया गया था, ने अपने फैसले और आदेश दिनांक 27 नवंबर, 1992 द्वारा अपीलकर्ता को भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के तहत सात साल के कठोर कारावास और जुर्माने की सजा सुनाई थी। 20,000/– रुपये का जुर्माना और डिफॉल्ट पर छह महीने के लिए अतिरिक्त कठोर कारावास भुगतना होगा। उन्होंने यह भी निर्देश दिया कि जुर्माना वसूल होने पर उसमें से 10,000ध्– रुपये की राशि अभियोजकध्शिकायतकर्ता को दी जाए। ट्रायल कोर्ट के साथ–साथ हाई कोर्ट ने भी एक

साथ माना है कि यद्यपि पीड़िता ने अपीलकर्ता के साथ संभोग के लिए सहमति दी थी, लेकिन सहमति धोखाधड़ी और धोखे से प्राप्त की गई थी, क्योंकि अपीलकर्ता ने उसे इस वादे पर सहमति देने के लिए प्रेरित किया था कि वह उससे शादी करेगा। यह ऐसी गलत धारणा के तहत था कि उसके बाद कई महीनों तक अभियोक्ता, जिसने आरोपी के साथ गहराई से प्यार करने का दावा किया था, तब तक उसके साथ यौन संबंध बनाती रही जब तक कि यह पता नहीं चला कि वह गर्भवती थी। जब अपीलकर्ता विवाह के लिए सहमत नहीं हुआ, तो उस स्तर पर, शिकायतकर्ता ने पुलिस स्टेशन में एक रिपोर्ट दर्ज कराई, जिसके अनुसार जांच की गई और अपीलकर्ता को सत्र न्यायाधीश, कारवार के समक्ष सुनवाई के लिए रखा गया।

(6) विकृतचित स्त्री की सम्मति से (धारा 375 क्लाज 5)– निम्नलिखित श्रेणी में से किसी श्रेणी में आने वाली महिला की सम्मति से किया गया सम्भोग बलात्कार का श्रेणी में आता है–

(क) विकृतचित है, (ख) मदोन्मत्त है, (ग) ऐसी महिला जिसको किसी पुरूष ने कोई ऐसी चीज खिला दी है जिससे वह कार्य की प्रकृति और परिणाम समझने में असमर्थ हो गई हो

16 वर्ष से कम आयु स्त्री की सम्मति से (धारा 375 क्लाज 6)– चूँकि 16 वर्ष से कम आयु की स्त्री की सम्मति का तर्क विसंगत होता है इसलिए यदि किसी ऐसी स्त्री की सम्मति से सम्भोग किया जाता है जिसकी उम्र 16 वर्ष से कम हो, तो वह बलात्कार होगा। नल्ला राम बाबू बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य 1992 सीआर एलजे 324 के मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि जहाँ 10 वर्षीय बालिका के साथ बलात्कार किया गया है वहाँ अभियुक्त के दायित्व की इस आधार पर कमी नहीं की जा सकती कि रिपोर्ट विलम्ब से लिखाई गई थी।

(7) संसूचित करने में असमर्थ स्त्री– यदि कोई स्त्री अपनी सम्मति को संसूचित करने में असमर्थ है तथा स्त्री के साथ कोई पुरूष लैंगिक सम्भोग करता है तो वह बलात्संग माना जायेगा।

इद्रिय प्रवेशन आवश्यक– धारा 375 का स्पष्टीकरण यह उपबन्धित करता है कि बलात्कार के अपराध में यह साबित करना आवश्यक है कि पुरूष के शिश्न का स्त्री की योनि में प्रवेशन हुआ हो, परन्तु यह सुनिश्चित करना आवश्यक नहीं है कि वह कितना हुआ है।

तुकाराम और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य मामले में सुप्रीम कोर्ट का फैसला। 1979 में सुप्रीम कोर्ट ने हाई कोर्ट की सजा को पलट दिया और आरोपियों को बरी कर दिया। सुप्रीम कोर्ट ने सत्र न्यायाधीश से सहमति जताई कि यह सहमति से यौन संबंध का मामला है।

बलात्कार के लिए पति का दायित्व– धारा 375 तथा 376 के मिले–जुले उपबन्धों के आधारा पर पति अपनी 15 वर्ष से अधिक आयु की पत्नी के साथ किया गया सम्भोग चाहे उसकी इच्छा एवं सहमति के बिना ही क्यों न हो बलात्कार नहीं होता, परन्तु यदि पत्नी की आयु 15 वर्ष से कम है तो पति द्वारा ऐसा सम्भोग किये जाने जो कि बलात्कार कोटि मे आता है तो वह दो वर्ष के कारावास से या जुर्माने से दण्डित किया जायेगा और पत्नी का आयु 12 वर्ष से कम है तो ऐसा सम्भोग सामान्य बलात्कार की श्रेणी में ही जाना जायेगा और वह उसी प्रकार से दण्डित किया जायेगा मानो उसने किसी अन्य स्त्री से बलात्कार किया है।

बलात्कार के लिए पति के दायित्व के सम्बन्ध में धारा 376 के खण्ड ए के अधीन यह उपबन्धित है कि यदि कोई व्यक्ति पृथक्करण की डिक्री के अधीन अथवा किसी रूढ़ि या प्रथा के अधीन उससे पृथक् रह रही पत्नी के साथ उसकी सम्मति के बिना सम्भोग करेगा वह अपनी पत्नी के साथ बलात्कार करने का दोषी माना जायेगा और वह वर्ष की अवधि के लिए तथा जुर्माने से दण्डित किया जायेगा।

बलात्मक और जारकर्म में अन्तर– बलात्कर और जारकर्म भारतीय दण्ड संहिता की धारा क्रमशः 375 एवं 497 में परिभाषित है, यद्यपि दोनों ही अपराध लैंगिक सम्भोग से सम्बन्धित है परन्तु इनमें प्रमुख अन्तर निम्नलिखित है–

अन्तर के आधार	बलात्कार(Rape)	जारकर्म(Adultery)
सम्मति सम्बन्धी	बलात्कार स्त्री की सम्मति से नहीं किया जाता है।	स्त्री की सम्मति से किया जाता है।
पति की सम्मति	पति की सम्मति का कोई महत्व नही होता।	पति सम्मति होने से आपराधिक दायित्व से उन्मुक्ति मिल जाती है।
विवाह सम्बन्धी	बलात्कार विवाहित, अविवाहित, विधवा किसी भी स्त्री के साथ किया जा सकता है।	जारकर्म केवल विवाहित के साथ किया जा सकता है।
अपनी पत्नी के साथ	बलात्कार अपनी पत्नी के साथ भी हो सकता है जब पत्नी की आयु 15 वर्ष से कम हो।	जारकर्म पति द्वारा अपनी पत्नी के साथ नही हो सकता।
शरीर एवं विवाह के विरूद्ध अपराध	बलात्कार शरीर के विरूद्ध अपराध है।	जारकर्म विवाह के विरूद्ध अपराध है।

पाड़ित पक्ष	बलात्कार में पीड़ित पक्ष स्त्री होती है।	जारकर्म में पीड़ित पक्ष होता है।

<u>प्रश्न न0 7–</u> दहेज मृत्यु के सम्बन्ध में धारा–304(बी) द्वारा विधायी परिवर्तन के उद्देश्यों की विवेचना कीजिए।

<u>उत्तर</u>– भारतीय दण्ड संहिता की धारा 304 (बी) के अधीन दहेज मृत्यु के सम्बन्ध में प्रावधान है। यह प्रावधन दहेज निषेध (संशोधन) 1986 की धारा 10 द्वारा भारततीय संहिता में निविष्ट किया गया है। यह धारा उपबन्धित करती है कि–

304 (बी) दहेज मृत्यु (304B Dowry death)– (1) ''जहाँ किसी स्त्री की मृत्यु किसी दाह या शारीरिक क्षति द्वारा कारित की जाती है या उसके विवाह के सात वर्ष के भीतर सामान्य परिस्थितियों अन्यथा हो जाती है और यह दर्शित किया जाता है कि उसकी मृत्यु के कुछ पूर्व उसके पति ने या उसके पति के किसी नातेदार ने, दहेज की किसी मांग के लिए, या उसके सम्बन्ध में, उसके साथ क्रूरता की थी या उसे तंग किया था वहाँ ऐसी मृत्यु को 'दहेज मृत्यु हो जाएगा, और पति या नातेदार उसकी मृत्यु करने वाला समझा जाएगा।''

स्पष्टीकरण– इस उपधारा के प्रयोजनों के लिए 'दहेज' का वही अर्थ है जो दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 (1961 का 28) की धारा 2 में है।

(2) ऐसे कई आर्थिक तत्व हैं जो दहेज प्रथा में योगदान करते हैं। दुल्हन की आर्थिक स्थिति और विरासत प्रणाली इसके दो उदाहरण हैं। कुछ लोगों का तर्क है कि विरासत के क्षेत्र में अर्थशास्त्र और खराब कानूनी व्यवस्थाएं महिलाओं को नुकसान में डालती हैं, विरासत पूरी तरह से बेटों के पास जाती है। परिणामस्वरूप, महिलाएं पूरी तरह से अपने पति और ससुराल वालों पर निर्भर हो जाती हैं। और जब वह शादी करती है तब भी पतियों को केवल दहेज मिलता है। 1956 में हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम के माध्यम से भारत में हिंदू परिवारों में बेटियों और बेटों को समान कानूनी दर्जा दिया गया। हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम सिख और जैन परिवारों पर भी लागू होता है। दहेज ने महिलाओं को उनके विवाह में संगमरमर के सामान के रूप में आर्थिक और वित्तीय स्थिरता प्रदान की, कम से कम सैद्धांतिक रूप से। इसने परिवार के भाग्य के विघटन को रोका और कई बार गौरव को सुरक्षा प्रदान की। इस प्रथा को मृत्यु पूर्व विरासत के रूप में भी नियोजित किया जा सकता है, क्योंकि एक बार जब एक महिला को नैतिक उपहार मिलते हैं, तो उसे पारिवारिक संपत्ति से हटाया जा सकता है। दहेज कई परिवारों के लिए एक महत्वपूर्ण वित्तीय कठिनाई बन गया है, और दूल्हे की मांग उन्हें दरिद्र बना सकती है। समय के साथ दहेज की मांग बढ़ी है। सन. 1984 में बड़े स्तर पर फैले दहेज की बुराई को नियन्त्रित एवं समाप्त करने के लिए विधि प्रभावशील बनाने हेतु संसद ने दहेज निषेध (संशोधन) अधिनियम, 1984 द्वारा दहेज निषेध संशोधन, 1961 कठोर संशोधन किया। अब इस अधिनियम के अन्तर्गत अपराधों को संज्ञेय बना दिया गया है और पुलिस अधिकारी वारन्ट के बिना ही दहेज की माँग करने वाले अभियुक्त को गिरफ्तार कर सकता है और अपराधी के विरूद्ध दाण्डिक कार्यवाही प्रारम्भ कर सकता है। इस अधिनियम दहेज की माँग करने हेतु दण्ड को और भी सख्त करने के साथ अन्य कई महत्वपूर्ण परिवर्तन जैसे परिवार न्यायालय को सथापना आदि किये गये है।

उपर्युक्त धारा के अवलोकन से स्पष्ट है कि किसी व्यक्ति को इसके अधीन सिद्धदोष घोषित करने के लिए निम्नवत् शर्तें को पूरा करना अवाश्यक है–

1. सम्बन्धित स्त्री की मृत्यु जलने से कारित हुई हो, या शारीरिक क्षति हुई हो, अथवा अस्वाभाविक कारण (असामान्य परिस्थितियों) से हुई हो (सामान्य परिथितियों से भिन्न किसी परिथिति में हुई हो),
2. ऐसी मृत्यु उस स्त्री के विवाह की तिथि से 7 वर्ष के भीतर हुई हो,
3. मृत्यु के पूर्व उस स्त्री को उसके पति अथवा पति के नातेदारों द्वारा दहेज की माँग को लेकर क्रूरता अथवा प्रतीड़न का शिकार बनना पड़ता हो, पति के नातेदारों से अभिप्राय यहाँ रक्त, विवाह अथवा दत्तक सम्बन्धों के द्वारा नातेदारी से है। स्टेट ऑफ पंजाब बनाम गुरमीत सिंह ए.आई.आर. 2014 एस.सी. 2561।
4. ऐसी निर्दयता या प्रतीड़न दहेज के लिए अथवा उससे सम्बन्धित रहा हो,
5. स्त्री के साथ उत्पीड़न या क्रूरता उसकी मृत्यु से ठीक पूर्व हुआ होना चाहिए।

धारा 304 ख भा.द.सं. खण्ड 1 के अनुसार स्त्री की मृत्यु को दहेज मृत्यु समझा जायेगा यदि यह कारित की जाती है–

1. दाह, शारीरिक क्षति कारित की जाती है या असामान्य परिस्थितियों में होती है।
2. दहेज हेतु किसी माँग या माँग के सम्बन्ध में पति या उसके किसी नातेदार द्वारा स्त्री के साथ क्रूरता या उत्पीड़न के परिणामस्वरूप।

जहाँ किसी स्त्री की मृत्यु उपरोक्त परिस्थितियों में कारित होती है, ऐसे में इसे पति तथा पति के नातेदारों द्वारा कारित दहेज मृत्यु समझा जायेगा तथा वे इस अपराध के दोषी समझे जायेंगे जब तक कि वे अन्यथा न प्रमाणित कर दें। कहने का अर्थ यह है कि अन्य अपराधों जिसमें अभियुक्त को निर्दोष माना जाता है, के विपरीत यहाँ अपनी निर्देषिता प्रमाणित करने का भार अभियुक्त पर होता है।

खण्ड (2) दहेज मृत्यु के मामले में न्यूनतम सात वर्षों के कारावास का दण्ड अधिरोपित करता है जिसे बढाकर आजीवन कारावास किया जा सकता है।

अपराधों की एक महत्वपूण्र विशेषता जिसने दहेज मृत्यु को प्रशस्त किया वे हैं कि वो निरन्तर घर की सबसे सुरक्षित सीमा में ही कारित की जाती है तथा अधिकांशतः अपराधी निकटतम नातेदार जैसे देवर, सास तथा ननद

जो एक ही छत के नीचे रहते है, होते हैं। यह तथ्य एक नयी विवाहित स्त्री का पति एवं उनके निकट नातेदारों द्वारा मिलकर शोषण किये जाने का उपफल है। पारिवारिक बन्धन इतने मजबूत होते है कि सत्य कभी बाहर नहीं आता है तथा न्यायालय में दोषी के विरूद्ध साक्ष्य देने के लिए कोई साक्षी नहीं होता है। परिसिथतियाँ सत्य के शीघ्र या आसानी से खोज किये जाने के प्रतिकूल होती है। औपचारिक अन्तर्वस्तु की दृष्टि से दाण्डिक पर्याप्त हो सकते हैं परन्तु उसको सफलतापूर्वक लागू करना अत्यधिक कठिनाई का विषय है। यही कारण है कि दोषी व्यक्ति आजाद घूमते हैं और बहुत कम ही उनको दण्ड मिलता है।

दण्ड संहिता के अधीन दहेज से सम्बन्धित अपराध (Dowry related crimes under penal code)– संक्षेप में ऐसी चार स्थितियाँ है जहाँ एक विवाहिता स्त्री के साथ क्रूरतापूर्ण व्यवहार एवं उत्पीड़न किया जाता है जिससे यह अपराध कारित होता है, अर्थात्

(1) **पति या नातेदार द्वारा स्त्री के साथ क्रूरतापूर्ण व्यवहार धारा 498 (ए) भा.द.सं.**– अब उसका पति या पति के परिवार के सदस्य स्त्री के साथ क्रूरता या उत्पीड़न करते है।

(2) **दहेज, मृत्यु–धारा 304(बी), भा.द.सं.**– जहाँ किसी स्त्री की मृत्यु विवाह से सात वर्षों के भीतर दहेज की किसी माँग हेतु या के सम्बन्ध में पति या उसके नातेदारों द्वारा की गयी क्रूरता या उत्पीड़न के ठीक बाद किसी दाह या शारीरिक क्षति या असामान्य परिस्थितियों में होती है तो ऐसे पति या नातेदार को उसकी मृत्यु कारित करने वाला समझा जायेगा और उसे 304 (बी) भ.द.सं. के अधीन दहेज मृत्यु कारित करने हेतु दण्डित किया जायेगा।

(3) **जानबूझकर स्त्री की हत्या कारित करना धारा 302, भा.द.सं.**– यदि कोई व्यक्ति जानबूझकर किसी स्त्री की मृत्यु कारित करता है तो वह हत्या की कोटि में आयेगा और धारा 302 भा.द.सं. के अधीन दण्डित किया जायेगा।

(4) **स्त्री को आत्महत्या हेतु दुष्प्रेरण धारा 306, भा.द.सं.**– यदि पति या उसका कोई नातेदार ऐसी स्थिति उत्पन्न करता है जिसे वह जानता है कि स्त्री को आत्महत्या करने के हेतु दुष्प्रेरित करेगा और वह वास्तव में विवाह से सात वर्षों की अवधि के भीतर ऐसा करती है तो वह केस धारा 306 भा.द.सं. (आत्महत्या हेतु दुष्प्रेरणा) के क्षेत्र में आयेगा।

दहेज–मृत्यु– सन् 1986 में भारतीय संहिता निषेध (संशोधन) अधिनियम, 1986 (1986 का 43) जो 19 नवम्बर, 1986 से प्रवृत्त हुआ, द्वारा धारा 304(बी) भा.द.सं. के अधीन प्रावधान दण्ड संहिता की धारा 498(ए) के अधीन उपबन्धित प्रावधान की तुलना में अधिक सख्त है। यह अपराध संज्ञेय,गैर–जमानतीय तथा सेशन्य न्यायालय द्वारा विचारणीय है।

(1) **सुरिन्दर सिंह बनाम स्टेट ऑफ हरियाणा ए.आई.आर. 2014 एस.सी. 817** सुप्रीम कोर्ट के मामले में सुरिंदर सिंह बनाम हरियाणा राज्य, एआईआर 2014 एससी 817 में रिपोर्ट किया गया, अदालत ने आंशिक रूप से अपील की अनुमति दी और अपीलकर्ता की कारावास की सजा को सात से घटाकर पांच साल कर दिया। अदालत ने अपीलकर्ता को शेष सजा काटने के लिए छह सप्ताह के भीतर हिरासत में आत्मसमर्पण करने का भी निर्देश दिया।

(2) **पवन कुमार बनाम हरियाणा राज्य ए.आई.आर. 1998 एस.सी. 958** पवन कुमार बनाम हरियाणा राज्य एक मामला था जिसकी सुनवाई भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने 9 फरवरी, 1998 को की थी और इसकी रिपोर्ट एस.सी. 958 में दर्ज की गई थी। इस मामले में निम्नलिखित तथ्य शामिल थे–

उर्मिल की मानसिक यातना और पीड़ा के कारण उसने आत्महत्या कर ली अदालत ने पाया कि झगड़ा, अन्य सबूतों के साथ, क्रूरता और उत्पीड़न का गठन करता है अपीलकर्ता संख्या 2 और 3 उर्मिल के साथ क्रूरता या उत्पीड़न के लिए जिम्मेदार नहीं थे साक्ष्य केवल पति तक ही सीमित था, अपीलकर्ता क्रमांक 2 और 3 के विरुद्ध नहीं इस मामले में मुख्य मुद्दा यह है कि क्या वैष्णो देवी का विवाह पवन कुमार से हुआ था या नहीं दूसरा मुद्दा यह है कि क्या पवन कुमार और उसके माता–पिता ने दहेज की मांग के कारण मृतिका के साथ क्रूरता और उत्पीड़न किया था।

(3) **रविन्द्र त्रिम्बक बनाम महाराष्ट्र राज्य 1996 (4) एस.सी.सी. 148** जिसकी सुनवाई भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने 23 फरवरी, 1996 को की थी। इस मामले में विजया की हत्या और यह सवाल शामिल था कि क्या मौत की सजा दी जानी चाहिए। आरोपी पति पर अपनी पत्नी विजया की हत्या के लिए आईपीसी की धारा 302 के साथ पठित धारा 120 बी के तहत ट्रायल कोर्ट द्वारा आरोप लगाया गया और दोषी ठहराया गया। सुप्रीम कोर्ट ने मौत की सजा को आजीवन कारावास में बदल दिया और आगे आदेश दिया कि धारा 201 के तहत दी गई सजा एक साथ नहीं बल्कि लगातार चलेगी। मामला भारतीय दंड संहिता की निम्नलिखित धाराओं का हवाला देता है– धारा 34, धारा 201, धारा 498ए, और धारा 316।

(4) **राम बदन बनाम स्टेट आफ बिहार ए.आई.आर. 2006 एस.सी. 2855** मे, शीर्ष अदालत ने कहा कि : जब साक्ष्यों से पता चला कि दहेज की लगातार मांग की गई थी और उक्त राशि पूरी न करने के कारण उत्पीड़न, अपमान हुआ था। मृतक को लगातार पीटना, जहर खिलाना, साक्ष्य अधिनियम की धारा 113–बी के तहत अभियोग लगेगा।

(5) **तीरथ कुमारी बनाम स्टेट ऑफ हरियाणा ए.आई.आर 2005 एस.सी. 4429** इस मामले में छह आरोपी शामिल थे, जिनमें ।1 की मां तीरथ कुमार उर्फ राज रानी और ।2 की बेटी आशा रानी शामिल थीं। मामले में निम्नलिखित सामग्रियां शामिल थीं– एक महिला की शादी के सात साल के भीतर मौतं मृत्यु जलने, शारीरिक चोट के कारण हुई, या सामान्य परिस्थितियों के अलावा किसी अन्य कारण से हुईं महिला की मृत्यु से कुछ समय पहले उसके पति या किसी रिश्तेदार द्वारा क्रूरता या उत्पीड़न किया गया था क्रूरता या उत्पीड़न दहेज की मांग के संबंध में था।

प्रश्न न0 8– डकैती किसे कहते है? इसके आवश्यक तत्व क्या है? डकैती और लूट में अन्तर बताइए।

उत्तर– डकैती लूट का ही एक गम्भीरतम स्वरूप है सिर्फ एक तत्व ही डकैती में ऐसा जो उसे लूट से भिन्न करता है वह यह कि अपराध करने वाले आपराधिक की संख्या। अतः जब पाँच या पाँच से अधिक व्यक्ति संयुक्त रूप से करते है या लूट का प्रयत्न करते है, तो वह डकैती करते है जैसा कि धारा 391 डकैती को परिभाषित करती है।

धारा 391 डकैती– जबकि पाँच या पाँच से अधिक संयुक्त होकर लूट करते है या करने का प्रयत्न करते है या जहाँ कि वे व्यक्ति, जो संयुक्त होकर लूट करते है, या करने का प्रयत्न करते है और वे व्यक्ति जो उपस्थिति है और ऐसे लूट के किये जाने या ऐसे प्रयत्न में मदद करते है, कुल मिलाकर पाँच या अधिक है, तब वह व्यक्ति जो इस प्रकार लूट करता है, या उसका प्रयत्न करता है या उसमे मदद करता है, कहा जाता है कि वह डकैती करता है। यह धारा डकैती को परिभाषित करती है लूट एवं डकैती के बीच अपराधियों की संख्या के सिवाय कोई अन्तर नही है। लूट ही डकैती है, यदि लूट करने वाले व्यक्तियों की संख्या पाँच या अधिक है। डकैती के अपराध में लूट कारित करने या कारित करने करने के प्रयत्न में पाँच या अधिक व्यक्तियों का सहयोग सम्मिलित है। यह आवश्यक है कि सभी व्यक्ति लूट कारित करने के सामान्य आशय में भागीदर हो।

धारा 391 यह स्पष्ट करती है कि किसी कृत्य को करने के लिए डकैती कारित हुई यह आवश्यक है कि पाँच या व्यक्ति संयुक्त रूप से लूट कारित करे या कारित करने का प्रयत्न करें। यदि कोई लूट कारित की गई थी तो डकैतों के पास लूट का माल होना चाहिए, लेकिन यदि मामला लूट कारित करने का प्रयत्न का था तो डकैतों के पास लूट का माल होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठाता है।

एम्परर बनाम रामचन्द्र 1933 आई.एल.आर. 55 आल 117 के मामले में अभिनिर्धारित किया गया कि डकैती के मामले में इन परिस्थितियों की बड़ी संख्या में डकैतों को देखकर घर में रहने वालों ने कोई विरोध नहीं प्रकट किया एवं किसी बल या हिंसा की आवश्यकता नहीं पड़ता है या डकैतों द्वारा प्रयोग नहीं किया जाता है, से डकैती चोरी नहीं बन जाती है।

लक्ष्मन राम बनाम स्टेट ऑफ उड़िसा ए.आई.आर. 1985 एस.सी. 486 के वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया अभियुक्त व्यक्तियों, जिन्होने एक बाद एक शिकायतकर्ता के घरों में डकैती कारित किया था, को डकैती कारित करने हेतु धारा 395 के अधीन दोषी होना धारित किया गया था।

डकैती के आवश्यक तत्व (Essential Ingrediens of Dacoity)–

(1) अभियुक्त लूट कारित करता है या कारित करने का प्रयत्न करता है,

(2) लूट कारित करने वाले या कारित करने का प्रयत्न करने वाले व्यक्तियों एवं उपस्थित तथा सहायता करने वाले व्यक्तियों की संख्या पाँच से कम नहीं होनी चाहिए,

(3) ऐसे सभी व्यक्ति संयुक्त रूप से कार्य करेगें।

संयुक्त रूप से का अर्थ अपराध कारित करने के कृत्य में भाग लेने वाले पाँच या अधिक व्यक्तियों का संगठित एवं संयुक्त कार्य। दूसरे शब्दों में , पाँच या अधिक व्यक्तियों को अपराध कारित करने में सम्मिलित होना चाहिये तथा लूट कारित करना चाहिए या कारित करने का प्रयत्न करना चाहिये।

घटना के तुरन्त बाद अभियुक्त द्वारा बताये जाने पर चुराई गयी सम्पत्ति के बरामद होने के मामले में अभियुक्त न केवल धारा 412 भा.द.सं. के अधीन ऐसी सम्पत्ति को बेईमानी से प्राप्त करने जो डकैती करने में चुरायी गयी है, हेतु बल्कि धारा 491 भा.द.सं. के साथ धरा 114 साक्ष्य अधिनियम के अधीन भी दोषसिद्व किये जाने योग्य है। सभी अभियुक्त व्यक्तियों ने शिकायतकर्ताओं के घरों में एक के बाद एक डकैती कारित किया और लूटा और विभिन्न प्रकार की सम्पत्ति जैसे घड़ियाँ, गहने आदि ले गये। धारित हुआ कि अभियुक्त इस धारा के भारतीय दण्ड संहिता की धारा 395 डकैती के लिए दण्ड तथा डकैती करने वालों को आजीवन कारावास या दस वर्ष का कठोर कारावास या जुर्माना हो सकता है। भारतीय दण्ड संहिता की धारा 396 में हत्या सहित डकैती के अन्तर्गत यदि कोई व्यक्ति इस प्रकार डकैती करने में हत्या कर देगा, तो उन व्यक्तियों में प्रत्येक को मृत्युदण्ड या आजीवन कारावास से, या कठिन कारावास से, दण्डित किया जायेगा। धारा 399 डकैती की तैयारी को भी दण्डनीय बनाती है।

बीरबल चौधरी बनाम स्टेट ऑफ बिहार, ए.आई.आर. 2017 एस.सी.4866 के मामले में 5 से अधिक अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा पीड़ित व्यक्ति का व्यपहरण किया गया, उसे 52 दिनों तक परिरूद्ध रखा गया तथा उसका धन आदि लूट लिया। इसे डकैती माना गया।

पाँच के कम व्यक्तियों की दोषसिद्ध– यदि डकैती करने वाले केवल पाँच व्यक्ति ही है और इन पाँच में से केवल तीन ही दण्डित होते है तथा शेष दो को निर्मुक्त कर दिया जाता है, तो तीन की दोषसिद्ध नहीं की जा सकती है क्योंकि डकैती का अपराध अपराध पाँच से कम व्यक्ति नहीं कर सकते है।

	लूट (धारा 390)	डकैती (धारा 391)
1	लूट, चोरी अथवा उद्दानन का गम्भीर रूप में होता है।	डकैती लूट का ही एक रूप है।
2	लूट के अन्तर्गत व्यक्तियों की संख्या निश्चित नहीं होती, एक व्यक्ति लूट कर सकता है।	डकैती के अपराध्र के लिए पाँच अथवा पाँच से अधिक व्यक्तियों का होना अनिवार्य है।

3	लूट के अपराध में किसी व्यक्ति की सम्पति के बिना ली जाती है।	डकैती के अपराध में सहमति दोषपूर्ण ढंग से प्राप्त की जाती है।
4	लूट के लिए चोरी या उद्दापन का अरापध होना आवश्यक हैं।	डकैती के लिए प्रमुख तत्व लूट करना अथवा करने का प्रयत्न करना है।
5	लूट के अपराध एवं उसके प्रयत्न को अलग–अलग दण्डनीय बनाया गया है	डकैती के अपराध में उसके प्रयत्न को भी सामन रूप से दण्डित किया जाता है।
6	लूट का अपराध चारों अवस्थओं में दण्डनीय नहीं होता ।	डकैती की चारों अवस्थाएँ दण्डनीय है, डकैती के प्रयोजन से एकत्रित होना, डकैती की तैयारी करना, डकैती का प्रयत्न करना तथा डकैती के अपराध का पूर्ण होना।

प्रश्न न0 9– क्या आत्महत्या का प्रयत्न भारत में अपराध है? क्या आप इस अपराध को बनाये रखने के पक्ष में है? कारण बताइए।

उत्तर– भारत में आत्महत्या का प्रयत्न भारतीय दण्ड संहिता को धारा 309 के अन्तर्गत एक दण्डनीय अपराध है।

धारा 309 आत्महत्या करने का प्रयत्न (Attempt to commit suicide) ''जो कोई आत्महत्या करने का प्रयत्न करेगा एवं उस अपराध के करने के लिए कोई कार्य करेगा, वह सादा कारावास से, जिसकी अवधि 'एक' वर्ष तक की हो सकेगी या जुर्माने से या दोनों से दण्डित किया जाएगा।''

टिप्पणी

(1) आत्महत्या का प्रयत्न (309 भा.द. संहिता)– आत्महत्या स्वयं संहिता के अधीन कोई अपराध नहीं है। यह केवल आत्महत्या करने का प्रयत्न है तो इस धारा के अधीन दण्डनीय है। दूसरों शब्दों में संहिता तभी लागू होती है जब एक व्यक्ति आत्महत्या कारित करने में असफल होता है। यदि वह व्यक्ति सफल होता है, तो कोई अपराध नहीं होगा जिसे विधि के दायरे में लाया जा सके। यह धारा इस सिद्धान्त पर आधारित है कि किसी व्यक्ति का जीवन न केवल उसके स्वयं के लिये वरन् उसके सगे–सम्बन्धियों, राज्य तथा समाज के लिए भी मूल्यांकन है, जो उसकी सुरक्षा करता है। राज्य इस बाध्यता के अधीन है कि वह व्यक्तियों को उसी प्रकार स्वयं का जीवन समाप्त करने से रोके जिस प्रकार वह उन्हें दूसरों का जीवन समाप्त करने से रोकता है।

धारा 309, भा.द.सं. के अधीन प्रयत्न में कम से कम आत्महत्या करने की ओर एक कृत्य जैसे डूबना, या विष खाना या स्वयं को गोली मार लेना अन्तर्निहित है। यदि 'क' आत्महत्या करने के उद्देश्य से स्वयं को कुएँ में धकेल देता है, और यदि उसे बचा लिया जाता है या उसका प्रयत्न असफल होता है, तो वह इस धारा के अधीन दण्डनीय प्रयत्न का दोषी है।

(2) प्रयत्न आशयित होना चाहिए– आत्महत्या का सार आशयित स्वयं के जीवन का विनाश है। अतः यह शक्ति गलती से या मत्तता की स्थिति में अथवा उसे पकड़ने वालों से बचने के लिए, विष अधिक मात्रा ले लेता है तो वह इस धारा के अधीन दोषी नहीं है। इसी प्रकार, कोई व्यक्ति पारिवारिक विवाद, व्याकुलता, किसी प्रिय सम्बन्धी की हानि के कारण या ऐसे ही किसी समान कारण से स्वयं को जीवित रखने की इच्छा को जीत लेता है और अपना जीवन समाप्त करने का निश्चय करता है तो उसे आत्महत्या के प्रयास के लिए दायी नहीं माना जाना चाहिए। ऐसे मामले में दुर्भाग्यशाली व्यक्ति दण्ड के बजाए कृपा, सहानुभूति और अनुकम्पा के योग्य है।

(3) क्या भूख हड़ताल आत्महत्या का प्रयत्न है?– भूख हड़ताल जिसे समय–समय पर हड़ताल करने वालों की माँगों को पूरा करने के लिए किया जाता है, इस सम्बन्ध में कुछ कठिनाई उत्पन्न करती है। ये मामले यह निर्धारित करने में कि क्या भूख हड़ताल करने वाले का आशय स्वयं को मारने का है या उसकी माँगों को पूरा करने के लिए प्राधिकारियों को विवश करने का है, कठिनाई उत्पन्न करता है।

यदि इसका उत्तर सकारात्मक है अर्थात् स्वयं को मारने के लिए, तो अभियुक्त आत्महत्या के प्रयत्न के लिए दायी है और यदि उत्तर नकारात्मक है तो वह धारा 309, भा.द.सं. के अधीन नहीं आता।

राम सुन्दर दुबे राज्य ए.आई.आर. 1962 इला. 262 सवाल यह है कि क्या धारा 309, आई.पी.सी. के तहत कोई अपराध बनाया गया है। भूख से आत्महत्या के बारे में अजीब कठिनाई यह है कि यह एक लंबी चलने वाली प्रक्रिया है, जिसे किसी भी चरण में रोका या छोड़ा जा सकता है (शायद आखिरी को छोड़कर)। जब तक अभियुक्त द्वारा मौत तक अनशन करने के अपने इरादे के बारे में कोई स्पष्ट घोषणा नहीं की जाती है, तब तक यह सुनिश्चित करना मुश्किल है कि वह वास्तव में कड़वे अंत तक अनशन जारी रखने का इरादा रखता है। और भले ही शुरुआत में ऐसा कोई इरादा हो, किसी को हमेशा इस संभावना का ध्यान रखना होगा कि आरोपी अपना मन बदल ले और खतरनाक होने से पहले अपना उपवास तोड़ दे। मैं यह मानने के लिए तैयार हूं कि यदि कोई व्यक्ति खुले तौर पर घोषणा करता है कि वह मृत्यु तक उपवास करेगा और तब तक सभी पोषण से इनकार कर देगा जब तक कि वह स्थिति न आ जाए जब मृत्यु का आसन्न खतरा हो, तो उसे आत्महत्या के प्रयास के अपराध का दोषी ठहराया जा

सकता है। लेकिन वर्तमान मामले में सबूत इससे कम हैं और आरोप को साबित करने के लिए शायद ही पर्याप्त कहा जा सकता है। प्रथम दृष्टया, यह स्पष्ट नहीं है कि क्या अभियुक्त का इरादा आमरण अनशन करने का था या उसने सीमित अवधि के लिए अनशन करने का निर्णय लिया था। पैम्फलेट पूर्व. खा–1 जो उन्होंने 17–2–1960 को जारी किया था, उसमें केवल इतना कहा गया था कि यदि अधिकारियों ने 26–2–1960 तक उनकी शिकायतों का निवारण नहीं किया तो वह 27–2–1960 को भूख हड़ताल शुरू कर देंगेय लेकिन इस बात का कोई संकेत नहीं था कि अनशन कब तक जारी रहेगा। संभवतः अभियुक्त को विश्वास था कि जनता की राय उसके पक्ष में दबाव डालेगी और अधिकारी उसकी शिकायतों को दूर करने के लिए बाध्य होंगे, इससे पहले कि वह भुखमरी का शिकार हो जाए। वैकल्पिक रूप से यह कल्पना की जा सकती है कि उन्होंने केवल एक सीमित अवधि के लिए उपवास करने का निर्णय लिया था, भले ही उन्होंने इस बारे में कोई सार्वजनिक घोषणा नहीं की कि वह अवधि क्या होगी। अभियुक्त का अनशन पर अड़े रहने और अपनी मृत्यु कारित करने का इरादा किसी भी तरह से साबित नहीं हुआ है।

(4) आत्महत्या के मामलों में खतरनाक वृद्धि– राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के अनुसार, 2020 से 2021 तक भारत की आत्महत्या दर में 7.2ः की वृद्धि हुई, जिसमें कुल 164,033 मौतें हुईं। 2022 में, भारत में प्रति 100,000 लोगों पर आत्महत्या की दर 12.4 थी, जो 1967 के बाद से सबसे अधिक दर है, और देश में दुनिया में सबसे अधिक आत्महत्याएं दर्ज की गईं। 2022 में, भारत में आत्महत्या से 170,000 से अधिक मौतें दर्ज की गईं, जिनमें से अधिकांश मामले तमिलनाडु और राजस्थान में थे। भारतीय दंड संहिता (आईपीसी) की धारा 309 आत्महत्या के प्रयास को एक आपराधिक अपराध के रूप में वर्गीकृत करती है, जिसके लिए एक वर्ष तक की जेल, जुर्माना या दोनों की सजा हो सकती है। हालाँकि, मानसिक स्वास्थ्य देखभाल अधिनियम 2017 (एमएचसीए) सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए आत्महत्या के प्रयास को अपराध की श्रेणी से हटा देता है। आईपीसी की धारा 306 आत्महत्या के लिए उकसाने से संबंधित है, जिसमें 10 साल तक की जेल और जुर्माना हो सकता है। भारतीय दंड संहिता (आईपीसी) की धारा 309 स्पष्ट रूप से इस प्रकार कहती हैरू ''जो कोई भी आत्महत्या करने का प्रयास करता है और इस तरह के अपराध को अंजाम देने के लिए कोई कार्य करता है, उसे एक अवधि के लिए साधारण कारावास से दंडित किया जाएगा जिसे एक वर्ष तक बढ़ाया जा सकता है या जुर्माना लगाया जाएगा अथवा दोनों।''

(5) धारा 309, भा.द.सं., मरने का अधिकार बनाम न मरने का अधिकार– एक संवैधानिक दुविधा (कठिन प्रतिपादन)– धारा 309, भा.द.सं. के अधीन किसी व्यक्ति को आत्महत्या करने के प्रयत्न में असफल होने पर दण्डित करने की राज्य की शक्ति पद न केवल नैतिकता के आधार पर बल्कि उक्त उपबन्ध की संवैधानिकता के आधार पर भी प्रश्न उठाया जाता है।

मारूति श्रीपति दूबल– 1987 में मारूति श्रीपति दूबल बनाम महाराष्ट्र राज्य (1987) सीआर .एलजे. 743 1987 के मामले में मारुति श्रीपति दुबल बनाम महाराष्ट्र राज्य (1987) सीआर.एल.जे. 743, बॉम्बे हाई कोर्ट ने फैसला सुनाया कि भारतीय दंड संहिता (आईपीसी) की धारा 309 असंवैधानिक है और इसे रद्द किया जाना चाहिए। अदालत ने माना कि धारा 309 भारत के संविधान के अनुच्छेद 14, 19 और 21 का उल्लंघन करती है। याचिकाकर्ता, एक पुलिस कांस्टेबल, जिसे एक सड़क दुर्घटना के बाद सिजोफ्रेनिया हो गया था, पर खुद पर मिट्टी का तेल डालने और माचिस जलाने की कोशिश करने के बाद आत्महत्या का प्रयास करने के लिए धारा 309 के तहत मामला दर्ज किया गया था। अदालत के तर्क थे कि–

(1) आत्महत्या का प्रयास अपराध नहीं होना चाहिए।

(2) यह धारा आत्महत्या के प्रयास के सभी मामलों को समान रूप से मानती है और उनके लिए मनमाने ढंग से सजा निर्धारित करती है।

(3) आत्महत्या को अपराध मानने की धारणा और निर्धारित सजा दोनों ही बर्बर और तर्कहीन थे।

पी.रथिनम– 1994 में उच्चतम न्यायतम के न्यायमूर्ति, आर.एस.सहाय और बी.एल. हंसरिया से मिलकर बनी डिवीजन बैंच ने पी.रथिनम/नागभूषण बनाम भारत संघ ए.आई.आर. 1994 एस.सी. 1844 उपरोक्त के बावजूद, हेमलेट की ष्होने या न होनेष की दुविधा संकट, पीड़ा और पीड़ा के समय कई आत्माओं का सामना करती है, जब पूछा गया प्रश्न ष्मरना है या नहीं मरना हैष। यदि निर्णय मरने का है और वही उसके फल पर लागू होता है जिसके परिणामस्वरूप मृत्यु होती है, तो मामले का अंत हो जाता है। मृतक को पीड़ा, दर्द और पीड़ा से छुटकारा मिल जाता है और हमारे कानून के अनुसार कोई भी बुरा परिणाम सामने नहीं आता है। लेकिन यदि संबंधित व्यक्ति दुर्भाग्यवश बच नहीं पाता है, तो आत्महत्या का प्रयास करने पर उसे सलाखों के पीछे जाना पड़ सकता है, क्योंकि यह हमारे दंड संहिता की धारा 309 के तहत दंडनीय है। मौजूदा दो याचिकाओं में यह तर्क देकर धारा 309 की वैधता पर सवाल उठाया गया है कि यह संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 का उल्लंघन है और धारा को शून्य घोषित करने की प्रार्थना की गई है। 1987 की रिट याचिका (सीआरएल) संख्या 419 में अतिरिक्त प्रार्थना धारा के तहत याचिकाकर्ता (नागभूषण) के खिलाफ शुरू की गई कार्यवाही को रद्द करने की है। 309. इस देश की न्यायपालिका को उपरोक्त पहलू से निपटने का अवसर मिलाय और हमारे पास उपरोक्त प्रश्न पर देश के तीन उच्च न्यायालयों, अर्थात् दिल्ली, बॉम्बे और आंध्र प्रदेश के तीन सूचित निर्णय हैं। दिल्ली उच्च न्यायालय का एक असूचित निर्णय भी है। इससे पहले कि हम इस मुद्दे पर अपना दिमाग लगाएं, यह नोट करना उचित और लाभदायक होगा कि उपरोक्त तीन उच्च न्यायालयों ने इस संबंध में क्या राय दी है। पी. रथिनम और नागभूषण पटनायक ने भारतीय

दंड संहिता की धारा 309 की संवैधानिक वैधता को चुनौती देते हुए याचिका दायर की थी। धारा 309 आत्महत्या का प्रयास करने वाले किसी भी व्यक्ति को एक वर्ष तक के साधारण कारावास से दंडित करती है। सुप्रीम कोर्ट ने अन्य मौलिक अधिकारों के बीच एक समानांतर रेखा खींची – जिस तरह अनुच्छेद 19 के तहत अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार बोलने का अधिकार देता है, लेकिन इसमें न बोलने का अधिकार भी शामिल है, अनुच्छेद 21 के तहत जीने के अधिकार में न जीने का अधिकार भी शामिल है। . इस प्रकार, धारा 309 को असंवैधानिक माना गया।

ज्ञान कौर– तथापि, 1996 में न्यायमूर्ति जे.एस.वर्मा, जी.एन.रे.एन.पी. सिंह, फैयाजुद्दीन और जी.टी. नानाबटी से मिलकर बनी सर्वोच्च न्यायालय की पाँच सदस्यीय संवैधानिक बैंच ने ज्ञान कौर ए.आई.आर. 1996 एस.सी. 1257 के मामले में 1994 में पी. रथिनम/नागभूषण ए.आई.आर. 1994 एस.सी. 1844 के मामले में दिए गए निर्णयों को उलट दिया।

संक्षेप में तथ्य– अपीलकर्ता जियान कौर और उसके पति को ट्रायल कोर्ट ने कुलवंत कौर को आत्महत्या के लिए उकसाने के लिए दोषी ठहराया था। अपीलकर्ता ने दोषसिद्धि को चुनौती देते हुए कहा कि भारतीय दंड संहिता, 1860 (आईपीसी) की धारा 306 असंवैधानिक थी। उक्त चुनौती पी. रथिनम बनाम भारत संघ (1994) 3 एससीसी 394 में सुप्रीम कोर्ट की एक खंडपीठ के फैसले पर आधारित थी, जिसमें आईपीसी की धारा 309 को अनुच्छेद 21 का उल्लंघन होने के कारण असंवैधानिक घोषित किया गया था। न्यायालय की एक खंडपीठ के समक्ष उठाया गया, जिसने मुद्दे के महत्व को देखते हुए इसे पांच न्यायाधीशों की संवैधानिक पीठ के पास भेज दिया।

तर्क – सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष निम्नलिखित तर्क उठाए गए–

1. अपीलकर्ताओं ने तर्क दिया कि पी. रथिनम के फैसले के बाद श्मरने का अधिकारश अनुच्छेद 21 के तहत एक मौलिक अधिकार बन गया है और इसलिए आईपीसी की धारा 306, जो किसी अन्य को मरने के इस मौलिक अधिकार के प्रवर्तन में सहायता करने की अनुमति नहीं देती है। असंवैधानिक था.

2. उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि चूँकि यह तय हो चुका है कि अनुच्छेद 21 का व्यापक अर्थ है जिसमें 'जीवन' शब्द का अर्थ 'केवल पशु अस्तित्व' नहीं है, बल्कि जीवन की गुणवत्ता को शामिल करते हुए श्मानव गरिमा के साथ जीने का अधिकार' है, तार्किक रूप से इसे इसका पालन करना चाहिए। जीने के अधिकार में न जीने का अधिकार भी शामिल होगा यानी मरने या किसी का जीवन समाप्त करने का अधिकार।

3. एमिकस क्यूरी के रूप में, फली जे. नरीमन ने कहा कि अनुच्छेद 21 में तथाकथित 'मरने का अधिकार' शामिल नहीं किया जा सकता क्योंकि अनुच्छेद 21 जीवन और स्वतंत्रता की सुरक्षा की गारंटी देता है, न कि इसके विलुप्त होने की।

4. एक अन्य एमिकस क्यूरी, सोली जे. सोराबजी ने प्रस्तुत किया कि धारा 306 आईपीसी की धारा 309 से स्वतंत्र रूप से जीवित रह सकती है, क्योंकि यह अनुच्छेद 14 या अनुच्छेद 21 का उल्लंघन नहीं करती है जैसा कि धारा 306 के मामले में था।

निर्णय–– उच्चतम न्यायालय ने इस तर्क को खारिज कर दिया कि जीवन के अधिकार में किसी के जीवन को समाप्त करने का अधिकार भी शामिल है। इसने देखा, श्मरने का अधिकारश, यदि कोई है, तो श्जीवन के अधिकारश के साथ स्वाभाविक रूप से असंगत है क्योंकि असंगत श्जीवन के साथ मृत्युश है और इस प्रकार पी. रथिनम के फैसले को खारिज कर दिया और इसलिए, धारा 306 और 309 भारतीय दंड संहिता को संवैधानिक घोषित किया गया। न्यायालय ने विशेष रूप से दया हत्या या इच्छामृत्यु के तर्क को खारिज कर दिया क्योंकि अनुच्छेद 21 के तहत दिए गए संरक्षण के कारण भारत में इसकी अनुमति नहीं है।

<u>प्रश्न न0 10–</u> भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम, 1988 के उद्देश्य क्या हैं? इस अधिनियम के अन्तर्गत दिये गये अपराधों के साथ उनके दण्डों की भी विवेचना।

उत्तर– भ्रष्टचार निवारण अधिनियम के उद्देश्य (Objectives of Prevention of Corruption Act)– भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, भारतीय संसद, द्वारा पारित एक केन्द्रीय कानून है, जो सरकारी तन्त्र और सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों व्याप्त भ्रष्टाचार को समाप्त करने तथा भ्रष्टाचार रहित समाज की स्थापना के उद्देश्य से बनाया गया है।

अधिनियम के अन्तर्गत बताये गए अपराध एवं दण्ड (शक्तियाँ)– भ्रष्टाचार निवारक अधिनियम 1988 के अधीन निम्नवत् अपराधों को दण्डनीय बनाया गया है–

(1) लोक सेवक द्वारा पदीय कार्य के लिए, वैध पारिश्रमिक से भिन्न पारितोषण लिया जाना (धारा 7)– हालाँकि, एक लोक सेवक होने या होने की उम्मीद करते हुए, किसी भी व्यक्ति से, अपने लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए, कानूनी पारिश्रमिक के अलावा, किसी भी अन्य संतुष्टि को एक उद्देश्य या पुरस्कार के रूप में स्वीकार करता है या प्राप्त करता है या स्वीकार करने का प्रयास करता है। किसी भी आधिकारिक कार्य को करना या करने से मना करना या अपने आधिकारिक कार्यों के अभ्यास में किसी व्यक्ति का पक्ष लेना या नापसंद करना या किसी भी व्यक्ति को कोई सेवा या अपकार प्रदान करने या प्रदान करने का प्रयास करना, केंद्र सरकार के साथ या किसी भी राज्य सरकार या संसद या किसी भी राज्य के विधानमंडल या धारा 2 के खंड (सी) में निर्दिष्ट किसी भी स्थानीय प्राधिकरण, निगम या सरकारी कंपनी के साथ, या किसी भी लोक सेवक के साथ, चाहे वह नामित हो या अन्यथा,

कारावास से दंडनीय होगा। छह महीने से कम नहीं, लेकिन इसे पांच साल तक बढ़ाया जा सकता है और जुर्माना भी लगाया जा सकता है।

स्पष्टीकरण.– (ए) 'एक लोक सेवक होने की उम्मीद।' यदि कोई व्यक्ति पद पर बने रहने की आशा नहीं रखता है, तो वह दूसरों को यह विश्वास दिलाकर धोखा देकर संतुष्टि प्राप्त करता है कि वह पद पर आसीन होने वाला है और फिर वह उनकी सेवा करेगा, तो वह धोखाधड़ी का दोषी हो सकता है, लेकिन वह अपराध का दोषी नहीं है। इस अनुभाग में परिभाषित किया गया है.

(बी) 'संतुष्टि।' 'संतुष्टि' शब्द केवल आर्थिक संतुष्टि या धन के रूप में अनुमानित संतुष्टि तक ही सीमित नहीं है।

(सी) 'कानूनी पारिश्रमिक।' 'कानूनी पारिश्रमिक' शब्द उस पारिश्रमिक तक ही सीमित नहीं हैं जिसे एक लोक सेवक कानूनी रूप से मांग सकता है, बल्कि इसमें वे सभी पारिश्रमिक शामिल हैं जिन्हें स्वीकार करने के लिए उसे सरकार या संगठन द्वारा अनुमति दी गई है, जिसकी वह सेवा करता है।

(डी) 'करने का एक मकसद या इनाम।' एक व्यक्ति जो वह काम करने के लिए प्रेरणा या पुरस्कार के रूप में संतुष्टि प्राप्त करता है जो उसका इरादा नहीं है या करने की स्थिति में नहीं है, या नहीं किया है, इस अभिव्यक्ति के अंतर्गत आता है।

(ई) जहां एक लोक सेवक किसी व्यक्ति को गलती से यह विश्वास करने के लिए प्रेरित करता है कि सरकार के साथ उसके प्रभाव ने उस व्यक्ति के लिए एक उपाधि प्राप्त कर ली है और इस प्रकार उस व्यक्ति को इस सेवा के लिए पुरस्कार के रूप में लोक सेवक, धन या कोई अन्य संतुष्टि देने के लिए प्रेरित करता है, तो लोक सेवक ने इस धारा के तहत अपराध किया है।

(2) लोक सेवक पर भ्रष्ट अथवा अवैध साधनों द्वारा असर डालने के लिए पारितोषण का लेना (धारा 8)– जो कोई किसी भी व्यक्ति से, अपने लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए, किसी भी लोक सेवक, चाहे वह नामित हो, को भ्रष्ट या अवैध तरीकों से प्रेरित करने के उद्देश्य या पुरस्कार के रूप में कोई भी संतुष्टि स्वीकार करता है या प्राप्त करता है, या स्वीकार करने के लिए सहमत होता है, या प्राप्त करने का प्रयास करता है। या अन्यथा, कोई आधिकारिक कार्य करना या करने से मना करना, या ऐसे लोक सेवक के आधिकारिक कार्यों के अभ्यास में किसी व्यक्ति के प्रति पक्षपात या प्रतिकूलता दिखाना, या किसी भी व्यक्ति को कोई सेवा या अपकार प्रदान करने या प्रदान करने का प्रयास करना। केंद्र सरकार या किसी राज्य सरकार या संसद या किसी राज्य के विधानमंडल या धारा 2 के खंड (सी) में निर्दिष्ट किसी स्थानीय प्राधिकरण, निगम या सरकारी कंपनी के साथ, या किसी लोक सेवक के साथ, चाहे वह नामित हो या अन्यथा, दंडनीय होगा ऐसी अवधि के लिए कारावास, जो छह महीने से कम नहीं होगा, लेकिन जिसे पांच साल तक बढ़ाया जा सकता है और जुर्माने के लिए भी उत्तरदायी होगा।

(3) लोक सेवक पर वैयक्तिक असर डालने के लिए पारितोषण का लेना (धारा 9)– जो कोई किसी भी व्यक्ति से, अपने लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए, किसी भी प्रकार की संतुष्टि, व्यक्तिगत प्रभाव के प्रयोग से प्रेरित करने के उद्देश्य या पुरस्कार के रूप में, किसी भी लोक सेवक, चाहे वह नामित हो या हो, को स्वीकार करता है या प्राप्त करता है या स्वीकार करने या प्राप्त करने का प्रयास करने के लिए सहमत होता है। अन्यथा कोई भी आधिकारिक कार्य करना या करने से मना करना, या ऐसे लोक सेवक के आधिकारिक कार्यों के अभ्यास में किसी व्यक्ति के प्रति पक्षपात या प्रतिकूलता दिखाना, या केंद्र के साथ किसी भी व्यक्ति को कोई सेवा प्रदान करना या प्रदान करने का प्रयास करना। सरकार या किसी राज्य सरकार या संसद या किसी राज्य के विधानमंडल या धारा 2 के खंड (सी) में निर्दिष्ट किसी स्थानीय प्राधिकरण, निगम या सरकारी कंपनी के साथ, या किसी लोक सेवक के साथ, चाहे वह नामित हो या अन्यथा, कारावास से दंडनीय होगा। ऐसी अवधि के लिए जो छह महीने से कम नहीं होगी लेकिन जिसे बढ़ाया जा सकता है। पांच साल तक की सजा और जुर्माना भी देना होगा।

(4) लोक–सेवक द्वारा धारा 8 अथवा धारा 9 में परिभाषित अपराधों के दुष्प्रेरण के लिए दण्ड (धारा 10)– जो कोई, एक लोक सेवक होते हुए, जिसके संबंध में धारा 8 या धारा 9 में परिभाषित कोई भी अपराध किया जाता है, अपराध का दुष्प्रेरण करता है, चाहे वह अपराध उस दुष्प्रेरण के परिणामस्वरूप किया गया हो या नहीं, एक अवधि के लिए कारावास से दंडनीय होगा जो छह महीने से कम नहीं होगी, लेकिन जिसे पांच साल तक बढ़ाया जा सकता है और जुर्माना भी लगाया जा सकता है।

(5) लोक–सेवक, जो ऐसे लोक–सेवक द्वारा की गई कार्यवाही अथवा कारबार से सम्बद्ध व्यक्ति से, प्रतिफल के बिना, मूल्यवान चीज अभिप्राप्त करता है (धारा 11)– जो कोई, एक लोक सेवक होते हुए, अपने लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए, किसी भी मूल्यवान वस्तु को बिना प्रतिफल के, या ऐसे प्रतिफल के लिए स्वीकार करता है या प्राप्त करता है या स्वीकार करने के लिए सहमत होता है या प्राप्त करने का प्रयास करता है, जिसे वह जानता है कि वह अपर्याप्त है। ऐसे लोक सेवक द्वारा किए गए या किए जाने वाले किसी भी कार्यवाही या व्यवसाय में शामिल होना, या होना, या होने की संभावना होना, या स्वयं के या किसी लोक सेवक, जिसका वह है, के आधिकारिक कार्यों से कोई संबंध होना। अधीनस्थ, या किसी ऐसे व्यक्ति से जिसे वह जानता है कि संबंधित व्यक्ति से उसकी रुचि है या उससे संबंधित है, को कारावास से दंडित किया जाएगा, जिसकी अवधि छह महीने से कम नहीं होगी, लेकिन जिसे पांच साल तक बढ़ाया जा सकता है और इसके लिए उत्तरदायी भी होगा। अच्छा।

(6) धारा 7 अथवा धारा 12 में परिभाषित अपराधों के दुष्प्रेरण के लिए दण्ड (धारा 12)– जो कोई भी धारा 7 या धारा 11 के तहत दंडनीय किसी अपराध का दुष्प्रेरण करेगा, चाहे वह अपराध उस दुष्प्रेरण के परिणामस्वरूप किया

गया हो या नहीं, उसे कारावास से दंडित किया जाएगा, जिसकी अवधि छह महीने से कम नहीं होगी, लेकिन जिसे पांच साल तक बढ़ाया जा सकता है। जुर्माने का भागी होगा।

(7) लोक–सेवक द्वारा आपराधिक अवचार (धारा 13)– (1) एक लोक सेवक के बारे में कहा जाता है कि वह आपराधिक कदाचार का अपराध करता है, –

(1) यदि वह आदतन किसी व्यक्ति से अपने लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए कानूनी पारिश्रमिक के अलावा किसी मकसद या इनाम के रूप में कोई संतुष्टि स्वीकार करता है या प्राप्त करता है या स्वीकार करने का प्रयास करता है, जैसा कि धारा 7 में उल्लिखित है। (2) यदि वह आदतन अपने लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए किसी मूल्यवान वस्तु को बिना प्रतिफल के या ऐसे प्रतिफल के लिए स्वीकार करता है या प्राप्त करता है या स्वीकार करने के लिए सहमत होता है या प्राप्त करने का प्रयास करता है जिसके बारे में वह जानता है कि वह किसी ऐसे व्यक्ति से अपर्याप्त है जिसके बारे में वह जानता है, या उसके द्वारा किए गए या किए जाने वाले किसी कार्यवाही या व्यवसाय में शामिल होना, या होने की संभावना होना, या उसके स्वयं के या किसी लोक सेवक, जिसके वह अधीनस्थ है, या किसी व्यक्ति के आधिकारिक कार्यों से कोई संबंध होना। वह जानता है कि वह संबंधित व्यक्ति में रुचि रखता है या उससे संबंधित है। (3) यदि वह एक लोक सेवक के रूप में उसे सौंपी गई या उसके नियंत्रण के तहत किसी संपत्ति का बेईमानी से या धोखाधड़ी से दुरुपयोग करता है या अन्यथा अपने उपयोग के लिए परिवर्तित करता है या किसी अन्य व्यक्ति को ऐसा करने की अनुमति देता है (4) यदि वह,– (5) भ्रष्ट या अवैध तरीकों से, अपने लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए कोई मूल्यवान वस्तु या आर्थिक लाभ प्राप्त करता है। (6) लोक सेवक के रूप में अपने पद का दुरुपयोग करके, अपने लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए कोई मूल्यवान वस्तु या आर्थिक लाभ प्राप्त करता है। (7) एक लोक सेवक के रूप में पद पर रहते हुए, बिना किसी सार्वजनिक हित के किसी भी व्यक्ति के लिए कोई मूल्यवान वस्तु या आर्थिक लाभ प्राप्त करता है। (8) यदि वह या उसकी ओर से कोई भी व्यक्ति, अपने कार्यालय की अवधि के दौरान किसी भी समय, अपने ज्ञात स्रोतों से अधिक आर्थिक संसाधनों या संपत्ति पर कब्जा कर रहा है, जिसके लिए लोक सेवक संतोषजनक ढंग से हिसाब नहीं दे सकता है। आय का

स्पष्टीकरण.– इस धारा के प्रयोजनों के लिए, ष्आय के ज्ञात स्रोतष् का अर्थ किसी भी वैध स्रोत से प्राप्त आय है और ऐसी रसीद किसी लोक सेवक पर लागू होने वाले किसी भी कानून, नियमों या आदेशों के प्रावधानों के अनुसार सूचित की गई है। .

(2) कोई भी लोक सेवक जो आपराधिक कदाचार करता है, उसे कारावास से दंडित किया जाएगा, जिसकी अवधि एक वर्ष से कम नहीं होगी, लेकिन जिसे सात साल तक बढ़ाया जा सकता है और जुर्माना भी लगाया जा सकता है।

(8) प्रयत्न के लिए दण्ड (धारा 15)– जो कोई भी धारा 13 की उपधारा (1) के खंड (सी) या खंड (डी) में निर्दिष्ट अपराध करने का प्रयास करेगा, उसे तीन साल तक की कैद और जुर्माने से दंडित किया जाएगा।

पंजाब राज्य बनाम मदन लाल वर्मा, 2013 सीआर.एल.जे एस.सी. के मामले अभिनिर्धारित किया गया है कि ''किसी व्यक्ति से कलुचिज धन की मात्र बरामदगी, अभियुक्त को दोषसिद्ध करने के लिए पर्याप्त नहीं होती है, अगर सारभूत साक्ष्य विश्वसनीय न हो, जब तक रिश्वत को धनराशि को साबित करने के लिए अथवा यह दर्शाने के लिए पर्याप्त साक्ष्य न कि धन को रिश्वत के रूप में स्वेच्छापूर्ण लिया गया था।

(9) धारा 8, धारा 9, एवं धारा 12 के अधीन अभ्यास अपराध करना (धारा 14)– जो कोई आदतन ऐसा करता है–

(ए) धारा 8 या धारा 9 के तहत दंडनीय अपराध।

(बी) धारा 12 के तहत दंडनीय अपराध, कारावास से दंडनीय होगा जो दो साल से कम नहीं होगा लेकिन जिसे सात साल तक बढ़ाया जा सकता है और जुर्माना भी लगाया जा सकता है।

प्रश्न 11– लज्जा भंग से क्या अभिप्राय है? लज्जा भंग के सम्बन्ध में भारतीय दण्ड संहिता में क्या उपबन्ध किए गए है?

उत्तर– भारतीय दण्ड संहिता की धारा 354 में स्त्री की लज्जा भंग के विषय में प्रावधान किया गया है जिसके अन्तर्गत–

धारा 354 भारतीय दंड संहिता (आईपीसी) की धारा 354 किसी महिला की लज्जा भंग करने के इरादे से उस पर हमला करने या आपराधिक बल प्रयोग करने पर दंड देकर महिला की लज्जा और गरिमा की रक्षा करती है। इस धारा में मौखिक और गैर–मौखिक आचरण शामिल है जो किसी महिला की गरिमा का अपमान करता है। इस अपराध के लिए सजा एक से पांच साल की कैद और जुर्माना है।

टिप्पणी–

(1) स्त्री पर हमला– धारा 354, भारतीय दण्ड संहिता स्त्री को अभद्र हमले से संरक्षित करने तथा लोक नैतिकता तथा भद्र व्यवहार की रक्षा करने के दृष्टिकोण से अधिनियमित की गई। यह धारा इस आशय या ज्ञान, कि स्त्री की लज्जा भंग होगी, या किए गए हमले या आपराधिक बल के प्रयोग को दण्डित करती है।

(2) आवश्यक तत्व– (क) स्त्री पर हमला किया गया या उसके विरूद्ध आपराधिक बल का प्रयोग हुआ;

(ख) अभियुक्त उसकी लज्जा भंग करने का आशय रखता था या यह जानता था कि उसकी लज्जा भंग होना सम्भाव्य है।

यह अपराध संज्ञेय, जमानतीय, न्यायालय की अनुज्ञा से शमनीय, और किसी भी मजिस्ट्रेट द्वारा विचारणीय है। इसके दण्ड में दोनों भाँति का दो वर्ष का कारावास, या जुर्माना या दोनों सम्मिलित है।

इस प्रकार किसी स्त्री की लज्जा भंग करने के आशय उस पर हमला करना अथवा आपराधिक बल का प्रयोग धारा 354 के अन्तर्गत दण्डनीय अपराध है। किसी स्त्री के कूल्हे पर मारना लज्जा भंग है। **(के.पी.एस. गिल बनाम स्टेट, ए.आई.आर. 2005 एस.सी. 3014)।**

किसी महिला के साथ बलात्संग करने के आशस से उसका घाघरा हटा देना स्त्री की लज्जा भंग है। **(प्रेमिया उर्फ प्रकाश बनाम स्टेट ऑफ राजस्थान, ए.आई.आर. 2009 एस.सी. 351)**

किसी महिला को खींचना और उसे निर्वस्त्र कर देना स्त्री की लज्जा भंग है। **(अमन कुमार बनाम स्टेट ऑफ हरियाणा, ए.आई.आर. 2004 एस.सी. 1497)।**

दण्ड विधि (संशोधन) अधिनियम, 2013 द्वारा इसमें निम्नांकित नई धारायें अन्तःस्थापित की गई हैं–

354–क लैंगिक उत्पीड़न और लैंगिक उत्पीड़न के लिए दण्ड– (1) ऐसा कोई निम्नलिखित कार्य, अर्थात्–

(क) शारीरिक संपर्क और अग्रक्रियाएं करने, जिनमें अवांछनीय और लैंगिक संबन्ध बनाने संबन्धी स्पष्ट प्रस्ताव समाहित हो, या

(ख) लैंगिक स्वीकृति बनाने की कोई मांग या अनुरोध करने; अथवा

(ग) किसी स्त्री की इच्छा के विरूद्ध बलात् अश्लील साहित्य दिखाने; अथवा

(घ) लैंगिक आभासी टिप्पणियाँ करने,

वला पुरूष लैंगिक उत्पीड़न के अपराध का दोषी होगा।

(2) ऐसा कोई पुरूष, जो उपधारा (1) के खंड (i) या खंड (ii) या खंड (iii) में विनिर्दिष्ट अपराध करेगा, वह कठोर कारावास से, जिसकी अवधि तीन वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माना से या, दोनों से दण्डित किया जाएगा।

(3) ऐसा कोई पुरूष, जो उपधारा (1) के खंड (iv) में विनिर्दिष्ट अपराध करेगा, वह दोनों में से किसी भाँति के कारावास से, जिसकी अवधि एक वर्ष की हो सकेगी, या दोनों से, दण्डित किया जाएगा।

354–ख विवस्त्र करने का आशय से स्त्री पर हमला या आपराधिक बल का प्रयोग– किसी महिला को निर्वस्त्र करने के इरादे से उस पर हमला करने या आपराधिक बल के प्रयोग से संबंधित है। यह धारा ऐसे कृत्यों में महिला की निजता और गरिमा के गंभीर उल्लंघन को मान्यता देती है और जुर्माने के साथ तीन से सात साल तक की कैद की कड़ी सजा देती है। यह एक गैर–जमानती और संज्ञेय अपराध है, जो इस गंभीरता को दर्शाता है कि कानून इस तरह के उल्लंघनों को देखता है।

354–ग दृश्यरतिकता– कोई भी पुरुष जो अपराधी द्वारा या अपराधी के आदेश पर किसी अन्य व्यक्ति द्वारा देखी गई परिस्थितियों में किसी महिला को निजी कार्य करते हुए देखता है या उसकी तस्वीर खींचता है या ऐसी छवि को प्रसारित करता है, तो उसे पहली बार दोषी ठहराए जाने पर दोनों में से किसी भी प्रकार के कारावास से दंडित किया जाएगा। एक अवधि के लिए जो या तो एक अवधि के लिए विवरण होगी जो एक वर्ष से कम नहीं होगी, लेकिन जिसे तीन साल तक बढ़ाया जा सकता है, और जुर्माना भी लगाया जा सकता है।

किसी व्यक्ति की निजता और निजी स्थान में घुसपैठ करना आईपीसी की धारा 354सी के तहत आता है।

उदाहरण के लिए– अलग–अलग स्थानों पर ट्रायल रूम में कैमरा रखना या यदि वीडियो या चित्र व्यक्ति की इच्छा या इच्छा के विरुद्ध प्रसारित किए जाते हैं। इसमें इंटरनेट पर नग्न तस्वीरें या अर्ध–नग्न तस्वीरें अपलोड करना शामिल है। यह सबसे बड़े पैमाने पर होने वाले अपराधों में से एक है, जिसकी शुरुआत आज भारत में हो रही है।

आईपीसी की धारा 354सी ताक–झांक से निपटती है, किसी महिला की सहमति के बिना किसी निजी कार्य में उसे देखने या उसकी छवि खींचने के कार्य को दंडित करती है। यह अनुभाग डिजिटल युग में गोपनीयता के उल्लंघन को संबोधित करता है, जहां ऐसे कृत्यों में निजी स्थानों पर कैमरे रखना या सहमति के बिना अंतरंग छवियों को प्रसारित करना शामिल हो सकता है। ताक–झांक के लिए सजा तीन साल तक की कैद और जुर्माना हो सकती है।

स्पष्टीकरण–1

इस धारा के प्रयोजन के लिए, 'निजी कार्य' में ऐसे स्थान पर किया गया देखने का कार्य शामिल है, जिससे, परिस्थितियों में, गोपनीयता प्रदान करने की उचित अपेक्षा की जाएगी और जहां पीड़ित के जननांग, पिछला भाग या स्तन उजागर होते हैं या केवल अंडरवियर में ढके होते हैं य या पीड़ित शौचालय का उपयोग कर रहा है या पीड़ित कोई ऐसा यौन कार्य कर रहा है जो उस प्रकार का नहीं है जो आम तौर पर सार्वजनिक रूप से किया जाता है।

स्पष्टीकरण–2

जहां पीड़ित छवियों या किसी कार्य को खींचने के लिए सहमति देते हैं, लेकिन उन्हें तीसरे व्यक्ति तक प्रसारित करने के लिए नहीं और जहां ऐसी छवि या कार्य प्रसारित किया जाता है, ऐसे प्रसार को इस धारा के तहत अपराध माना जाएगा।

354–घ पीछा करना– (1) कोई भी आदमी जो–

(क) ऐसी महिला द्वारा अरुचि के स्पष्ट संकेत के बावजूद बार–बार व्यक्तिगत संपर्क को बढ़ावा देने के लिए किसी

(ख) महिला का पीछा करता है और संपर्क करता है, या संपर्क करने का प्रयास करता है; या

किसी महिला द्वारा इंटरनेट, ईमेल या इलेक्ट्रॉनिक संचार के किसी अन्य रूप के उपयोग पर नजर रखता है, पीछा करने का अपराध करता है– बशर्ते कि ऐसा आचरण पीछा करने की श्रेणी में नहीं आएगा यदि ऐसा करने वाला पुरुष यह साबित करता है कि–

(1) इसे अपराध को रोकने या पता लगाने के उद्देश्य से चलाया गया था और चोरी के आरोपी व्यक्ति को राज्य द्वारा अपराध की रोकथाम और पता लगाने की जिम्मेदारी सौंपी गई थी; या

(2) इसे किसी कानून के तहत या किसी कानून के तहत किसी व्यक्ति द्वारा लगाई गई किसी शर्त या आवश्यकता का अनुपालन करने के लिए अपनाया गया था; या

(3) विशेष परिस्थितियों में ऐसा आचरण उचित एवं उचित था। यह जानबूझकर, दुर्भावनापूर्ण और किसी विशिष्ट व्यक्ति का बार–बार पीछा करना या उसे परेशान करना भी है जिससे उसके जीवन या सुरक्षा को खतरा होता है।

प्रश्न 12– व्यपहरण एवं अपहरण की परिभाषा दीजिए तथा प्रभेद कीजिए एवं व्यपहरण एवं अपहरण में बताइए।

उत्तर– व्यपहरण(Kidnapping)– 'किडनैपिंग' शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है, 'किड' जिसका अर्थ है बच्चा और 'नैपिंग', जिसका अर्थ है चोरी करना। इस प्रकार, इसका शाब्दिक अर्थ है बच्चे को चुराना।

भारतीय दंड संहिता की धारा 359 अपहरण को दो श्रेणियों में वर्गीकृत करती है–

(1) भारत में व्यपहरण

(2) विधिपूर्ण संरक्षकता में से व्यपहरण

(क) धारा 360 भारत में से व्यपहरण–धारा 360 में भारत से व्यपहरण का प्रावधान है। इसमें कहा गया है, ''जो कोई किसी व्यक्ति को उस व्यक्ति या उस व्यक्ति की ओर से सहमति के लिए कानूनी रूप से अधिकृत किसी व्यक्ति की सहमति के बिना भारत की सीमा से परे ले जाता है, तो यह कहा जाता है कि उसने उस व्यक्ति का भारत से व्यपहरण कर लिया है।''

इस अपराध को गठित करने के लिए आवश्यक तत्व हैं–

(1) व्यक्ति को भारत की सीमा से बाहर पहुंचाना,

(2)ऐसे व्यक्ति की सहमति के बिना या उस व्यक्ति की ओर से सहमति देने के लिए कानूनी रूप से अधिकृत व्यक्ति।

इस धारा के तहत अपराध तब तक पूरा नहीं होगा जब तक व्यक्ति वास्तव में न केवल विदेशी क्षेत्र बल्कि अपने गंतव्य तक नहीं पहुंच जाता। धारा 361 के विपरीत, यह अपराध नाबालिगों या विकृत दिमाग वाले व्यक्तियों तक सीमित नहीं है। यह राष्ट्रीयता और उम्र की परवाह किए बिना किसी भी व्यक्ति, पुरुष या महिला, बालिग या नाबालिग के खिलाफ किया जा सकता है।

(ख) विधि संरक्षकता में से व्यपहरण– जो कोई किसी अप्राप्तवय को यदि वह नर हो, तो

सम्मति के बगैर ले जाना– शब्द 'ले जाना' को शाब्दिक अर्थ यात्रा पर साथ जाना है किन्तु लोकप्रिय अर्थ है इसका अर्थ किसी व्यक्ति को उसके गन्तव्य तक ले जाना है। अतः अपराध तब तक पूर्ण नही होगा जब तक कि वह व्यक्ति वास्तविक रूप से न केवल विदेशी क्षेत्र में बल्कि अपने गन्तव्य नहीं पहुँच जाता।

(ख) धारा 361. विधिपूर्ण संरक्षकता में से व्यपहरण– धारा 361 वैध संरक्षकता से व्यपहरण का प्रावधान करती है। इसमें कहा गया है, ''जो कोई सोलह वर्ष से कम उम्र के किसी नाबालिग को, यदि वह पुरुष है, या अठारह वर्ष से कम उम्र का, यदि वह महिला है, या किसी विकृत दिमाग वाले व्यक्ति को, ऐसे नाबालिग या व्यक्ति के कानूनी संरक्षक की हिरासत से बाहर ले जाता है या फुसलाकर ले जाता है।'' ऐसे अभिभावक की सहमति के बिना विकृत दिमाग, ऐसे नाबालिग या व्यक्ति को वैध संरक्षकता से व्यपहरण करने के लिए कहा जाता है।

स्पष्टीकरण– इस धारा में 'विधिपूर्ण संरक्षक' शब्दों के अन्तर्गत ऐसा व्यक्ति आता है जिस पर ऐसे अप्राप्तव्य या अन्य व्यक्ति की देखरेख या अभिरक्षा का भार विधिपूर्वक न्यस्त किया गया है।

अपवाद– इस धारा का विस्तार किसी ऐसे व्यक्ति के कार्य पर नहीं हैं, जिसे सद्भावपूर्वक यह विश्वास है कि वह किसी अधर्मज शिशु का पिता है, या जिसे सद्भावपूर्वक यह विश्वास है कि वह ऐसे शिशु की विधिपूर्ण अभिरक्षा का हकदार है, जब तक कि ऐसा कार्य दुराचारिक या विरूद्ध प्रयोजन के लिए न किया जाए।

उद्देश्य और विस्तार– धारा 361, भारतीय दण्ड संहिता किसी अवयस्क को यदि वह नर हो तो सोलह वर्ष से कम आयु वाले को, यदि वह नारी हो तो, अठारह वर्ष से कम आयु वाली स्त्री के विधिपूर्ण संरक्षकता से व्यपहरण को अपराध बनाती है। यह धारा विधिपूर्ण संरक्षण से विकृतचित्त व्यक्ति को व्यपहत करने से भी संरक्षण प्रदान करती है। धारा 361 में निहित उपबन्ध (आंग्ल विधि) धारा 55, ऑफेसेज अर्गेस्ट दि पर्सन्स एक्ट, 1861 के अनुरूप है जो अविवाहित लड़की के अपहरण को कानूनी अपराध बनाती हैं।

व्यपहरण का अपराध सदोष परिरोध का गम्भीर रूप है, और इसलिए ऐसा अपराध है जिसमें उस अपराध के सभी तत्व आवश्यक रूप में व्यवहत करती है। किन्तु व्यपहरण में सदोष परिरोध या व्यपहरित व्यक्ति के परिरोध में रखने का अपराध सम्मिलित नहीं है।

यह धारा अवयस्कों और विकृतचित व्यक्तियों को शोषण से संरक्षित करने तथा माता–पिता और पालकों के अपने बच्चों पर विधिपूर्ण भार या संरक्षा के अधिकार और विशेषाधिकारों को संरक्षित करने के लिए निर्दिष्ट की गई है।

अतः केवल माता–पिता या पालक की सम्मति किसी मामले को इस धारा के दायरे से बाहर करने के लिए पर्याप्त है।

आवश्यक तत्व– इस धारा के अधीन अपराध स्थापित करने के लिए, निम्नलिखित दशाएँ विद्यमान होनी चाहिए, अर्थात्–

(1) किसी अवयस्क या अस्वस्थ व्यक्ति को ले जाना या फुसलाना,

(2) ऐसे नाबालिग की आयु पुरुष के मामले में 16 वर्ष से कम या महिला के मामले में 18 वर्ष से कम होनी चाहिए।

(3) वैध अभिभावक की रखवाली से वंचित करना या प्रलोभन देना,

(4) कानूनी अभिभावक की सहमति के बिना।

अपहरण (Abduction)– सामान्य शब्दों में अपहरण का अर्थ किसी व्यक्ति को छल या बल द्वारा ले जायाश जाना है। धारा 362 के अनुसार, अपहरण तब होता है जब कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति को बल द्वारा या किसी प्रवंचनापूर्ण उपाय द्वारा किसी स्थान से जाने के लिए उप्रेरित करता है। अपहरण अपने शुद्व और सरल रूप में अपराध नहीं है। यह स्वयं दण्डनीय नहीं एक सहायक कृत्य है, किन्तु जब इसके साथ किसी अन्य अपराध को कारित करने के लिए कतिपय आशय जोड़ दिया जाता है तो यह अपराध के रूप में दण्डनीय हो जाता है। उदाहरण के लिए– (क) यदि आशय यह हो कि अपहत व्यक्ति की हत्या की जा सकती है या उसको ऐसे व्यपनित किया जा सकता है कि वह अपनी हत्या होने के खतरे में पड़ जाए, तो धारा 364, भा.द.सं. लागू होती है;

(ख) यह किसी व्यक्ति का गुप्त रीति से और सदोष परिरोध करने का आशय हो तो धारा 365, भा.द.सं. लागू होती है;

(ग) यदि अपहत व्यक्ति स्त्री है और आशय यह है कि उसे किसी व्यक्ति से विवाह करने के लिए उसकी इच्छा के विरूद्ध विवश किया जाए या विवश किया जाना सम्भाव्य है या अयुक्त सम्भोग करने के लिए बल प्रयोग या बिलुब्क्ष किया जाए या बल प्रयोग किया जाना या विलुब्क्ष किया जाना सम्भाव्य है तो धारा 366, भा.द.सं. लागू होगी,

(घ) यदि आशय किसी व्यक्ति को घोर उपहति कारित करने का हो या अपहत व्यक्ति को घोर उपहति या दासत्व या किसी व्यक्ति की प्रवृति विरूद्ध कामवासना का विषय बनाए जाने का खतरा हो, तो धारा 367, भा.द.सं. लागू होती है;

(ड) यदि अपहत व्यक्ति दस वर्ष से कम आयु का हो और आशय शिशु के शरीर से कोई चल सम्पत्ति बेईमानी से लेना हो, तो धारा 369, भा.द.सं. लागू होती है।

अपहरण के आवश्यक तत्व–

(1) किसी व्यक्ति को बल द्वारा विवश करना, या प्रवचनापूर्ण उपायों द्वारा उत्प्रेरित करना; या

(2) विवश करने अथवा उत्प्रेरित करने का उद्देश्य ऐसे व्यक्ति को किसी स्थान से ले जाने का हो।

जहाँ अपहत व्यक्ति पर किसी बल या प्रवंचना का प्रयोग नहीं किया जाता, वहाँ अपहरण का कोई अपराध नहीं हो सकता।

यदि कोई अवयस्क लड़की स्वेच्छाया अपने संरक्षक की अभिरक्षा से जाती है और एक व्यक्ति से मिलती है, जो बिना किसी दबाव या छल के अच्छा व्यवहार करता है, ऐसा व्यक्ति अपहरण का दोषी नहीं होगा। धारा 362, भा.द. सं. में वर्णित परिभाषा के दृष्टिकोण में उसमें प्रयुक्त शब्द 'बल' का अर्थ वास्तविक बल है न कि बल का प्रदर्शन या भय।

प्रवंचनापूर्ण– यहाँ यथा प्रयुक्त, अभिव्यक्ति प्रवंचनापूर्ण किसी स्त्री को बहाने से उसके पति का घर छोड़ने के लिए उत्प्रेरित करने को सम्मिलित करने के लिए पर्याप्त विस्तृत है। इसमें कृत्य या आचराण द्वारा गलत विवरण के प्रयोग को भी समाविष्ट करता है।

अपहरण जारी रहता है– अपहरण का अपराध निरन्तर जारी रहने वाला अपराध है, किसी बालिका का अवहरण तब नहीं होता है, जब वह पहली बार अपरहित की जाती है वरन् जब–जब वह एक दूसरे स्थान पर ले जायी जाती है, तब हर बार उसका अपहरण होता रहता है।

दुष्प्रेरण– यदि कोई स्त्री अपने ही अपहरण के लिए सम्मति देती है तथा उसकी स्वतन्त्र सम्मति है, ऐसी स्थिति में यह अपराध संरचित नहीं होगा तथा वह स्त्री अपने अपहरण के दुष्प्रेरण के लिए दण्डनीय नहीं होगी।

व्यपहरण और अपहरण के बीच विभेद– संहिता में वर्णित व्यवहरण और अपहरण दो उपबन्ध है। व्यवहरण धारा 359 से धारा 361 भारतीय दण्ड संहिता में तथा अपहण धारा 362 भारतीय दण्ड संहिता में वर्णित है।

भारत में व्यवहरण (धारा 360) से भिन्न, व्यपहरण संरक्षकता के विरूद्ध अपराध है (धारा 361)। क्षण जब कोई उस वयस्क अपने विधिपूर्ण संरक्षक की अभिरक्षा से ले जाया जाता या बहका ले जाया जाता है, व्यपहरण का अपराध पूर्ण हो जाता है। अपहरण से भिन्न व्यपहरण कारित करना ही दण्डनीय है, जब कि अपहरण में अपराधी को दण्डित करने लिए विशिष्ट प्रयोजन आवश्यक है।

	व्यपहरण (विधिपूर्ण संरक्षण में से) (धारा 361)	अपराध (धारा 362)
1	धारा 361 में यथापरिभाषित विधिपूर्ण संरक्षण में से (क) अवयस्क से सम्बन्ध में, नर हो तो 16 वर्ष से कम आयु का और यदि नारी हो तो 18 वर्ष से कम आयु की, तथा (ख) विकृतव्यक्ति के सम्बन्ध में (किसी भी आयु का) कारित किया	अपहरण किसी भी आयु के व्यक्ति (स्त्री या पुरूष) इसी प्रकार धारा 360, भारतीय दण्ड संहिता में यथावर्णित व्यपहरण किसी भी आयु के व्यक्ति के सम्बन्ध में उसकी आयु से पृथक् हो

	जाता है।	सकता है।
2	व्यपहरण किसी व्यक्ति को विधिपूर्ण संरक्षण से निकालना है।	अपहरण में केवल अपहत व्यक्ति के प्रति निर्दिष्ट किया गया है।
3	साधारण रूप में व्यपहरण अप्राप्तवय या विकृतिचित व्यक्ति को ले जाना है। उपयोग किए गए साधन सुसंगत नहीं होता है।	अपहरण में बल, बाध्यता या प्रवंचना पूर्ण तरीके प्रयोग किए जाते है।
4	व्यपहत व्यक्ति की सम्मति महत्वहीन है।	अपहत व्यक्ति की स्वतन्त्र और स्वेच्छया सम्मति अपहरण को क्षम्य बना देती है।
5	अपराध के लिए व्यपहरणकर्ता का आशय महत्वहीन है।	अभियुक्त का दोष निर्धारित करने में अपहरणकर्ता का आशय एक महत्वपूर्ण कारक है।
6	व्यपहरण अपने आप में मूल अपराध है।	अपहरण वास्तविक या मूल अपराध नहीं है और स्वयं में दण्डनीय नहीं है। यह तभी अपराध है जब धारा 363क, 364क से 369, भारतीय दण्ड संहिता में, यथाप्रदत्त अन्य किसी आशय से किया जाता है।

B.A.LL.B.-6th Sem. Paper-IV Jurisprudence-II Legal Conecpt

प्रश्न न0 1– विधिक अधिकार को परिभाषित कीजिए। इसके आवश्यक तत्व क्या है। विधिक अधिकार के मुख्य सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।

उत्तर– विधिक अधिकार का अर्थ– विधिक और न्यायशास्त्री साहित्य में अधिकार सबसे ज्यादा अस्पष्ट कोई शब्द मिल सकता है। अधिकार का प्रयोग जब विशेषण के तौर पर किया जाता है तो इसका तात्पर्य न्यायोचित या न्याय या ठीक होता है। अधिकार के समान या अधिकार का बोध कराने वाले शब्द भी इसी तरह अस्पष्ट और बहुअर्थी हैं। रोमन विधिशास्त्रियों ने अधिकार, विधि और न्याय भावार्थों को एक–दूसरे से अपृथक माना और इन सभी को बोध कराने के लिए इस शब्द का प्रयोग किया। मानव सभ्यता के विकास का वास्तविक योगदान विधि और उसकी निषेधात्मक प्रक्रिया को है जिसने व्यक्ति को समाज के सदस्यों के रूप में अपने कर्त्तव्यों और अधिकारों का बोध कराया है। जब समाज समाज के व्यक्ति परस्पर सम्पर्क में आते हैं तो उनके एक–दूसरे के प्रति कुछ विधिक अधिकार और कर्त्तव्य है, जिन्हें प्रचलित विधि द्वारा नियंत्रित किया जाता है। यह सर्वविदित है कि विधि का मूल उद्देश्य मानवीय हितों को संरक्षित करते हुए व्यक्तियों के समव्यवहारों को विनियमित करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्तियों के अधिकारों को प्रवर्तित कराने तथा उनका अतिक्रमण करने वालो को दण्डित करने के लिए राज्य अपनी भौतिक शक्ति का प्रयोग करे। यह कार्य राज्य द्वारा किया जाता है जो कानून के प्रवर्तन से लोगो को अपने विधिक कर्तव्य निभाने के लिए बाध्य करते हुए उनके अधिकारों की संरक्षा करता है।

विधिक अधिकार की परिभाषा– विधिवेत्ताओं ने विधि अधिकार की व्याख्या भिन्न–भिन्न प्रकार से की है। **सैविनी** ने इसे शक्ति माना है। **इहरिंग** ने इसे विधि द्वारा संरक्षित हित मानते है। **डॉ0 ऐलन के मतानुसार** अधिकार किसी हित को प्राप्त करने के लिए विधि द्वारा प्रत्याभूत शक्ति है।

ग्रे के अनुसार अधिकार स्वयं कोई हित नहीं है, अपितु वह हितों के संरक्षण का एक साधन मात्र है। इस कथन की पुष्टि में एक उदाहरण देते हुए ग्रे कहते है कि यदि एक व्यक्ति दूसरे को ऋण देता है तो ऋणदाता का यह हित है कि वह ऋणी व्यक्ति से अपनी ऋण राशि वापस प्राप्त करे, उसका वास्तविक विधिक अधिकार नहीं हैं बल्कि उसे कानून द्वारा दी गई वह शक्ति या क्षमता है कि वह दिया गया ऋण वसूल कर सकता है, उसका विधिक अधिकार होगा। दूसरे शब्दों में ऋणी व्यक्ति से ऋण की राशि प्राप्त करना ऋणदाता का हित है जो विधि द्वारा संरक्षित है। परन्तु यह स्वयं अधिकार नहीं है। अतः ग्रे के अनुसार विधिक अधिकार ऐसी शक्ति है जिसके द्वारा कोई व्यक्ति अन्य या व्यक्तियों को कोई कार्य करने या कार्य करने से उपरान्त रहने के लिए वैधानिक कर्तव्य द्वारा बाध्य करता है।

कानून प्रत्येक नागरिक के कानूनी अधिकार की रक्षा करता है। देश का नागरिक होने से लोगों को कानूनी अधिकार दिया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है। सामान्य शब्दों में इसका अर्थ यह है कि कानून द्वारा अनुमत कार्य को कानूनी अधिकार कहा जाता है या राज्य मान्यता प्राप्त या संरक्षित कार्य को कानूनी अधिकार कहा जाता है।

परिभाषाएँ–

हॉलैंड के अनुसार यह सामर्थ्य या क्षमता का घातक है आस्टिन विधिक अधिकारों की परिभाषा और विश्लेषण के बारे में विधिशास्त्रियों में भारी मतभेद है। आस्टिन के अनुसार अधिकार एक क्षमता के जो विहित पक्ष या पक्षकार या पक्षकारों में किसी निर्दिष्ट विधि के कारण होती है और जो किसी पक्षकार या पक्षकारों से भिन्न है जिसमें यह निहित है, के विरूद्ध होती है, या किसी पक्षकारा या पक्षकारों पर अधिरोपित कर्तव्य के समनुरूपी होती है, उसके अनुसार किसी व्यक्ति को कोई अधिकार होना केवल तभी कहा जाता है जबकि दूसरा या दूसरे उसके सम्बन्ध में कोई कार्य करने या कोई करने से बचने के लिए विधि द्वारा आबध्य य बाध्य होते है। इसका अर्थ है कि एक अधिकार का सदैव ही तदुरूपी कर्तवय होता है।

यह परिभाषा अपूर्ण है जैसा कि इसे देखने से प्रतीत होता है। क्योंकि इस परिभाषा में अपूर्ण अधिकारों के अधिकारां के लिए कोई सथान नहीं है।

सामंड– अधिकार को 1 दिन पहले से परिभाषित करता है। यह कहता है कि अधिकार योग्यता के नियम द्वारा मान्य और संरक्षित हित है यह कोई हित है। जिसका सम्मान करना कर्तव्य है और जिसकी अवहेलना करना एक दोस्त है। इस परिभाषा में दो मुख्य तत्व पहला अधिकारों के नियम या युक्ता के नियम का अर्थ है विधि नियम या दूसरे शब्दों में वह जो न्यायिक रूप में प्रवर्तनी होना चाहिए। इस प्रकार सामान्य के अनुसार एक अधिकार न्यायिक रूप से प्रवर्तनीय होना चाहिए, देसरे अधिकारी हित है अधिकार का निर्माण करने के लिए तत्व अनिवार्य है।

विधिक अधिकार के प्रमुख सिद्धान्त– विधिक अधिकार के मुख्यतः दो सिद्वांत निम्नाकित है

(1) **हित–सिद्धान्त–** इहरिंग ने विधिक अधिकार को "हित' पर आधारित माना है। उनके अनुसार विधिक अधिकार विधि द्वारा संरक्षित हित है।' विधि का मूल उद्देश्य मानवीय हितों का संरक्षण करते हुए मानव के परस्पर विरोधी

हितों के संघर्ष को टालना है। परन्तु सामण्ड ने इहरिंग द्वारा दी गई 'अधिकार' की परिभाषा को अपूर्ण मानते हुए कहा है कि विधिक अधिकार के लिए केवल विधिक संरक्षण दिया जाना ही पर्याप्त नहीं है अपितु उसे वैधानिक मान्यता भी प्राप्त होनी चाहिये। सामण्ड के विचार से पशुओं के प्रति क्रूरतापूर्ण व्यवहार करना विधि द्वारा निषिद्ध (prohibited) है तथा इसके लिए दोषी व्यक्ति को दण्डित किये जाने का प्रावधान है। अतरू क्या यह कहना उचित होगा कि पशुओं को आत्म सुरक्षा का विधिक अधिकार प्राप्त है? आशय यह है कि पशुओं सम्बन्धी इस अधिकार को विधिक संरक्षण प्राप्त है, परन्तु विधिक मान्यता प्राप्त न होने के कारण इसे 'विधिक अधिकार" की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है। यही कारण है कि सामण्ड ने पशुओं के इस अधिकार को केवल नैतिक अधिकार के रूप में ही स्वीकार किया है। सुविख्यात विधिशास्त्री ग्रे ने भी इसे केवल आंशिक रूप में स्वीकार करना ही उचित समझा। ग्रे के अनुसार 'अधिकार' स्वयं हित नहीं है अपितु 'हित' को संरक्षित करने वाला एक साधन मात्र है। ग्रे (Gray) के मतानुसार "यह वह शक्ति है जिसमें कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों को किसी कार्य या कार्यों को करने या न करने के लिए उस सीमा तक बाध्य कर सकता है, जहाँ तक समाज से उसे यह शक्ति अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों पर लागू करते हुए प्राप्त होती है।" कुछ न्यायविदों का कहना है कि अधिकार का मूल आधार षहितष है। **उदाहरण के लिए–** एक बच्चा जो जन्म लेता है और एक वर्ष का हो जाता है, उसके पास कानून के अनुसार कुछ अधिकार होते हैं क्योंकि यह ज्ञात है कि एक व्यक्ति को उस दिन से अधिकार दिए जाते हैं जब वह अपनी माँ के गर्भ में होता है। लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि उनके पास ष्इच्छाष है। अधिकार जो सुरक्षित करता है वह कोई इच्छा या विकल्प नहीं है, बल्कि उस व्यक्ति के लाभ के लिए कुछ हित है जो उस अधिकार को रखता है। हित को ''किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह का दावा या इच्छा कहा जा सकता है जिसे वह व्यक्ति या समूह संतुष्ट करना चाहता है। सीके एलन के अनुसार, ''कानूनी अधिकार का सार कानूनी रूप से गारंटीकृत शक्ति नहीं है, न ही कानूनी रूप से संरक्षित हित है, बल्कि हित को महसूस करने के लिए कानूनी रूप से गारंटीकृत शक्ति है''।कानून है जो बनाए गए अधिकारों को बनाता है, उनकी रक्षा करता है और उन्हें मान्यता देता है। इस प्रकार, कानूनी अधिकार की एक विशेषता इसकी मान्यता है। इसे एक कानूनी प्रणाली द्वारा मान्यता दी जाती है और एक कानूनी प्रक्रिया द्वारा लागू किया जाता है। हालाँकि, यह सिद्धांत कुछ योग्यताओं के अधीन है–

(1)कानून हमेशा अधिकार को लागू नहीं करेगा, बल्कि पीड़ित पक्ष को उपचार प्रदान करके क्षतिपूर्ति प्रदान करेगा।

(2) जहां तक कानूनी अधिकार के प्रवर्तन का प्रश्न है, कभी–कभी कानून स्वयं ही अक्षमता उत्पन्न कर देता है।

(3)कभी–कभी किसी कानूनी प्रणाली में अपने निर्णयों को लागू करने के लिए तंत्र का अभाव होता है।

इसलिए, उपरोक्त कठिनाइयों को देखते हुए कानूनी आदेश द्वारा मान्यता और संरक्षण के संदर्भ में कानूनी अधिकार को परिभाषित करना बेहतर होगा।

(2) इच्छा सिद्धान्त– हीगल, कान्ट तथा ह्यम आदि विधिशास्त्रियों ने विधिक अधिकार सम्बन्धी हित सिद्धान्त का समर्थन करते हुए कहा है कि किसी व्यक्ति का अधिकार उसकी इच्छा को प्रदर्शित करता है। पुश्ता ने यह विचार व्यक्त किया कि अधिकार के माध्यम से व्यक्ति किसी वस्तु पर अपनी इच्छा शक्ति को अभिव्यक्त करता है। जर्मनी के ऐतिहासिक विधिशास्त्र के समर्थकों ने अधिकार सम्बन्धी इच्छा सिद्धान्त को स्वीकार किया है।

ड्यूगिट ने इच्छा सिद्धान्त की आलोचना करते हुए सामाजिक समेकता (social solidarity) को ही अधिकार का मूल स्रोत माना है। वे इच्छा को अधिकार का एक महत्वपूर्ण तत्व मात्र मानते हैं। पैटन ने भी इच्छा को अधिकार के एक तत्व के रूप में ही स्वीकार किया है। हॉलैण्ड ने मत अनुसार "विधिक अधिकार किसी व्यक्ति में निहित वह क्षमता है जिससे वह राज्य की सहमति और सहायता से अन्य व्यक्तियों के कृत्यों को नियंत्रित करा सकता है।"

ऑस्टिन के अनुसार किसी व्यक्ति के अधिकार का अर्थ यह है कि दूसरे व्यक्ति उसके सम्बन्ध में कुछ करने या न करने के लिए विधि द्वारा बाध्य हैं। ऑस्टिन द्वारा दी गई अधिकार की यह परिभाषा राज्य की प्रभताशक्ति पर आधारित है। ऑस्टिन ने कर्त्तव्य की व्याख्या करते हुए कहा है कि यह एक ऐसा दायित्व है जिसकी अवहेलना की जाने पर इसके साथ सम्बद्ध शास्ति के कारण यह दण्डनीय है। परन्तु जॉन स्टुअर्ट मिल ने ऑस्टिन के उपर्युक्त विचार की आलोचना इस आधार पर की है कि अधिकार के साथ हित सन्निहित होना प्राय: अनिवार्य है। ''अधिकार मानव इच्छा का अंतर्निहित गुण है।'' आत्म–अभिव्यक्ति और आत्म–अभिकथन का अधिकार व्यक्ति की स्वतंत्रता का एक हिस्सा है जो मनुष्य और उसके व्यक्तित्व से अविभाज्य है। ऐसी प्राकृतिक स्वतंत्रता और स्वाधीनता के अभाव में मनुष्य असहाय महसूस करेगा। सभी प्राकृतिक अधिकार मनुष्य के जीवन में विकास के लिए आवश्यक हैं, बशर्ते कि मनुष्य इन अधिकारों का उपयोग अवैध चीजों के लिए न करे। इच्छा सिद्धांत को प्राकृतिक अधिकारों के सिद्धांत द्वारा विस्तारित किया गया, जिसने घोषित किया कि व्यक्तिगत जीवन के कुछ क्षेत्र हैं जिनमें राज्य कानूनी रूप से हस्तक्षेप नहीं कर सकता है। इस सिद्धांत के समर्थक हेगल, कांट, लॉक और ह्यूम हैं। दूसरी ओर, डुगिट ने आलोचना की कि कानून में इच्छा एक आवश्यक तत्व नहीं है। उनका कहना है कि व्यक्ति के दायित्वों की तुलना में उसके अधिकार पर अधिक जोर दिया जाता है। वे व्यक्तिपरक अधिकार के इस सिद्धांत को केवल एक भौतिक अमूर्तता कहते हैं।

कानूनी अधिकारों के तत्व

सर जॉन सैल्मंड के अनुसार, प्रत्येक कानूनी अधिकार के 5 आवश्यक तत्व हैं–

(1) **अंतर्निहित व्यक्ति–**इसे अधिकार के विषय के रूप में भी जाना जाता है। एक कानूनी अधिकार जो किसी व्यक्ति में निहित होता है और जिसे अधिकार के स्वामी, उसके विषय या 'अंतर्निहितष ष्व्यक्तिष के रूप में पहचाना जा सकता

है। इसलिए, विषय या उसके स्वामी के बिना कोई कानूनी अधिकार नहीं हो सकता। यहाँ, विषय का अर्थ है वह व्यक्ति जिसके पास अधिकार निहित हैं। इसलिए, विषय या उसके स्वामी के बिना अधिकार की कल्पना नहीं की जा सकती। अधिकार के स्वामी को निश्चित या निर्धारित होने की आवश्यकता नहीं है। एक अधिकार समाज के स्वामित्व में हो सकता है, बड़े पैमाने पर, अनिश्चित है।

(2) घटना का व्यक्ति– वह व्यक्ति जो कर्तव्य से बंधा होता है या कर्तव्य का विषय होता है, उसे घटना का व्यक्ति कहा जाता है।

(3) अधिकार की विषय–वस्तु–वह कार्य या चूक जो हकदार व्यक्ति के पक्ष में बाध्य व्यक्ति पर बाध्यकारी है, अधिकार की अंतर्वस्तु या सार के रूप में जाना जाता है।

(4) अधिकार की विषय–वस्तु–यह वह चीज है जिससे कार्य या चूक संबंधित है, जिस पर अधिकार का प्रयोग किया जाता है। इसे अधिकार का विषय–वस्तु कहा जाता है।

(5) अधिकार का शीर्षक–सैल्मंड ने पाँचवाँ तत्व भी दिया है, वह है 'शीर्षक'। उनका कहना है कि ''प्रत्येक कानूनी अधिकार का एक शीर्षक होता है, अर्थात कुछ तथ्य या घटनाएँ जिसके कारण वह अधिकार उसके स्वामी में निहित हो जाता है''। सैल्मंड द्वारा उद्धृत एक लोकप्रिय दृष्टांत कानूनी अधिकारों के उपर्युक्त सभी तत्वों को संतुष्ट करता है। यह इस प्रकार है– ''यदि A B से भूमि का एक टुकड़ा खरीदता है, तो । इस प्रकार अर्जित अधिकार का विषय या स्वामी है। सहसंबंधी अधिकार से बंधे हुए व्यक्ति सामान्य रूप से व्यक्ति हैं, क्योंकि इस प्रकार का अधिकार पूरी दुनिया के विरुद्ध है। अधिकार का संदर्भ खरीदार के भूमि के अनन्य उपयोग में हस्तक्षेप न करने में निहित है। अधिकार का उद्देश्य या विषय–वस्तु भूमि है। और अंत में, अधिकार का शीर्षक वह हस्तांतरण है जिसके द्वारा इसे उसके पूर्व स्वामी से प्राप्त किया गया था''।

<u>प्रश्न न0 2–</u> विधिक अधिकार के विभिन्न प्रकारों की विवेचना कीजिए। अधिकार और कर्त्तव्य के बीच के सम्बन्ध की व्याख्या कीजिए। मौलिक अधिकार एवं संवैधानिक अधिकार में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

<u>उत्तर–</u> विधिक अधिकार के प्रकार– विधिक अधिकार के निम्नलिखित प्रकार है–

(1) लोकलक्षी एवं व्यक्तिलक्षी अधिकार– 'रेम' का अर्थ हैं दुनिया और 'व्यक्तित्व' का अर्थ व्यक्ति। राइट इन रेम वह अधिकार है जो पूरी दुनिया के खिलाफ उपलब्ध है जबकि पर्सोना में अधिकार किसी व्यक्ति विशेष के खिलाफ है। व्यक्तित्व में अधिकार आमतौर पर संविदात्मक दायित्वों से उत्पन्न होता है। उदाहरण के लिए अनुबंध का उल्लंघन जबकि रेम में अधिकार आमतौर पर कानून का परिणाम होता है। उदाहरण के लिए टोर्ट, क्राइम। व्यक्तित्व में अधिकार आमतौर पर प्रकृति में क्षणभंगुर होता है, जिसे राइट इन रेम में स्थानांतरित किया जा सकता है। रेम में अधिकार एक अन्तिम चीज है, जबकि व्यक्तित्व में अधिकार प्रकृति में क्षणभंगुर है।

शुद्ध अर्थ में विधिक अधिकार का सम्बन्ध विधिक कर्तव्यों से है। हॉलैण्ड ने अधिकार को परिभाषित करते हुए कहा है कि किसी व्यक्ति में किसी विधिक अधिकार का होना तभी माना जाएगा यदि कोई अन्य एक या अनेक व्यक्ति उस व्यक्ति के प्रति कुद करने या न करने के लिए विधिक रूप से आबाध्य है, अर्थात् सहवर्ती कर्तव्य के बिना अधिकार का अस्तित्व संभव नहीं हैं। दूसरे शब्दों में अधिकार को ऐसा हित कहा जा सकता है जो विधि द्वारा मान्य होता है। तथा जिसका संरक्षण विधि द्वारा अन्य व्यक्तियों पर कर्तव्य अधिरोपित करके किया जाता है। सामण्ड के विचार से उपरोक्त नपे–तुले अर्थ के अतिरिक्त विधिक अधिकार का प्रयोग व्यापक अर्थ में भी किया जा सकता है। इस अर्थ में अधिकार का उपयोग स्वतन्त्रता, शक्ति या उन्मुक्ति के रूप में किया जा सकता है।

(2) व्यक्तिगत और स्वामित्व अधिकार– किसी व्यक्ति के मालिकाना अधिकारों में उसकी संपत्ति, उसकी परिसंपत्तियाँ और कई रूपों में उसकी संपत्ति शामिल होती है। मालिकाना अधिकारों का कुछ आर्थिक और मौद्रिक मूल्य होता है। मालिकाना अधिकार मूल्यवान होते हैं और व्यक्तिगत अधिकार नहीं। मालिकाना अधिकार किसी व्यक्ति की संपत्ति के तत्व होते हैं। व्यक्तिगत अधिकार केवल उसकी भलाई के तत्व होते हैं। मालिकाना अधिकारों का न केवल न्यायिक बल्कि आर्थिक महत्व भी होता है। व्यक्तिगत अधिकारों का केवल न्यायिक महत्व होता है।

(3) सकारात्मक और नकारात्मक अधिकार– जब कोई कर्तव्य, जो अधिकार से मेल खाता है, सकारात्मक कर्तव्य होता है, तो उस अधिकार को सकारात्मक अधिकार कहा जाता है। जिस व्यक्ति पर कर्तव्य निहित है, वह हकदार व्यक्ति की ओर से कुछ सकारात्मक कार्य करेगा। नकारात्मक अधिकार एक नकारात्मक कर्तव्य से मेल खाता है, अर्थात एक व्यक्ति किसी ऐसे कार्य से परहेज करेगा, जो हकदार व्यक्ति के प्रतिकूल हो। सकारात्मक अधिकार सकारात्मक रूप से लाभान्वित होने का अधिकार हैय नकारात्मक अधिकार केवल नुकसान न पहुँचाए जाने का अधिकार है। नकारात्मक अधिकार के मामले में, दूसरों को कुछ करने से रोका जाता है। सकारात्मक अधिकारों की संतुष्टि के परिणामस्वरूप मालिक की स्थिति में सुधार होता है। नकारात्मक अधिकारों के मामले में, मालिक की स्थिति को केवल उसी तरह बनाए रखा जाता है। कानून सकारात्मक लाभ के प्रवर्तन की तुलना में नुकसान की रोकथाम से अधिक चिंतित है। कमीशन के हानिकारक कृत्यों के लिए देयता सामान्य नियम है, लेकिन चूक के कृत्यों के लिए देयता छूट है।

(4) मूल और सहायक अधिकार– मूल अधिकार कानून के तहत व्यक्ति में निहित एक बुनियादी या मुख्य अधिकार है। वे महत्वपूर्ण और अमहत्वपूर्ण अधिकार जबकि गौण अधिक आकस्मिक या परिणाम अधिकार है ये आवश्यक नहीं, लेकिन अधिक बुनियादी सामान्य अधिकार के लिए स्पष्ट हैं।

(5) पूर्ण और अपूर्ण अधिकार– सैल्मंड के अनुसार,

(1) एक पूर्ण अधिकार वह है जो एक पूर्ण कर्तव्य के अनुरूप होता है। एक पूर्ण कर्तव्य वह है जिसे न केवल कानून द्वारा मान्यता प्राप्त है बल्कि कानून द्वारा लागू भी किया जाता है।
(2)सभी पूर्ण विकसित कानूनी प्रणालियों में, ऐसे अधिकार और कर्तव्य होते हैं जिन्हें कानून द्वारा मान्यता प्राप्त होने के बावजूद भी वे पूर्ण प्रकृति के नहीं होते हैं। उन अधिकारों को अपूर्ण अधिकार कहा जाता है।

अपूर्ण अधिकारों के उदाहरण हैं समय बीतने के कारण प्रतिबंधित दावे, विदेशी राज्यों या संप्रभुओं के खिलाफ दावे, ऐसे दावे जिन्हें लागू नहीं किया जा सकता क्योंकि वे न्यायालय के अधिकार क्षेत्र की स्थानीय सीमाओं के भीतर नहीं आते, संपत्ति से निष्पादक को देय ऋण जिसे वह प्रशासित करता है। इन मामलों में, अधिकार और कर्तव्य अपूर्ण हैं क्योंकि उनके रखरखाव के लिए कोई कार्रवाई नहीं है। एक अपूर्ण अधिकार बचाव के आधार के रूप में अच्छा हो सकता है, हालांकि कार्रवाई के आधार के रूप में अच्छा नहीं है। एक अपूर्ण अधिकार पूर्ण हो सकता है। कार्रवाई का अधिकार निष्क्रिय हो सकता है और अस्तित्वहीन नहीं हो सकता है।

(6) री–प्रोप्रोरिया में अधिकार और रे–एलिएना में अधिकार– पुनः–विमुखता में अधिकार, जिसे भार भी कहा जाता है, वह है जो समान विषय–वस्तु के संबंध में किसी अन्य व्यक्ति के कुछ अधिक सामान्य अधिकारों को सीमित करता है या उनसे वंचित करता है। अन्य सभी अधिकार पुनः–स्वामित्व में अधिकार हैं। किसी संपत्ति के स्वामी के पास पुनः–स्वामित्व में अधिकार या अपनी संपत्ति पर अधिकार होता है। गिरवी रखी गई संपत्ति के पास पुनः–विमुखता में अधिकार या किसी और की संपत्ति पर अधिकार होता है। पुनः–स्वामित्व में अधिकार किसी की अपनी संपत्ति में अधिकार होते हैं। पुनः–विमुखता में अधिकार किसी अन्य व्यक्ति की संपत्ति पर अधिकार होते हैं। ऋणभार के चार मुख्य वर्ग हैं– दासता, पट्टा, सुरक्षा और ट्रस्ट। दासता भूमि के एक टुकड़े के सीमित उपयोग का अधिकार है
जो स्वामित्व या कब्जे के बिना होता है। पट्टा एक व्यक्ति में निहित संपत्ति का ऋणभार है, जो दूसरे व्यक्ति में निहित कब्जे और उपयोग के अधिकार द्वारा होता है। • सुरक्षा एक ऋणदाता में ऋण की वसूली को सुरक्षित करने के उद्देश्य से अपने देनदार की संपत्ति पर निहित ऋणभार है। ट्रस्ट एक ऋणभार है जिसमें संपत्ति का स्वामित्व किसी अन्य व्यक्ति के लाभ के लिए उससे निपटने के लिए एक न्यायसंगत दायित्व द्वारा सीमित होता है। ऋणग्रस्त संपत्ति के मालिक को ट्रस्टी कहा जाता है और ऋणभार के मालिक को लाभार्थी कहा जाता है।

(7) निहित और समाश्रित अधिकार– निहित अधिकार वह अधिकार है जिसके संबंध में उसे स्वामी में पूर्णतः निहित करने के लिए आवश्यक सभी घटनाएँ घटित हो चुकी हैं। कोई अन्य शर्त पूरी करने की आवश्यकता नहीं है। आकस्मिक अधिकार के मामले में, आकस्मिक स्वामी में अधिकार निहित करने के लिए आवश्यक कुछ ही घटनाएँ घटित हुई हैं। **पैटन के अनुसार** ''जब अधिकारों को बनाने के लिए आवश्यक सभी निवेशात्मक तथ्य घटित हो चुके हैं, तो अधिकार निहित हो जाता हैय जब निवेशात्मक तथ्यों का कुछ भाग घटित हो चुका है, तो अधिकार तब तक आकस्मिक रहते हैं जब तक कि वे सभी तथ्य न हो जाएँ जिन पर शीर्षक निर्भर करता है।''

(8) कानूनी और न्यायसंगत अधिकार– कानूनी अधिकार वे हैं जिन्हें सामान्य कानून न्यायालयों द्वारा मान्यता दी जाती है और न्यायसंगत अधिकार वे अधिकार हैं जिन्हें केवल चांसरी न्यायालय में मान्यता दी जाती है। अंग्रेजी कानून में न्यायसंगतता के सिद्धांत विकसित किए गए ताकि सामान्य कानून की कठोरता को कम किया जा सके। न्याय अधिनियम 1873 द्वारा कानून और न्यायसंगतता के विलय के बावजूद, ऐतिहासिक अंतर अभी भी जीवित है और कुछ स्थितियों में प्रासंगिक है। जब दो कानूनी अधिकार असंगत पाए जाते हैं, तो आमतौर पर पहला अधिकार प्रबल होता है। जब एक कानूनी अधिकार और एक न्यायसंगत अधिकार संघर्ष में होते हैं, तो कानूनी अधिकार न्यायसंगत अधिकार पर प्रबल होगा, भले ही वह मूल रूप से बाद का हो, बशर्ते कि कानूनी अधिकार के मालिक ने इसे मूल्य के लिए और पूर्व न्यायसंगतता की सूचना के बिना हासिल किया हो।

(9) साकार और निराकार अधिकार– मूर्त अधिकार भौतिक संपत्तियां हैं जिन्हें देखा, छुआ और मापा जा सकता है, जबकि अमूर्त अधिकार गैर–भौतिक संपत्तियां हैं जो मूल्यवान अधिकारों और विशेषाधिकारों का प्रतिनिधित्व करती हैंरू मूर्त अधिकार वास्तविक संपत्ति के रूप में भी जाना जाता है, इन संपत्तियों की एक भौतिक उपस्थिति होती है और आमतौर पर दिन–प्रतिदिन के कार्यों में उपयोग की जाती हैं। उदाहरणों में शामिल हैंरू इन्वेंट्री और स्टॉक मशीनरी और उपकरण जैसी अचल संपत्तियाँ रियल एस्टेट वाहन नकद भूमि भवन फर्नीचर अमूर्त अधिकार गैर–मौद्रिक संपत्ति के रूप में भी जाना जाता है, इन संपत्तियों में भौतिक रूप की कमी होती है और ये केवल रिकॉर्ड और बैलेंस शीट पर मौजूद होती हैं। वे अपना मूल्य कानूनी या बौद्धिक संपदा अधिकारों से प्राप्त करते हैं। उदाहरणों में शामिल हैंरू बौद्धिक संपदा अधिकार पेटेंट लाइसेंस ब्रांड नाम जागरूकता प्रमुख अनुसंधान और विकास कर्मचारी कॉपीराइट ट्रेडमार्क सद्भावना ग्राहक सूची सॉफ्टवेयर मालिकाना तकनीक।

(10) प्राथमिक और स्वीकृति अधिकार– प्राथमिक अधिकारों को पूर्ववर्ती, स्वीकृत या आनंद अधिकार भी कहा जाता है। द्वितीयक अधिकारों को स्वीकृत, पुनर्स्थापन या उपचारात्मक अधिकार कहा जाता है। प्राथमिक अधिकारों के उदाहरण हैं प्रतिष्ठा का अधिकार, स्वयं के व्यक्ति के संबंध में अधिकार, मालिक या अभिभावक का अधिकार आदि। द्वितीयक अधिकार प्राथमिक अधिकारों को हुई क्षति के निवारण के लिए राज्य द्वारा प्रदान की गई मशीनरी का एक हिस्सा हैं।

(11) सार्वजनिक और निजी अधिकार– वे अधिकार जो राज्य या सरकार या संविधान द्वारा किसी व्यक्ति को दिए जाते हैं, सार्वजनिक अधिकार कहलाते हैं। उदाहरणरू वोट देने का अधिकार, सार्वजनिक पार्कों के उपयोग का अधिकार आदि।

निजी अधिकार निजी व्यक्तियों या व्यक्तियों से जुड़े होते हैं। उदाहरण– दो लोगों के बीच किया गया अनुबंध उनके निजी अधिकारों को जन्म देता है।

अधिकार और कर्तव्य में परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्रत्येक अधिकार के साथ एक सहवर्ती कर्तव्य जुड़ा रहता है। सामंड ने कर्तव्य की परिभाषा देते हुए कहा है कि यह एक ऐसा बन्धनकारी कार्य होता है। जिसका विरोध शब्द 'अपकार' है। दूसरे शब्दों में कर्तव्य भंग होने पर उत्पन्न होता है। कर्तव्य के सम्बनध विचार व्यक्त करते ग्रे ने कथन किया कि विधि मुख्य उद्देश्य है लोगों को कुछ विशिष्ट कार्यों को करने या न करने के लिए बाध्य कर के मानवीय हितों का संरक्षण किया जाए।

हिबर्ड के अनुसार 'कर्तव्य किसी व्यक्ति में निहित वह बाध्यता है जिसके कार्यों को किसी अन्य व्यक्ति द्वारा राजय की अनुमति तथा सहायता से नियंत्रित किया जाता है।

कर्तव्य और अधिकार में परस्पर सम्बन्ध– अधिकतर विधिशास्त्री इस बात से सहमत हैं कि प्रत्येंक अधिकार के साथ एक सहवर्ती कर्तव्य जुड़ा रहता है। अतः विधिक अधिकार और कर्तव्य के पस्पर सम्बन्ध के विषय कोई मतभेद नहीं है। आसिटन के अनुसार कर्तव्य सापेक्ष तथा निरपेक्ष दोनों ही प्रकार के हो सकते है। सापेक्ष कर्तव्यों से तात्पर्य उनका ऐसे कर्तव्यों से है जिसके साथ कोई सहवर्ती अधिकार तथ्य रहता है। आस्टिन ने निरपेक्ष कर्तव्यों के निम्नलिखित प्रकार बताए है–

(1) स्वयं से सम्बन्धित कर्तव्य जैसे किसी व्यक्ति का आत्महत्या न करने का कर्तवय, नशा न करने का कर्तव्य आदि।

(2) अनिश्चित लोगों या जनसाधारण के प्रति कर्तव्य जैसे न्यूसेंस न करने का कर्तव्य।

(3) ऐसे कर्तव्य जो मानव जाति के प्रति न होकर अन्य के प्रति होते है, जैसे ईश्वर के प्रति कर्तव्य या पशुओं के प्रति कर्तव्य आदि।

(4) संप्रभुताधारी या राज्य के प्रति कर्तव्य।

आस्टिन का गलत विचार है– आस्टिन क`मत की एक सूक्ष्म परीक्षा करने पर स्पष्ट होता है कि यह गलत है। उसके द्वारा उल्लिखित निरपेक्ष कर्तव्य विधिक अर्थ में कर्तव्य नहीं, या यदि वे कर्तव्य है तो भी वे निरपेक्ष नहीं है। ईश्वर के प्रति कर्तव्य कोई विधिक कर्तव्य नहीं है। यदि वह किसी स्टेटयूट में समाविष्ट नहीं है।

जब व्यक्ति को अधिकार दिया जाता है तो यह माना जाता है कि उस पर कुछ कर्तव्य भी लगाए गए हैं। अधिकार के अपने सहसंबद्ध कर्तव्य होते हैं। जब व्यक्ति का कर्तव्य होता है कि वह अपना कर्तव्य निभाए, तो दो तरह के कर्तव्य होते हैं, जब उसका कोई कानूनी कर्तव्य होता है, लेकिन नैतिक कर्तव्य के मामले में उसका कोई दायित्व नहीं होता। यह व्यक्ति के विवेक पर निर्भर करता है। कर्तव्यों को निरपेक्ष और सापेक्ष कर्तव्य, सकारात्मक और नकारात्मक कर्तव्य और प्राथमिक और द्वितीयक कर्तव्य में वर्गीकृत किया गया है।

आधार	**मौलिक अधिकार**	**संवैधानिक अधिकार**
अर्थ	मौलिक अधिकार अधिकारों का एक समूह है जो एक सम्मानजनक मानव जीवन जीने के लिए जन्मजात आवश्यकताएं हैं।	संवैधानिक अधिकार भारतीय संविधान में भारत के लोगों को दिए गए अधिकार हैं। इसमें मौलिक अधिकार भी शामिल हैं।
अधिकारों का त्याग	छूट किसी दिए गए अधिकार को जानबूझकर त्यागने या त्यागने की प्रक्रिया है। मौलिक अधिकारों की छूट की अनुमति नहीं है जैसा कि बेहराम खुर्शीद पेसिकका बनाम बॉम्बे राज्य, 24 सितंबर, 1954 *में पहली बार कहा गया था* /	भारत में संवैधानिक अधिकारों का हनन नहीं किया जा सकता। हालाँकि, संयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय ने अधिकारों के हनन की अनुमति दी है। **गेटे बनाम आई.एन.एस.**, 121 एफ.3डी 1285, 1293 (9वाँ सर्किट 1997)
संशोधनीयता	मौलिक अधिकारों में संविधान संशोधन द्वारा संशोधन किया जा सकता है बशर्ते कि संविधान का मूल ढांचा अक्षुण्ण रहे।	संवैधानिक अधिकारों को संवैधानिक संशोधन द्वारा संशोधित किया जा सकता है, जबकि कानूनी अधिकारों को साधारण संशोधन द्वारा संशोधित किया जा सकता है।
आपातकाल के दौरान स्थिति	आपातकाल के दौरान अनुच्छेद 20 और अनुच्छेद 21 को छोड़कर सभी मौलिक अधिकार निलंबित कर दिए जाते हैं। अनुच्छेद 32(4) के अनुसार, संविधान में निर्धारित शर्तों यानी आपातकालीन प्रावधान के अलावा किसी अन्य आधार पर मौलिक अधिकारों को निलंबित नहीं किया जा सकता है।	आपातकालीन अवधि के दौरान सभी संवैधानिक अधिकार निलंबित नहीं होते हैं।

बंधन	उस विशेष अनुच्छेद में निहित मौलिक अधिकारों पर कुछ उचित प्रतिबंध लगाए गए हैं। उदाहरण के लिए- अनुच्छेद 21 जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार की गारंटी देता है, लेकिन यह " *कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया" के अधीन है।*	अनुच्छेद में निर्दिष्ट अधिकारों के अलावा, संवैधानिक अधिकार भी लोक सभा की इच्छा पर लगाए गए वैधानिक प्रतिबंधों के अधीन हैं। उदाहरण के लिए- अनुच्छेद 300 ए के तहत संपत्ति के अधिकार को 'कानून के अधिकार से' छीना जा सकता है। अगर यह मौलिक अधिकार होता तो ऐसा संभव नहीं होता।
अधिकारों से वंचित किये जाने पर उपाय	यदि किसी व्यक्ति को संविधान के भाग III के तहत अधिकारों से वंचित किया जाता है तो वह अनुच्छेद 32 के तहत सर्वोच्च न्यायालय या अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय में याचिका दायर कर सकता है।	किसी भी संवैधानिक अधिकार के उल्लंघन पर भी अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया जा सकता है।
उदाहरण	मौलिक अधिकारों के उदाहरणों में शामिल हैं: निजता का अधिकार बुनियादी शिक्षा का अधिकार संवैधानिक उपचार पाने का अधिकार	संवैधानिक अधिकारों के उदाहरणों में शामिल हैं: संपत्ति का अधिकार विधायी विशेषाधिकार लोक सभा में कुछ वर्गों के लिए सीटों का आरक्षण

प्रश्न न0 3– स्वामित्व की अवधारणा की व्याख्या की विकास कीजिए कीजिए। स्वामित्व की अवधारणा की परिभाषा विस्तार में दीजिए।

उत्तर– स्वामित्व शब्द से कल्पना में संपत्ति की छवि उभरती है, संपत्ति जिसके बिना स्वामित्व या कब्जा नहीं हो सकता। आरंभिक समय में जब मनुष्य खानाबदोश थे और उनके पास खेती और सभ्यता का कौशल नहीं था, तब स्वामित्व की अवधारणा कभी भी मन में नहीं आई। हालाँकि, स्वामित्व की अवधारणा स्वामित्व की अवधारणा से पहले ही तैयार की गई थी और वह भी तभी जब मनुष्य ने खेती करना शुरू किया।

भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने गुरु दत्त शर्मा बनाम बिहार राज्य मामले में कानूनी अवधारणा के रूप में संपत्ति को परिभाषित किया है, 'अधिकारों का एक समूह और मूर्त संपत्ति के मामले में इसमें कब्जा करने का अधिकार, आनंद लेने का अधिकार, नष्ट करने का अधिकार, रखने का अधिकार, अलग करने का अधिकार आदि शामिल होंगे।' और संपत्ति की स्पष्ट अवधारणा के साथ–साथ कब्जा और स्वामित्व के विचार भी आते हैं।

स्वामित्व की अवधारणा–

सभ्यता के विकास के साथ, मनुष्य खेती करने और अपना भोजन स्वयं बनाने और एक स्थान पर रहने के लिए बस गए, उन्होंने स्वामित्व के विचार को विकसित करना शुरू कर दिया और 'मेरा और तेरा' शब्दों को मान्यता दीख्1,। पहले कब्जा करने की अवधारणा आई और फिर स्वामित्व की अवधारणा विकसित हुई। रोमन कानून में दो अलग–अलग शब्द थे 'पॉजेसियो'श, जो किसी चीज पर भौतिक नियंत्रण को दर्शाता है और श्डोमिनियमश जो किसी चीज पर पूर्ण अधिकार को दर्शाता है। होल्ड्सवर्थ के अनुसार, अंग्रेजी कानून में पूर्ण अधिकार के रूप में स्वामित्व कब्जे के कानून में विकास के माध्यम से विकसित हुआ और श्स्वामित्वश शब्द का पहली बार अंग्रेजी कानून में 1583 में इस्तेमाल किया गया था।

परिभाषा

स्वामित्व को कई न्यायविदों द्वारा परिभाषित किया गया है, कुछ का मानना है कि यह एक व्यक्ति और उसके पास निहित अधिकार के बीच का संबंध है और कुछ का मानना है कि यह एक व्यक्ति और उस चीज के बीच का संबंध है जो स्वामित्व का उद्देश्य है।

ऑस्टिन–उनके अनुसार, स्वामित्व का अर्थ है एक ऐसा अधिकार जो हर उस व्यक्ति के विरुद्ध लागू होता है जो कानून के अधीन है जो किसी चीज को अनिश्चित प्रकृति के उपयोग के लिए रखने का अधिकार देता है। और उपयोग के मामले में अनिश्चित, निपटान के मामले में अप्रतिबंधित और अवधि के मामले में असीमित अधिकारश जब पूर्ण स्वामित्व की बात आती है।

ऑस्टिन की स्वामित्व की परिभाषा में तीन विशेषताएँ हैं–

उपयोग के मामले में अनिश्चित– इसका मतलब है कि मालिक अपनी इच्छानुसार संपत्ति का उपयोग कर सकता है। उदाहरण के लिए, यदि किसी व्यक्ति के पास जमीन का एक टुकड़ा है, तो वह उस पर घर बना सकता है, उसे बगीचे के रूप में इस्तेमाल कर सकता है या उसे ऐसे ही छोड़ सकता है। लेकिन साथ ही, उसे अपने पड़ोसियों को नुकसान पहुँचाने के लिए इसका इस्तेमाल नहीं करना चाहिए।

विनिमय के मामले में अप्रतिबंधित– मालिक के पास बिना किसी प्रतिबंध के हस्तांतरण या निपटान का अधिकार है। हालाँकि कानूनी व्यवस्थाएँ कुछ हस्तांतरण या निपटान पर कुछ प्रतिबंध लगाती हैं।

अवधि के मामले में असीमित– मालिक के पास तब तक स्वामित्व का अधिकार होता है जब तक कि वस्तु अस्तित्व में है और जैसे ही वस्तु नष्ट हो जाती है, अधिकार समाप्त हो जाता है।

सामंड–उनके अनुसार, ''स्वामित्व, अपने सबसे व्यापक महत्व में, एक व्यक्ति और उसके पास निहित अधिकार के बीच संबंध को दर्शाता है। एक व्यक्ति के पास जो कुछ भी है, वह सभी मामलों में एक अधिकार है।''श साथ ही वे

कहते हैं कि 'हर अधिकार का स्वामित्व होता है, और अधिकार के अलावा किसी और चीज का स्वामित्व नहीं हो सकता। हर व्यक्ति अपने अधिकारों का स्वामी है।'
उन्होंने भौतिक और अमूर्त स्वामित्व के बीच भी अंतर किया, 'हालाँकि स्वामित्व का विषय–वस्तु अपने व्यापक अर्थ में सभी मामलों में एक अधिकार है, लेकिन इस शब्द का एक संकीर्ण अर्थ है जिसमें हम भौतिक चीजों के स्वामित्व की बात करते हैं। हम जमीन या चल–अचल संपत्ति में अधिकार नहीं, बल्कि स्वामित्व, अधिग्रहण या हस्तांतरण की बात करते हैं, बल्कि 'स्वामित्व' का सबसे सामान्य अर्थ है। हम इसे भौतिक स्वामित्व के नाम से पुकारते हैं ताकि इसे अधिकारों के स्वामित्व से अलग किया जा सके जिसे 'अमूर्त स्वामित्व' कहा जा सकता है।
हॉलैंड–उन्होंने स्वामित्व के बारे में ऑस्टिन के दृष्टिकोण का अनुसरण किया और उनके अनुसार एक मालिक के पास तीन प्रकार की शक्तियाँ होती ह; कब्जा, आनंद और स्वामित्व जिनमें से सभी या कुछ को पट्टे या बंधक द्वारा खोया जा सकता है।
हिल्बर्ट–उनके अनुसार, स्वामित्व में चार अधिकार शामिल हैं जो वस्तु का उपयोग करने का अधिकार, दूसरों को इसका उपयोग करने से रोकने का अधिकार, वस्तु के निपटान का अधिकार और वस्तु के विनाश का अधिकार हैं। इस संबंध में भूमि पर पूर्ण स्वामित्व संभव नहीं है क्योंकि भूमि अविनाशी है, यही कारण है कि अंग्रेजी कानून में भूमि में कानूनी हित हो सकता है।
पोलक–उनके अनुसार, 'स्वामित्व को कानून द्वारा अनुमत उपयोग और निपटान की शक्तियों की संपूर्णता के रूप में वर्णित किया जा सकता है।'
मार्कबी के अनुसार किसी वस्तु पर स्वामित्व होना यह दर्शाता है कि उस वस्तु से सम्बन्धित समस्त अधिकार उस व्यक्ति में निहित है। अतः सपष्ट है कि स्वामित्व किसी व्यक्ति और वस्तु के बीच ऐसे सम्बन्धों का प्रतीक है जो उस वस्ततु से सम्बन्धित समस्त अधिकार उस व्यक्ति में निहित करता है। परन्तु मार्कबी स्वामित्व को अधिकार का संकलित योग्य मानते हुए स्वतन्त्र व्यापक अधिकार के रूप में मानते है।
स्वामित्व के लक्षण– स्वामित्व के निम्नलिखित लक्षण होते हैं–
(1) स्वामित्व या तो पूर्ण होता है या सीमिति होता है जब एक ही वस्तु या सम्पत्ति के अनेक सहस्वामी होते है तो प्रत्येक स्वामी का अधिकार दूसरे सहस्वामी के अधिकार द्वारा सीमित हो जाता है।
(2) राष्ट्रीय संकट काल में भी स्वामित्व सीमित हो जाता है। उदाहण के लिए, युद्ध काल में सेना के लिए भवनों को अर्जित किया जा सकता है।
(3) स्वामी को अपने स्वामित्व के उपयोग के लिए राज्य को भी कर देना पड़ता है। अतः कर भी स्वामित्व को सीमित करता है।
(4) कोई भी स्वामी अपने स्वामित्व के अधिकार का प्रयोग इस प्रकार नहीं करता कि जिससे दूसरे स्वामियों के अधिकारों के अधिकारों का उल्लंघन हो। अपने अधिकार का उपयोग इस प्रकार करना चाहिए कि जिससे अन्य लोगों को क्षति न पहुँचे।
(5) स्वामी का यह भी स्वतन्त्रता है कि जिस तरह चाहे उसी तरह अपनी सम्पति को कभी हस्तांतरित करे। वह अपने ऋणदाताओं को धोखा देने के लिए अपनी सम्पत्ति को कभी हस्तातरित नहीं कर सकता।
(6) विधि के अन्तर्गत नाबलिंग अथवा पागल व्यक्ति स्थावर सम्पत्ति पर स्वामित्व के अधिकार का प्रयोग नहीं कर सकते क्योंकि विधिक धारणा यह है कि इस प्रकार के व्यक्ति को अपने कार्यों की वास्तविक प्रकृति तथा उसके परिणामों को समझने की क्षमता नहीं रखते।

स्वामित्व की प्रकृति और घटनाएँ

स्वामित्व की अवधारणा का विश्लेषण करने पर कुछ विशेषताएँ मिल सकती हैं जो स्वामित्व की प्रकृति या विशेषताओं जैसे उपयोग, आनंद, निपटान आदि को प्रकट करती हैं। स्वामित्व की प्रकृति इस प्रकार हैः –
उपयोग के बिंदु पर यह अनिश्चित है, अर्थात, उपयोगकर्ता स्वामित्व वाली वस्तु का किसी भी तरह से उपयोग कर सकता है और इसका उपयोग न करने के लिए बाध्य नहीं है। उपयोगकर्ता इसका उपयोग करने के लिए स्वतंत्र है। यह निपटान के बिंदु पर अप्रतिबंधित है। स्वामी अपने जीवनकाल के दौरान या यहाँ तक कि अपनी मृत्यु के बाद भी वसीयत के माध्यम से संपत्ति को हस्तांतरित या निपटान कर सकता है।
स्वामी को स्वामित्व वाली वस्तु पर अधिकार रखने का अधिकार है, हालाँकि यदि वह वास्तव में उस पर अधिकार रखता है।

प्रश्न न0 4– स्वामित्व के अर्जन के विभिन्न तरीके की व्याख्या कीजिए तथा आस्टिन के अनुसार आवश्यक तत्वों की विवेचना कीजिए। स्वामित्व के प्रकार की व्याख्या कीजिए।

उत्तर– स्वामित्व के अर्जन के तरीके– प्राचीन हिन्दू विधिशास्त्रियों ने स्वामित्व के अर्जन की नीतियों के बारे में कुछ लिखा है। नारद ने सम्पत्ति के स्वामित्व के अर्जन के 12 तरीके बताए है, किन्तु यह सभी तरीके सभी वर्णों के लिए नहीं थे। उनमें से कुड तरीके केवल विशिष्ट वर्गों के लिए ही थे।

रोमन विधि में भी स्वामित्व के अर्जन की ऐसी ही रीतियाँ विहित की गई हैं जिनमें से बहुत सी अब भी मान्य हैं और उनमें से कुछ फेरबदल के साथ विद्यामान है। स्वामित्व के सन्दर्भ में वस्तुएं दो प्रकार की हो सकती है। ऐसी वस्तुएं जिनका स्वामित्व किसी व्यक्ति में न हो। ऐसी वस्तुएं स्वामीहीन सम्पत्ति कहलाती है तथा इन्हें कब्जे में लेकर इन पर स्वामित्व अर्जित किया जा सकता है, परन्तु ऐसी स्थिति पर जो पहले से किसी व्यक्ति के स्वामित्व में

है, व्युत्पन्न रीति से स्वामित्व प्राप्त किया जा सकता है। सामण्ड ने स्वामित्व अर्जन करने के दो प्रकार बताए है– पहला विधि के अर्जन द्वारा स्वामित्व अर्जित करना, दूसरा किसी कृत्य या घटना के फलस्वरूप स्वामित्व स्वामित्व का अर्जन।

यदि कोई व्यक्ति निरवसीयता सम्बन्धी विधि के प्रवर्तन से अथवा दिवाला सम्बन्धी कानून के प्रवर्तन के कारण किसी अन्य के सम्पत्ति पर स्वामितव प्राप्त करता है, तो ऐसा स्वामित्व विधि की क्रिया द्वारा अर्जित कहा जाता जाएगा। परन्तु यदि कोई व्यक्ति किसी वस्तु का निर्माण करता है या उसे किसी अन्य व्यक्ति से प्राप्त है, तो ऐसा स्वामित्व उस व्यक्ति के कृत्य द्वारा अर्जित कहलाएगा।

प्राचीन तथा मध्यकालीन इग्लिश विधि में भूमि तथा चल सम्पत्ति के कब्जे को ही महत्व दिया गया था। कब्जे की भाँति स्वामित्व एक जटिल न्यायिक संकल्पना है। विभिन्न विधिक अधिकारों में स्वामित्व का अधिकार विशेष महत्व रखता है। प्राचीन विधि व्यवस्था में स्वामित्व और कब्जे के अर्थ तथा भेद के विषय में विधिवेताओं के विचार स्वष्ट नहीं थे, फिर भी रोमन विधि के अन्तर्गत इन दोनों को एक–दूसरे से भिन्न माना गया था। रोमन विधि में स्वामित्व के लिए डोमिनियम तथा कब्जे के लिए पजेशिओ शब्दों का प्रयोग किया गया था। रोमन विधि के अन्तर्गत स्वामित्व किसी वस्तु पर पूर्ण अधिकार का द्योतक है, जबकि कब्जा उस वस्तु पर केवल भौतिक नियंत्रण का ही प्रदर्शित करता है। मेटरलैंड के अनुसार इग्लिश विधि में स्वामित्व शब्द का प्रयोग सबसे सन 1583 ई0 में किया जाता है।

उपर्युक्त विवेचना से यह स्पष्ट है कि रोमन–विधि स्वामित्व के पूर्ण अधिकार को कब्जे पर आधारित नहीं मानती, जबकि इंग्लिश विधि में कब्जे को ही स्वामित्व का ठोस एवं प्रबल प्रमाण माना गया है। अतः जब कोई व्यक्ति किसी वस्तु पर कब्जाधारी के स्वामित्व की तुलना में अधिक अधिकार सिद्ध नहीं कर देता, त बवह स्पष्ट तौर पर कब्जाधारी का ही स्वामित्व माना जाएगा।

स्वामित्व सम्बन्धी आस्टिन के विचार– आस्टिन ने सवामित्व की व्याख्या करते हुए लिखा है कि स्वामित्व किसी निश्चित वस्तु पर ऐसा अधिकार है जो उपयोग की दृष्टि से अनिश्चित, व्ययन की दृष्टि से अनिर्वधित तथा अवधि की दृष्टि से असीमित है। इस दर्शाता है। आस्टिन के अनुसार स्वामित्व में निम्नलिखित तत्व होना आवश्यक है–

(1) उपयोग की दृष्टि से अनिश्चित– किसी वस्तु के स्वामी को यह पूर्ण अधिकार होता है कि वह उस वस्तु का मनचाहा उपयोग करे। कोई भी अन्य व्यक्ति उसके उपयोग–उपभोग में अनावश्यक विघ्न उत्पन्न नहीं कर सकता है। इसके लिए यह आवश्यक है कि स्वामी द्वारा वस्तु का उपयोग उपभोग इस प्रकार किया जाए कि वह अन्य व्यक्तियों को क्षति या न्यूसेन्स कारित ना करें।

(2) व्यसन की दृष्टि से अनिर्बन्धित– किसी वस्तु के स्वामी को यह अधिकार होता है कि वह उस वस्तु का मनचाहा व्ययन (disposal) या अन्तरण करे, जैसे–विक्रय, बन्धक, दान आदि। कोई व्यक्ति उसको ऐसे व्ययन या अन्तरण से तब तक इन्कार नहीं कर सकता है जब तक कि उस पर विधितया कोई भार (charge) या निर्बन्धन (restriction) अधिरोपित नहीं किया गया है।

(3) अवधि की दृष्टि से असीमित– स्वामित्व एक शाश्वत अधिकार है। उसका कभी अन्त नहीं होता। यहाँ तक कि स्वामी की मृत्यु के पश्चात भी वह उसके विधिमान्य वारिसों में निहित रहता है।

भारतीय विधि के अन्तर्गत स्वामित्व की स्थिति– अन्य देशों की भारतीय विधि व्यवस्था में भी सम्पत्ति पर स्वामित्व के अधिकार को मान्यता दी गई है। परन्तु भारत में कोई भी व्यक्ति किसी वस्तु पर अन्यत्र स्वामित्व नहीं रख सकता क्योंकि इस देश में स्वामित्व का अधिकार संविधियों तथा विनियमों द्वारा निर्बधित रख गया है। भूमि की अधिकतम सीमा सम्बन्धी कानून, भाड़ा नियंत्रण अधिनियम, बैंक राष्ट्रीयकरण तथा कम्पनी विधान आदि इसके प्रत्यक्ष उदाहरण है। प्राचीन हिन्दू विधि में भी व्ययन अप्रतिबंधित अधिकार को स्वामित्व का महत्व घटक माना गया है। कत्यायन के अनुसार स्वामी का व्ययन सम्बन्धी असीमित थी तथा उस पर कोई निर्बधन नहीं लगाया जा सकता है।

स्वामित्व के प्रकार– स्वामित्व निम्नलिखित प्रकार का होता है–

(1) **मूर्त तथा अमूर्त स्वामित्व–**सामण्ड ने स्वामित्व शब्द का प्रयोग दो अर्थों में किया है– सीमित अर्थ में तथा व्यापक अर्थ में। सीमित अर्थ में स्वामित्व का आशय भौतिक वस्तुओं से होता है। जब किसी व्यक्ति को भौतिक वस्तुओं पर स्वामित्व प्राप्त हो तब उसे मूर्त स्वामित्व (corporeal ownership) कहते हैं। पार्थिव या मूर्त वस्तु से तात्पर्य उन वस्तुओं से है जिन्हें आँखों द्वारा देखा, परखा या स्पर्श किया जा सकता है, जैसे– भूमि, मकान, सिक्के आदि।

पोलक (Pollock) के अनुसार 'मूर्त स्वामित्व' से आशय पार्थिव वस्तु के वैध प्रयोग के पूर्ण अधिकार से है।

व्यापक अर्थ में दृ स्वामित्व किसी व्यक्ति और उसमें निहित अधिकार का सूचक है। यह अधिकार वैयक्तिक, साम्पत्तिक (proprietary), लोक–लक्षी (in rem) अथवा व्यक्ति–लक्षी (in personam) इनमें से किसी भी स्वरूप का हो सकता है। अधिकार एक ऐसी अमूर्त संकल्पना है जिसकी अनुभूति आँखों द्वारा नहीं की जा सकती।

उदाहरण– पेटेन्ट, कॉपीराइट, मार्गाधिकार, दिये गये ऋण की राशि प्राप्त करने का अधिकार, आदि। अमूर्त स्वामित्व की विषय–वस्तु कोई मूर्त वस्तु न होकर अधिकार जैसी अमूर्त धारणा होती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि भौतिक वस्तु के स्वामित्व को मूर्त स्वामित्व कहते हैं, जबकि किसी अधिकार के स्वामित्व को अमूर्त स्वामित्व कहा जाता है।

उदाहरण– यदि किसी व्यक्ति की जेब में दस रुपये हैं, तो उसका उन रुपयों पर 'मूर्त स्वामित्व' होगा क्योंकि ये रुपये मूर्त वस्तु हैं जिसकी अनुभूति आँखों द्वारा की जा सकती हैद्य परन्तु यदि उस व्यक्ति को अपने ऋणी से दस रुपये लेने हैं, तो उस ऋण राशि को प्राप्त करने के उसके अधिकार को अमूर्त स्वामित्व कहा जायेगा क्योंकि इस अधिकार को आँखों से अनुभव नहीं किया जा सकता है।

(2) न्यास स्वामित्व तथा हितप्रद स्वामित्व– सम्पत्ति का न्यास दोहरे स्वामित्व (duplicate ownership) का एक अनोखा उदाहरण है। न्यास सम्पत्ति पर एक ही समय दो व्यक्तियों का स्वामित्व होता है। जैसे– एक तो न्यासी (trustee) उस सम्पत्ति पर स्वामित्व रखता है व दूसरी ओर हिताधिकारी को भी उस सम्पत्ति पर स्वामित्व प्राप्त होता है। न्यास सम्पत्ति न्यासी के स्वामित्व को 'न्यास–स्वामित्व' कहते हैं तथा उस सम्पत्ति पर हितग्राही के स्वामित्व को हितप्रद स्वामित्व कहा जाता है। वस्तुतः न्यासी का स्वामित्व हितग्राही के कल्याण के लिए ही होता है, जिससे वह नाम मात्र का स्वामी होता है तथा न्यास सम्पत्ति का उपयोग स्वयं के लाभ के लिए नहीं कर सकता है। न्यास सम्पत्ति का वास्तविक स्वामित्व हितग्राहियों में निहित होता है, अर्थात् सम्पत्ति हितग्राही की होती है, न कि न्यासी की। न्यासी तो न्यास सम्पत्ति से सम्बन्धित हितग्राही के अधिकारों का केवल प्रतिनिधित्व या प्रबंधन करता है, अन्यथा भी हितग्राही को छोड़कर किसी तीसरे व्यक्ति के बजाय न्यास के स्वामित्व को विधिक प्राथमिकता प्राप्त है। न्यास के सम्बन्ध में सामण्ड ने कहा कि– इसका मुख्य उद्देश्य उन व्यक्तियों के अधिकारों और हितों को संरक्षण देना है, जो किसी कारणवश स्वयं प्रभावी रूप से अपने हितों का संरक्षण करने में असमर्थ हैं।

(3) विधिक स्वामित्व तथा साम्यिक स्वामित्व–विधिक स्वामित्व तथा साम्यिक स्वामित्व का भेद इंग्लैण्ड के कॉमन लॉ तथा साम्या विधि पर आधारित है। कई बार किसी एक ही वस्तु पर एक व्यक्ति का स्वामित्व होता है और दूसरे का उस पर साम्यिक स्वामित्व हो सकता है। उदाहरण के रूप में– किसी न्यासी का स्वामित्व विधिक स्वामित्व होता है, जबकि हितग्राही का स्वामित्व साम्या द्वारा मान्य होने के कारण साम्यिक स्वामित्व माना जाता है। सारांश यह है कि जिस स्वामित्व का उद्‌भव कॉमन लॉ के नियमों से हुआ है उसे 'विधिक स्वामित्व' कहते हैं और जिस स्वामित्व की उत्पत्ति साम्या के नियमों से हुई है, उसे 'साम्यिक स्वामित्व' कहा जाता है। कॉमन लॉ ने साम्यिक स्वामित्व को मान्य नहीं किया था तथा इसे केवल चांसरी न्यायालय ने मान्यता प्रदान की थी।

(4) एकल स्वामित्व तथा सह स्वामित्व– यदि स्वामित्व का अधिकार एक ही व्यक्ति में निहित होता है तब ऐसे स्वामित्व को 'एकल स्वामित्व' कहते है। लेकिन स्वामित्व का अधिकार दो या दो से अधिक व्यक्तियों में संयुक्त रूप से निहित हो, तो उस दशा में प्रत्येक के स्वामित्व को 'सह–स्वामित्व' कहा जायेगा। इसका आशय यह कभी नहीं है कि सभी व्यक्ति उस सम्पत्ति के किसी हिस्से के पृथक्–पृथक् स्वामी हैं। स्वामित्व का अधिकार एक अविभाज्य अधिकार है जो एक साथ अनेक व्यक्तियों में संयुक्त रूप से निहित हो सकता है। लेकिन बँटवारे द्वारा स्वामित्व के अधिकार को पृथक्–पृथक् हिस्सों में विभाजित किया जा सकता है।

सह स्वामित्व (co & ownership) के दो प्रमुख भेद है–

(क) सामान्य या एक ही स्वामित्व– सामान्य या एक ही स्वामित्व में दो या दो से अधिक अधिक व्यक्ति एक साथ किसी भूमि या वस्तु पर अपना स्वामित्व रखते हैं। उनका कब्जा अविभाजित रहता है और उनमें से प्रत्येक व्यक्ति अन्य सह–स्वामियों के साथ उस भूमि या वस्तु का स्वामी होता है। सामान्य स्वामित्व में किसी एक सह–स्वामी की मृत्यु के बाद उसका अधिकार उसके उत्तराधिकारी को प्राप्त हो जाता है। सामान्य स्वामित्व को सह आभोग (tenancy in common) भी कहते हैं।

(ख) संयुक्त स्वामित्व–संयुक्त स्वामित्व में किसी सह–स्वामी की मृत्यु हो जाने पर उसका स्वामित्व (ownership) भी समाप्त हो जाता है तथा शेष जीवित सह–स्वामी उत्तरजीविता के अधिकार (right of survivorship) के आधार पर उस सम्पत्ति के पूर्ण स्वामी हो जाते हैं। इसके सह–स्वामी की मृत्यु के बाद उत्तराधिकारी को स्वामित्व प्राप्त नहीं होता, अपितु वह शेष जीवित सह–स्वामियों में अन्तरित हो जाता है। संयुक्त स्वामित्व को संयुक्त आभोग भी कहा जाता है। किसी भागीदारी फर्म में भागीदारों (Partner) का स्वामित्व संयुक्त स्वामित्व होता है।

(5) निहित स्वामित्व तथा समाश्रित स्वामित्व–ऐसा स्वामित्व जिसमे स्वामित्व प्राप्त करने सम्बन्धी सभी बातें पूर्ण हो जाती हैं तथा स्वामी का हक पहले से ही पूर्ण रहता है तो वह स्वामित्व निहित स्वामित्व (अमेजमक वूदमतीपच) कहलाता है। जैसे–यदि कोई व्यक्ति अपनी सम्पत्ति किसी दूसरे व्यक्ति को अन्तरित कर देता है, तो उस दूसरे व्यक्ति को उस सम्पत्ति पर निहित स्वामित्व प्राप्त होगा। निहित स्वामित्व में स्वामी को पूर्ण अधिकार (absolute right) प्राप्त हो जाते है। इसी प्रकार यदि स्वामित्व प्राप्त करने सम्बन्धी कुछ बातें घटित या पूर्ण हो जाती हैं लेकिन कुछ का पूर्ण होना या न होना शेष रह जाता है, तो ऐसा स्वामित्व समाश्रित स्वामित्व कहलाता है। समाश्रित स्वामित्व में स्वामी केवल सशर्त स्वामी होता है। उदाहरण दृ यदि कोई व्यक्ति अपनी वसीयत में यह उल्लेख करता है कि उसकी मृत्यु के पश्चात् उसकी जायदाद उसकी पत्नी को (पत्नी के जीवन–पर्यन्त) सौंपी जाये तथा पत्नी की मृत्यु के पश्चात् वह जायदाद 'क' को सौंपी जाये और यदि 'क' उस समय तक मृत हो, तो उसे 'ख' को सौंपा जाये, तो उस दशा में 'क' और 'ख' दोनों ही उस सम्पत्ति के समाश्रित स्वामी होंगे क्योंकि 'क' को सम्पत्ति तभी मिलेगी जब वसीयतकर्ता की पत्नी की मृत्यु हो जाये और 'क' उस समय जीवित हो। इसी प्रकार 'ख' को सम्पत्ति तभी मिलेगी जब वसीयतकर्ता की पत्नी और 'क' दोनों ही की मृत्यु हो जाये और 'ख' जीवित रहे ।

इसका सारांश यह है कि समाश्रित स्वामित्व में सम्पत्ति का स्वामित्व किसी विनिर्दिष्ट अनिश्चित घटना के घटित होने या ना होने पर ही स्वामी में निहित होता है। स्वामी का समाश्रित स्वामित्व विनिर्दिष्ट घटना के घटित होने या ना होने पर निहित–स्वामित्व में परिवर्तित हो जाता है।

समाश्रित स्वामित्व की दो शर्ते है–

(1) पुरोभाव्य शर्त (Condition Precedent)– पुरोभाव्य शर्त ऐसी शर्त होती है जिसकी पूर्ति होने पर अधूरा हक पूरा हो जाता है। पुरोभाव्य शर्त की दशा में जो अधिकार पहले ही सशर्त अर्जित किया गया होता है, वही पूर्ण रूप से अर्जित हो जाता है।

(इ) उत्तरभाव्य शर्त (Condition Subsequent)–उत्तरभाव्य शर्त ऐसी शर्त होती है जिसकी पूर्ति होने पर हक का लोप हो जाता है, अर्थात् वह नष्ट हो जाता है।

उदाहरणा– यदि कोई वसीयतकर्ता अपनी सम्पत्ति पत्नी के लिए इस शर्त के साथ छोड़ जाता है कि यदि वह पुनर्विवाह करती है, तो उस सम्पत्ति से वंचित हो जायेगी तथा वह सम्पत्ति वसीयतकर्ता के पुत्रों को चली जायेगी, तो इस दशा में पत्नी को उस सम्पत्ति पर निहित स्वामित्व प्राप्त होगा तथा वसीयतकर्ता के पुत्र उस सम्पत्ति पर समाश्रित स्वामित्व रखेंगे। यहाँ यह स्पष्ट करना उचित होगा की पत्नी के पुनर्विवाह की शर्त उसके स्वयं के निहित स्वामित्व (vested ownership) के सम्बन्ध में उत्तरभाव्य शर्त (condition subsequent) है, जबकि वसीयतकर्ता के पुत्रों के समाश्रित स्वामित्व के सम्बन्ध में वह पुरोभाव्य शर्त (condition precedent) है। पत्नी पुनर्विवाह करती है, तो उसके निहित स्वामित्व का लोप हो जायेगा तथा पुत्रों का समाश्रित स्वामित्व, निहित स्वामित्व में बदल जायेगा तथा वे उस सम्पत्ति पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लेंगे।

प्रश्न न0 5– विधिक व्यक्तित्व की अवधारणा की व्याख्या कीजिए। विधिक व्यक्तित्व की विभिन्न सिद्धान्तों की व्याख्या कीजिए।

उत्तर– **विधिक व्यक्तित्व**– विधि का निर्माण मानव समुदाय के लिए किया जाता है दुसरे शब्दों में विधि का अस्तित्त्व ही मानव के लिए है। विधि का मुख्य कार्य मानव आचरण को नियंत्रित करना है। ऐसी स्थिति में शब्द 'व्यक्ति' (Person) का महत्त्व बढ़ जाता है। अध्ययन की दृष्टि से शब्द व्यक्ति एवं विधिक व्यक्ति दोनों ही बड़े महत्त्वपूर्ण हैं।

विधिक व्यक्ति की परिभाषा–

पैटन (Paton) के अनुसार – विधिक व्यक्तित्त्व विधि का एक कृत्रिम सृजन है। इसके अनुसार 'विधिक व्यक्ति' (legal person) का प्राकृतिक प्राणी अथवा मनुष्य होना आवश्यक नहीं है। पैटन के शब्दों– "वे सभी अस्तित्त्व जो अधिकार एवं कर्त्तव्य धारण करने योग्य इकाइयाँ हैं, 'विधिक व्यक्ति' (legal person) हैं।"

सॉमण्ड के अनुसार – "विधिक व्यक्ति (legal person) से अभिप्राय मानव के अलावा अन्य किसी ऐसी इकाई से है जिसे विधि के अन्तर्गत व्यक्तित्त्व प्राप्त है।" आसान शब्दों में कहा जा सकता है कि "विधिक व्यक्ति एक ऐसा –कृत्रिम या काल्पनिक व्यक्ति होता है जो विधि की दृष्टि में व्यक्ति है, किन्तु तथ्यतः वह वास्तविक मनुष्य नहीं है।" विधिक व्यक्ति को कृत्रिम, काल्पनिक या न्यायिक व्यक्ति भी कहा जाता है।

केल्सन के शब्दों में – "विधिक व्यक्ति एक मिथक है, क्योंकि इसमें अधिकार एवं कर्तव्यों से अधिक और कुछ नहीं होता है।"

विश्लेषणात्मक विचारधारा के अनुसार – "विधिक व्यक्ति (legal person) अधिकारों एवं कर्तव्यों का धारक है।"

हीगेल (Hegal) के अनुसार– "व्यक्तित्त्व न्यायपूर्ण इच्छा की आत्मनिष्ठ सम्भावना है।"

यह भी जाने – विधिक कर्तव्य की अवधारणा एंव इसके प्रकार विधिशास्त्र के अनुसार द्य Types of Legal Duty

विधिक व्यक्ति के प्रकार–

हिबर्ट के अनुसार विधिक व्यक्ति तीन प्रकार के हो सकते हैं–

(1) निगम– विधि के अन्तर्गत निगम की रचना अधिनियमों के अधीन होती हैद्य निगम एक विधिक व्यक्ति है और विधिक सृजन का एक अच्छा उदाहरण है। निगम व्यक्तियों का एक ऐसा वर्ग या श्रृंखला है जिसे स्वयं एक विधिक मिथक द्वारा मान्यता प्राप्त है। एक पंजीकृत श्रमिक संघ विधिक व्यक्ति है जो यद्यपि शाब्दिक तौर पर उसे निगम नहीं कहा जा सकता है। केरल उच्च न्यायालय द्वारा 'एम. परमशिवम् बनाम यूनियन ऑफ इंडिया' (ए.आई.आर. 2007 एन.ओ.सी. 600 केरल) के मामले में स्टेट इलेक्ट्रिसिटी बोर्ड को विधिक व्यक्ति (legal person) माना गया है। बोर्ड द्वारा परिवाद पेश किया जा सकता है।

(2) संस्था–संस्थायें भी विधिक व्यक्ति (legal person) होती हैं। इन्हें निगमित निकाय के सामान माना जाता है। इनका शाश्वत उत्तराधिकार और सामान्य मुहर भी होती है। इनके द्वारा सम्पत्ति प्राप्त की जा सकती है। इसके विरुद्ध एवं इनके द्वारा वाद लाया जा सकता है। इसमें व्यक्तित्त्व संस्था से सम्बद्ध व्यक्तियों के किसी वर्ग को प्रदान न कर स्वयं संस्था को प्रदान किया जाता है। इसके उदाहरण– विश्वविद्यालय, पुस्तकालय, चिकित्सालय, चर्च आदि हैं।

(3) निधि या सम्पदा–कुछ विशिष्ट प्रयोजनों में प्रयुक्त निधि या सम्पदा को भी विधिक व्यक्ति माना गया है। पूर्व निधि, न्यास सम्पदा, मृतक या दिवालिया व्यक्ति की सम्पत्ति आदि इसके अच्छे उदाहरण हैं।

निगमित व्यक्तित्त्व (corporate personality)–निगमित निकाय अथवा व्यक्तित्त्व (corporate personality) विधिक व्यक्ति का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। निगमित व्यक्तित्त्व जीवित प्राणी नहीं होते हुए भी विधि की दृष्टि में उसकी वह प्रास्थिति है जो एक जीवित प्राणी की होती है। निगमित व्यक्तित्त्व की संरचना अधिनियमित विधि के अधीन होती है।

सॉमण्ड के अनुसार – "निगम व्यक्तियों का एक ऐसा समूह है जो विधिक कल्पना द्वारा विधिक व्यक्ति के रूप में मान्य किया गया है।" इस प्रकार निगम की संरचना मनुष्य के वर्गों एवं श्रेणियों के मानवीकरण से होती है। इस विधिक व्यक्ति (legal person) की काय (corpus) इसके सदस्य होते हैं।

निगम का विधिक व्यक्तित्त्व कल्पना पर आधारित होने के कारण इसे कल्पित या कृत्रिम व्यक्ति भी कहा जाता है। विश्वविद्यालय, चिकित्सालय, पुस्तकालय, मन्दिर, बैंक, रेलवे आदि विधिक व्यक्ति (legal person) होकर निगमित व्यक्तित्त्व की तरह प्रस्थिति रखते हैं। भारत संघ (Union of India) को भी विधिक व्यक्ति का स्थान प्राप्त है।

निगमित निकाय के कुछ महत्त्वपूर्ण लक्षण–

(1) इसका शाश्वत उत्तराधिकार होता है। निगमित निकाय की कभी मृत्यु नहीं होती है। निगमित निकाय के किसी सदस्य की मत्य हो जाने या उसके हट जाने से निकाय का समापन नहीं हो जाता है अपितु ऐसे व्यक्ति का स्थान उसके वारिस या अन्य प्राधिकृत व्यक्ति द्वारा ले लिया जाता है।

(2) इसकी अपनी एक सामान्य मुहर ँमंस) होती है।

(3) यह सम्पत्ति धारण कर सकता है।

(4) इसके विरुद्ध वाद लाया जा सकता है एवं इसकी ओर से वाद लाया जा सकता है।

विधि के अन्तर्गत निगम दो प्रकार के होते हैं–

(1) एकल निगम (Corporation sole)–एकल निगम क्रमवर्ती व्यक्तियों की एक निगमित श्रृंखला है। एकल निगम एक के बाद एक आने वाले व्यक्तियों की ऐसी निगमित श्रृंखला है जिसमें एक समय में एक ही व्यक्ति होता है।विधि के अनुसार एकल निगम का उद्देश्य वही है जो समाहृत निगम का है एकल निगम में एक की मृत्यु के बाद वह पद तथा उससे सम्बंधित सम्पति, दायित्व आदि समाप्त नहीं होते है बल्कि वे उस पद को ग्रहण करने वाले अगले व्यक्ति में समाहित हो जाते है। उदाहरण दृ इंग्लैण्ड का सम्राट, पोस्ट मास्टर जनरल, किसी विभाग का मंत्री आदि ऐसे एकल निगम हैं जिन्हें विधिक व्यक्तित्त्व प्राप्त है। ये व्यक्ति किसी ऐसे लोक पद के धारक होते है जो निगम के रूप में विधि द्वारा मान्य होते है।

(2) समाहृत निगम (Corporation aggregate)– समाहृत निगम सह विद्यमान व्यक्तियों का ऐसा समूह है जो किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए संगठित होता है। इसे समादृत निगम भी कहा जाता है। लिमिटेड कंपनिया समाहृत निगम का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। इसमें कम्पनी के प्रत्येक अंशधारी का दायित्व उसके द्वारा धारित अंशों की अदत्त पूँजी राशि तक ही सीमित रहता है। 'सोलोमन बनाम सोलोमन एण्ड कम्पनी' (1887 ए.सी. 22) इसका एक अच्छा उदाहरण है, इसमें यह कहा गया है कि समाहृत निगम का मुख्य लक्षण है – "कतिपय प्रयोजनों के लिए अपने सदस्यों से पृथक् अस्तित्त्व रखना।" **उदाहरण** – निगमित कंपनी की अस्तियों तथा सम्पति पर उसका स्वंय का अधिकार होता हैद्य अंशधारियों का अधिकार केवल लाभांश तक ही सीमित होता है।" यही कारण है कि कम्पनी दिवालिया हो जाने पर भी अंशाधारी की आर्थिक स्थिति पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है। इसी प्रकार किसी अंशधारी के दिवालिया हो जाने पर भी कम्पनी की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ बनी रहती हैद्य इसके अलावा कम्पनी के सभी अंशाधारियों की मृत्यु हो जाने पर भी उसका अस्तित्त्व समाप्त नहीं होता है।"

निगमित निकाय के सिद्धान्त– निगमित व्यक्तित्त्व के स्वरूप के सम्बन्ध में विधिवेत्ताओं के भिन्न–भिन्न विचार रहे हैं।

(1) परिकल्पना का सिद्धान्त– इसे मिथकीय या कल्पितार्थ सिद्धान्त (Fiction theory) भी कहा जाता है। इस सिद्धान्त के प्रबल समर्थकों में सैविनी, सॉमण्ड, ग्रे, हॉलैण्ड, केल्सन आदि के नाम प्रमुख हैं। परिकल्पना के सिद्धान्त के अनुसार निगमित व्यक्तित्त्व एक विधिक कल्पना मात्र है जिसका मुख्य उद्देश्य सामूहिक रूप से एकत्रित हुए व्यक्तियों के अस्थिर संगठन में एकता लाना है। अतः यह कल्पित व्यक्तित्त्व उन व्यक्तियों के वास्तविक व्यक्ति से अलग होता है जो इसका सृजन करते है। इसमें निगम के सदस्यों में परिवर्तन का निगम के अस्तित्त्व पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। सॉमण्ड की धारणा अनुसार– निगमित निकाय अपने सदस्यों से भिन्न होता है तथा सभी सदस्यों द्वारा त्याग दिए जाने पर भी निगम का अस्तित्त्व बना रहता है। संसद के अधिनियम के अन्तर्गत निगमित किसी निगम का समापन केवल अधिनियमित विधि द्वारा ही किया जा सकता है।

(2) यथार्थवादी सिद्धान्त–इस सिद्धान्त के प्रमुख प्रणेता जर्मन विधिशास्त्री गियर्के (Gierke) थे एवं पोलक, डायसी व मेटलैण्ड को इसका समर्थक माना जाता है। इसे यथार्थता का सिद्धान्त (Realist theory) भी कहा जाता हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार निगम का अस्तित्त्व अपने सदस्यों के सामूहिक स्वरूप से भिन्न होता है। निगमित व्यक्तित्त्व कल्पना पर आधारित नहीं होता वरन इसका एक वास्तविक अस्तित्त्व होता है जिसे विधि एवं राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त होती है। जब अनेक व्यक्ति सामूहिक रूप से मिलकर निगम की स्थापना करते है तो ऐसी स्थापना से एक नवीन इच्छा का अभ्युदय होता है जो उस निगम की इच्छा कहलाती है और ऐसी इच्छा निगम के निदेशकों,

संचालकों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों के माध्यम से अभिव्यक्त होती है। **य**थार्थवादी सिद्धान्त के समर्थकों का मत है कि सामूहिक व्यक्तित्त्व एक कल्पना मात्र नहीं होकर वास्तविकता है। यहाँ वास्तविकता से तात्पर्य दृ वास्तविक व्यक्ति अथवा भौतिक वास्तविकता से नहीं होकर मनोवैज्ञानिक वास्तविकता से है। आधुनिक यथार्थवादी सिद्धान्त मानव व्यक्तित्त्व के विश्लेषण पर टिका हुआ है।

(3) कोष्ठक सिद्धान्त– जर्मन विधिशास्त्री इहरिंग इसके प्रबल समर्थक माने जाते हैं, उनका मत था कि, केवल निगम के सदस्य ही वास्तविक व्यक्ति हैं और निगम के रूप में सृजित विधिक व्यक्तित्त्व की स्थिति एक कोष्ठक (bracket) के समान है जो सदस्यों के सामूहिक स्वरूप को प्रदर्शित करता है। निगम के माध्यम से उसके सदस्यों के सामान्य हितों को क्रियान्वित किया जाता है। कोष्ठक सिद्धान्त के समर्थकों का मत है कि जिस प्रकार किसी शब्द के पर्यायवाची शब्दों को कोष्ठक में रखकर अभिव्यक्त किया जाता है, उसी प्रकार विभिन्न व्यक्तियों के सामूहिक स्वरूप को 'निगम' के रूप में अभिव्यक्त किया जाता है और उन्हें एकरूपता प्रदान की जाती हैद्य कोष्ठक सिद्धान्त (Bracket theory) को प्रतीकवादी सिद्धान्त भी कहा जाता है।

(4) रियायत का सिद्धान्त– प्रमुख विधिशास्त्री सैविनी, सॉमण्ड, डायसी आदि इस सिद्धान्त के समर्थक माने जाते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार–विधिक व्यक्ति के रूप में निगम का महत्त्व इसलिये है, क्योंकि इसे राज्य या विधि द्वारा मान्यता प्राप्त होती है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि निगम का विधिक व्यक्तित्त्व राज्य द्वारा उसे प्रदत्त की गई एक रियायत है जिसे विधि स्वीकार करती है। रियायत का सिद्धान्त (Concession theory) नेशन स्टेट की शक्ति के उदय की ऊपज है। इसमें राज्य की सर्वोच्चता पर बल दिया गया और उसे सुदृढ़ बनाना इसका लक्ष्य रहा है। किसी भी नियम या निकाय को व्यक्ति का स्वरूप प्रदान करना राज्य के विवेकाधिकार की विषय–वस्तु है। राज्य चाहे तो व्यक्तित्त्व का स्वरूप प्रदान कर सकता है और चाहे तो ऐसा करने से मना कर सकता है। यह सिद्धान्त परिकल्पना के सिद्धान्त से मिलता जुलता है।

(5) प्रयोजन सिद्धान्त– प्रयोजन सिद्धान्त (Purpose theory) का मूल या प्रारम्भिक आधार प्रतीकवादी सिद्धान्त के समान ही है। यह सिद्धान्त इस मूलभूत अवधारणा पर आधारित है कि अधिकारों एवं कर्तव्यों की विषय–वस्तु केवल वास्तविक जीवित मनुष्य ही होते हैं। यह किसी निर्जीव वस्तु में व्यक्तित्त्व अधिरोपित करने में विश्वास नहीं रखता है। निगमों का व्यक्तित्त्व वास्तविक नहीं होने के कारण उनमें कर्तव्यों एवं अधिकारों को धारणा करने की सामर्थ्य नहीं होती है। वे केवल विषय रहित अस्तित्त्व रखते हैं जिन्हें कतिपय विशेष प्रयोजनों के लिए विधिक व्यक्ति के रूप में स्वीकार कर लिया जाता है। प्रयोजन सिद्धान्त के मुख्य प्रवर्तक जर्मन विधिशास्त्री ब्रिन्झ (Brin) माने जाते हैं। डेमेलियस, बेक्सर तथा प्लानीयोल इसके प्रबल समर्थकों में हैं। इंग्लैण्ड में इस सिद्धान्त को विकसित करने का श्रेय बार्कर को जाता है।

<u>प्रश्न न0 6–</u> कब्जे की अवधारणा की व्याख्या कीजिए। कब्जा के विभिन्न प्रकार की व्याख्या कीजिए।

<u>उत्तर–</u> विधिशास्त्र के अन्दर आधिपत्य अर्थात कब्जे (possession) का महत्वपूर्ण स्थान हैद्य सांपत्तिक अधिकार के रूप में स्वामित्व के बाद कब्जे का ही स्थान है। कब्जाए किसी वस्तु और व्यक्ति के बीच निरन्तर तथा वास्तविक सम्बन्ध को कहा जाता हैं। फ्रेड्रिंक पोलक के अनुसार– कब्जे से तात्पर्य किसी वस्तु पर भौतिक नियंत्रण से हैद्य
हम सभी यह जानते हैं कि भौतिक वस्तुओं के उपयोग तथा उपभोग के बिना मानव का जीवन असम्भव हैए जीवित रहने के लिए मानव को भोजनए कपड़ा और मकान चाहिये।
सामण्ड के अनुसार – मानव जीवन के लिए भौतिक वस्तुओं पर आधिपत्य होना परम आवश्यक है। उनके अनुसार कब्जा (possession) मनुष्यों और वस्तुओं के बीच आधारभूत सम्बन्धों को प्रकट करता है।
कब्जे की परिभाषा (definition of possession)- कब्जे के सम्बन्ध में विधिशास्त्रियों ने अलग अलग परिभाषा दी हैए जो निम्नलिखित है–

सामण्ड के अनुसार– किसी वस्तु और व्यक्ति के बीच निरन्तर तथा वास्तविक सम्बन्ध को कब्जा (possession) कहते हैं। किसी भौतिक वस्तु पर कब्जे से आशय यह है कि संसार का कोई भी अन्य व्यक्ति उस वस्तु पर कब्जाधारी के विरुद्ध अधिकार न रखे। इस परिभाषा से स्पष्ट है कि सामण्ड ने कब्जे का सम्बन्ध 'वस्तु' से माना है, न कि अधिकार से। **झकरिया** (Zachariae) **के अनुसार–** 'कब्जा' किसी वस्तु तथा व्यक्ति के बीच ऐसा सम्बन्ध है जो यह दर्शाता है कि वह व्यक्ति उस वस्तु को धारण करने का आशय तथा उसके व्ययन (disposal) की क्षमता रखता है। **औचिनी (Savigny) के अनुसार–** मूर्त कब्जे का सार.तत्व यह है कि कब्जाधारी अपने भौतिक बल के आधार पर अन्य व्यक्तियों की कब्जाधीन वस्तु के उपयोग या उपभोग से वर्जित रखे। **मार्कबी (Markby) के अनुसार–** किसी व्यक्ति द्वारा स्वतरू के लिए अपने भौतिक बल के प्रयोग से किसी वस्तु को अपने भौतिक.नियंत्रण में रखने की दृढ़ इच्छा एवं सामर्थ्; को ही 'कब्जा' कहा जाता है। **इहरिंग के अनुसार–**''कब्जा रक्षणात्मक स्वामित्व है।'' इसका अर्थ यह है की कब्जा स्वामित्व की ढाल है जो तथ्यत स्वामित्व रखने वाले व्यक्ति को प्राप्त होती है।
आंग्ल विधि के अनुसार कब्जे की मुख्य तीन अवधारणा है–
(1) किसी व्यक्ति का वस्तु पर कब्जा और भौतिक नियत्रण दोनों हो सकता है।
(2) किसी व्यक्ति या भौतिक नियत्रण के बिना भी वस्तु पर कब्जा हो सकता है।
(3) किसी व्यक्ति का कब्जे के बिना भी वस्तु पर भौतिक नियत्रण हो सकता है।

कब्जे की व्याख्या करते हुए **हालैंड ने लिखा है** कि इसमें दो तत्वों का विद्यमान होना आवश्यक है। प्रथमतः कजाधारी का कब्जाधीन वस्तु पर वास्तविक सामर्थ्य होना चाहिएय तथा द्वितीयतरू उस सामर्थ्; से लाभ उठाने की इच्छा होनी चाहिये। आंग्ल विधि में इन्हें क्रमशः 'कार्पस' तथा 'एनीमस' कहा गया है।

सैविनी ने कब्जे सम्बन्धी अपने सिद्धान्त में कब्जे के लिए दो तत्व 'कॉरपस पजेशियांनिस' (corpus possessionis) तथा 'एनिमस डोमिनी' (animus domini) बताये है। जिनमे कॉरपस पजेशियांनिस'' का अर्थ–प्रभावी नियंत्रण (effeective control) तथा बाह्य हस्तक्षेप को बहिष्कृत करने की क्षमता और 'एनिमस डोमिनी' शब्द का अर्थ किसी वस्तु को स्वामी के रूप में धारित किये रहने की इच्छा से है।

अमेरिका के जस्टिस होम्स के अनुसार– किसी वस्तु पर कब्जा अर्जित करने के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति का उस वस्तु से भौतिक सम्बन्ध हो तथा साथ ही उस वस्तु के प्रति उसका एक निश्चित आशय भी हो। इससे स्पष्ट होता है कि कब्जे के साथ भौतिक एवं मानसिक, दोनों ही तत्व जुड़े रहते हैं इस प्रकार मूर्त कब्जे के लिए उसमें दो तत्वों का होना आवश्यक है। प्रथम भौतिक अथवा वस्तुनिष्ठ (physical or objective) तत्व तथा द्वितीय मानसिक या आत्मनिष्ठ (mental or subjective) तत्व।

कब्जे के आवश्यक तत्व–रोमन विधिशास्त्रियों ने कब्जे के भौतिक तत्व को 'कॉरपस' तथा मानसिक तत्व को 'एनिमस' कहा है। इन दोनों तत्वों को विधिक भाषा में कब्जे का काय तथा धारणाशय कहा जा सकता है।

कब्जे का भौतिक तत्व– कब्जे का पहला आवश्यक तत्व 'कब्जे का काय' है इसे कब्जे का भौतिक तत्व भी कहा जाता हैं। यह तत्व किसी वस्तु पर वास्तविक कब्जे का द्योतक है। शब्द ष्कॉरपसष् से तात्पर्य वस्तु पर एकल नियंत्रण तथा उस वस्तु के प्रति दूसरों को कब्जे से अपवर्जित रखने की क्षमता से है। कब्जाधारी को इस प्रकार की सुरक्षा निम्न प्रकार से प्राप्त हो सकती है–

(1) कब्जाधारी की भौतिक शक्ति– कब्जाधारी की भौतिक शक्ति उसे कब्जाधीन वस्तु के उपयोग की गारन्टी दिलाती है। इसके बल पर वह अन्य व्यक्तयों से अहस्तक्षेप के सम्बन्ध में आश्वस्त रहता है।

(2) कब्जाधारी की वैयक्तिक उपस्थिति–अनेक दशाओं में किसी वस्तु पर कब्जा बनाये रखने के लिए कब्जाधारी की वैयक्तिक उपस्थिति आवश्यक होती है चाहे व्यक्ति शारीरिक रूप से कितना ही दुर्लब क्यों ना हो।

(3) गोपनीयता–कब्जाधारी व्यक्ति किसी वस्तु को इस आशय से छिपाकर रख सकता है कि उस वस्तु पर कोई बाहरी व्यक्ति हस्तक्षेप ना कर पाए।

(4) आशय की अभिव्यक्ति–आशय की अभिव्यक्ति से तात्पर्य किसी वस्तु पर कब्जा (possession) बनाये रखने के साथ.साथ उस वस्तु को प्राप्त करने का भी आशय होना चाहिए। उदाहरण–यदि कोई व्यक्ति किसी दुकान का कब्जा प्राप्त करना चाहता हैए तो उसे कब्जा रखने के आशय के साथ साथ उस दुकान में प्रवेश करने तथा उसका उपयोग करने की स्थिति में भी होना चाहिये।

(5) अन्य वस्तुओं के कब्जे द्वारा प्राप्त संरक्षण– कभी.कभी एक वस्तु पर कब्जा उससे सम्बद्ध अथवा संलग्न अन्य वस्तुओं पर भी कब्जा दिलाता है। उदाहरण–व्यक्ति का किसी भूमि पर कब्जा उसे उस भूमि पर स्थित अन्य वस्तुओं, पेड़.पौधे आदि पर कब्जा भी दिलाता है। लेकिन इस विषय में विधिक स्थिति पूर्ण स्पष्ट नहीं है। यह सिद्धान्त कब्जे की वजह से व्यक्ति को भूमि पर स्थित सभी वस्तुओं पर कब्जा प्राप्त होगाए हमेश लागू नहीं होता तथा यह वाद की परिस्थितियों पर निर्भर करता है। इसका एक अच्छा उदाहरण– ''साउथ स्टेफोर्डशायर वाटर वर्क्स कम्पनी बनाम शर्मन है। जिसमें कम्पनी ने प्रतिवादी को कम्पनी की भूमि पर बने जलाशय (Pond) की सफाई के लिए नियोजित किया। सफाई करते समय प्रतिवादी को जलाशय की तह में कुछ सोने की अंगुठियाँ पड़ी मिलीं। कंपनी ने इन अंगुठियों पर अपना कब्जा बताते हुए प्रतिवादी के विरुद्ध वाद संस्थित किया। न्यायालय ने विनिश्चत किया कि कंपनी को ही उन अंगूठियों पर प्रथम कब्जा (possession) प्राप्त है न कि प्रतिवादी को।

(6) कब्जे के काय (corpus)–सम्बन्धी एक तत्व यह भी है कि कब्जाधरी को वस्तु पर कब्जा रखना चाहिये। परन्तु इसका यह आशय नहीं कि उस वस्तु पर कब्जाधारी का पूर्ण नियंत्रण हो। यह नियंत्रण वस्तु के अनुसार न्यूनाधिक भी हो सकता है। उदाहरण के लिए– यदि कोई व्यक्ति मछली पकड़ने के लिए जाल फेंकता हैए तो उस व्यक्ति का मछलियों पर कब्जा तब तक नहीं होता जब तक कि वे उसके जाल में नहीं फंसती।

कब्जे का मानसिक तत्व–कब्जे (possession) का दूसरा मुख्य तत्व धारणाशय (animus) हैं। इसे कब्जे का मानसिक तत्व भी कहा जाता हैद्य इसका आशय श्कब्जाधारी की कब्जाधीन वस्तु पर अपना कब्जा बनाये रखने की इच्छाश् से है। सामण्ड के अनुसार– अन्य व्यक्तियों को अपवर्जित (exclude) करने का आशय कब्जे का मानसिक अथवा आत्मनिष्ठ तत्व है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है की किसी वस्तु पर भौतिक कब्जा रखने वाले व्यक्ति की इच्छा उस वस्तु का उपयोग उपभोग करने की हो या ना हो लेकिन उस पर कब्जा बनाये रखने की इच्छा होनी अत्यन्त आवश्यक है।

कब्जे (possession) सम्बन्धी मानसिक इच्छा के विषय में निम्न बातें उल्लेखनीय हैं–

(1) यह आवश्यक नहीं है कि कब्जा धारण किये रहने का आशय न्यायोचित ही होए वह सदोष भी हो सकता है।

(2) किसी वस्तु पर कब्जाधारी का दावा अनन्य (exclusive) होना चाहिये अर्थात् उसमें अन्य व्यक्तियों को

अपवर्जित (exclude) करने का आशय होना चाहिये। परन्तु यह आवश्यक नहीं कि अपवर्जन पूर्णतः (absolute) हो।

(3) कब्जा धारण करने वाला व्यक्ति किसी वस्तु को अभिरक्षा के तौर पर भी धारण कर सकता है। जैसे–किसी गिरवी रखी वस्तु पर गिरवीदार का कब्जा होता है यद्यपि उसका मानसिक आशय उस वस्तु को ऋण की अदायगी होने तक अभिरक्षा (custody) में रखने का होता है।

(4) यह आवश्यक नहीं है कि कब्जाधारी ही किसी वस्तु पर कब्जा धारण करेए यह किसी अन्य व्यक्ति के लिए भी हो सकता है। उदाहरण– नौकर, अभिवक्ता, न्यासी तथा उपनिहिती आदि वस्तु को स्वयं के लिए धारण नहीं करते बल्कि अन्य व्यक्ति के लिए करते हैं।

(5) कब्जाधारी का कब्जे सम्बन्धी आशय सामान्य हो सकता हैए उसका विनिर्दिष्ट (specific) होना आवश्यक नहीं है।

उदाहरण– यदि किसी व्यक्ति ने जाल में मछलियाँ पकड़ी होंए तो उन सब पर उनका कब्जा होगा, भले ही उसे उन मछलियों की निश्चित संख्या ज्ञात न हो। इसी प्रकार व्यक्ति को अपने पुस्तकालय में रखी सभी पुस्तकों पर कब्जा प्राप्त होता हैए भले ही उसमें से कुछ के अस्तित्व के बारे में उसे जानकारी न हो। कब्जे के धारणाशय (animus)– के सन्दर्भ में कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा विनिश्चित एन० एन० मजूमदार बनाम राज्य का वाद उल्लेखनीय है। इस मामले में पुलिस ने अभियुक्त के घर की तलाशी इस उम्मीद से ली कि शायद वहाँ से पिस्तौल बरामद हो जाए परन्तु पिस्तौल नहीं मिली। अभियुक्त ने अपनी पत्नी से कुछ बात की और पत्नी घर से बाहर चली गई। वह तीन.चार मिनट बाद एक पिस्तौल और कुछ कारतूसों के साथ घर वापस लौटी।

पुलिस ने दण्ड संहिता की धारा 27 का सहारा लेते हुए यह तर्क प्रस्तुत किया कि यह उपधारणा की जानी चाहिए कि अभियुक्त के कब्जे में पिस्तौल थी। न्यायालय ने निर्णय दिया कि आयुध अधिनियमए 1959 ;Arms Act, 1959) विशिष्ट संविधि होने के कारण ष्कब्जेष् के 'धारणाशय' के तथ्य को साबित किया जाना आवश्यक है। धारणाशय के अभाव में केवल कार्य का होना कब्जा साबित करने के लिए अपर्याप्त है।

कब्जे के तत्व के रूप में निर्णित महत्वपूर्ण वाद–

आर० बनाम हडसन;1943 के.बी. 458 के मामले में अभियुक्त को एक लिफाफा प्राप्त हुआ जो उसी नाम के किसी अन्य व्यक्ति को संबोधित था। अभियुक्त ने उस लिफाफे को कुछ दिन अपने पास रखा और उसे खोल लिया। उसे लिफाफे के भीतर एक चौक मिला जिसे उसने अपने उपयोग में ले लिया। उसे चोरी के लिए दोषी ठहराया गया। न्यायालय ने इस वाद में कहा कि जब तक लिफाफा खोला नहीं गया था तब तक अभियुक्त का उस पर कब्जा नहीं था क्योंकि उसमें आशय का अभाव था। **मेरी बनाम ग्रीन 1841 एम एण्ड डब्ल्यू 623 के वाद** में किसी बढ़ई ने नीलाम में दराज वाली एक मेज खरीदी। उसे पता चला कि मेज में एक गुप्त दराज था। उसने उस दराज को तोड़कर खोल लिया और उसमें रखा धन ले लिया। यह धन विक्रेता का था जिसने केवल मेज बेची थी। विधि की दृष्टि में गुप्त दराज में रखे धन पर विक्रेता का कब्जा अभी भी बना हुआ थाय यद्यपि उस पर उसका वास्तविक कब्जा नहीं था।

<u>प्रश्न न0 7–</u> दायित्व से आप क्या है? सिविल दायित्व के निर्धारण के लिए कौन–कौन से आवश्यक तत्व है? व्याख्या कीजिए।

<u>उत्तर–</u> जब कोई व्यक्ति कानून तोड़ता है तो दायित्व उत्पन्न होता है। कानून व्यक्तियों के लिए अधिकार और जिम्मेदारियाँ निर्धारित करता है। यह एक व्यक्ति को कानूनी अधिकार प्रदान करता है और दूसरे पर दायित्व डालता है। लोगों को दूसरों के कानूनी अधिकारों का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। यदि कोई इन अधिकारों का उल्लंघन करता है, तो उसे कुछ गलत करने वाला माना जाता है और इससे दायित्व उत्पन्न होता है। सभ्य समाजों में, व्यक्ति और राज्य के बीच अधिकांश संबंध राज्य द्वारा बनाए गए या मान्यता प्राप्त नियमों, अर्थात् कानून द्वारा संचालित होते हैं। कानून व्यक्तियों के अधिकार और कर्तव्य निर्धारित करता है। दूसरे शब्दों में, यह निर्धारित करता है कि व्यक्ति को क्या करना है और क्या नहीं करना है और उसे क्या करवाने का अधिकार है। इन नियमों का उल्लंघन गलत कहा जाता है। जब कोई व्यक्ति गलत काम करता है, तो उसे उत्तरदायी कहा जाता है। इस प्रकार, दायित्व उस व्यक्ति की स्थिति है जिसने गलत काम किया है। सैल्मंड दायित्व को इस प्रकार परिभाषित करते हैं, ष्गलत काम करने वाले और गलत काम के निवारण के बीच अनिवार्य बंधनष्। कानून का कार्य केवल अधिकार और कर्तव्य निर्धारित करके ही पूरा नहीं हो जाताय यह उनकी सुरक्षा, प्रवर्तन और निवारण भी सुनिश्चित करता है। इसलिए, दायित्व कानून के अध्ययन का एक बहुत ही महत्वपूर्ण हिस्सा है। दायित्व के प्रकार, कब कोई व्यक्ति उत्तरदायी बनता है या दूसरे शब्दों में, कब दायित्व अस्तित्व में आता है और दायित्व का माप ऐसी चीजें हैं जिन्हें इस संबंध में जानना आवश्यक है।

दायित्व की परिभाषा–

सर जॉन सामंड–सर जॉन सामंड दायित्व को गलत काम करने वाले और गलत काम के लिए उपाय के बीच आवश्यक संबंध के रूप में परिभाषित करते हैं। सरल शब्दों में, यह किसी गलत काम करने वाले और उसे सही करने के समाधान के बीच संबंध है।

मार्कबी के अनुसार, 'दायित्व' शब्द उस स्थिति का वर्णन करता है जब किसी व्यक्ति को कोई कर्तव्य पूरा करना होता है, चाहे वह कर्तव्य उसकी मुख्य जिम्मेदारी हो या कोई द्वितीयक या लागू करने वाला। यह एक काम करने के बारे में है।

ऑस्टिन 'दायित्व' के बजाय 'अनिवार्यता' शब्द का उपयोग करना पसंद करते हैं। उनका कहना है कि कुछ क्रियाएं, चूक या कार्य, उनके परिणामों के साथ, उन लोगों को जिम्मेदार ठहराया जाता है जिन्होंने उन्हें किया या नहीं किया। दूसरे शब्दों में, यह लोगों को उनके कार्यों या निष्क्रियताओं के लिए जिम्मेदार ठहराने के बारे में है।

सिविल दायित्व–सिविल दायित्व से तात्पर्य गैर–आपराधिक मुद्दों से संबंधित मामलों में एक व्यक्ति या संस्था द्वारा दूसरे के प्रति की जाने वाली कानूनी जिम्मेदारी से है। यह नागरिक कानूनों या विनियमों के उल्लंघन से उत्पन्न होता है, जिसमें आम तौर पर अनुबंधों, संपत्ति के अधिकार, व्यक्तिगत चोट या पारिवारिक मामलों जैसे मुद्दों पर व्यक्तियों या संस्थाओं के बीच विवाद शामिल होते हैं।

जब किसी को नागरिक रूप से उत्तरदायी पाया जाता है, तो उन्हें मौद्रिक क्षति या विशिष्ट प्रदर्शन (अनुबंध संबंधी दायित्व को पूरा करना) जैसे उपायों के माध्यम से घायल पक्ष को मुआवजा देने की आवश्यकता हो सकती है। नागरिक दायित्व के मामले आम तौर पर निजी व्यक्तियों या संगठनों द्वारा मुआवजे या विवाद के समाधान की मांग करते हुए शुरू किए जाते हैं।

आपराधिक दायित्व–आपराधिक दायित्व सरकार द्वारा स्थापित आपराधिक कानूनों और विनियमों का उल्लंघन करने वाले कार्यों के लिए एक व्यक्ति या संस्था द्वारा वहन की जाने वाली कानूनी जिम्मेदारी से संबंधित है। अपराध आम तौर पर पूरे समाज के खिलाफ अपराध होते हैं और अभियोजकों द्वारा प्रतिनिधित्व की जाने वाली सरकार आपराधिक कार्यवाही शुरू करती है। यदि कोई व्यक्ति आपराधिक रूप से उत्तरदायी पाया जाता है, तो उसे जुर्माना, कारावास, परिवीक्षा या अन्य दंडात्मक उपायों जैसे दंड का सामना करना पड़ सकता है। आपराधिक दायित्व का उद्देश्य सार्वजनिक सुरक्षा और व्यवस्था की रक्षा के लिए बनाए गए कानूनों का उल्लंघन करने के लिए गलत काम करने वाले को दंडित करना है।

सिविल और आपराधिक दायित्व के बीच अंतर

विभिन्न न्यायविदों ने सिविल और आपराधिक दायित्व के बीच अंतर पर अलग–अलग दृष्टिकोण प्रदान किए हैं। इनमें से कुछ दृष्टिकोण इस प्रकार हैं–

ऑस्टिन का दृष्टिकोण– ऑस्टिन का कहना है कि घायल पक्ष या उनके प्रतिनिधियों के विवेक पर किया गया अपराध सिविल चोट माना जाता है। दूसरी ओर, संप्रभु या उसके अधीनस्थों द्वारा किए गए अपराध अपराध हैं। सभी पूर्ण दायित्वों को आपराधिक साधनों के माध्यम से लागू किया जाता है।

सामण्ड का दृष्टिकोण– सामण्ड का दृष्टिकोण है कि आपराधिक और सिविल गलत के बीच का अंतर उल्लंघन किए गए अधिकार की प्रकृति पर आधारित नहीं है, बल्कि लागू किए गए उपाय की प्रकृति पर आधारित है। वह दोनों के बीच चार प्रमुख अंतरों की पहचान करता है–

गलत की प्रकृति; अपराध को समाज के खिलाफ गलत माना जाता है, जबकि सिविल गलत को किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के खिलाफ गलत माना जाता है।

उपाय: आपराधिक अपराधों को दंड के माध्यम से सुधारा जाता है, जबकि सिविल गलत को हर्जाने के माध्यम से सुधारा जाता है।

प्रक्रिय; आपराधिक कार्यवाही का उपयोग अपराधों के लिए किया जाता है, जबकि सिविल कार्यवाही का उपयोग सिविल गलत के लिए किया जाता है और वे अलग–अलग न्यायालयों में होती हैं।

दायित्व मापन– किसी अपराध में, दायित्व को गलत करने वाले के इरादे से मापा जाता है, जबकि किसी दीवानी गलत काम में, दायित्व गलत काम पर आधारित होता है, इरादे पर नहीं। न्यायशास्त्र में उपचारात्मक और दंडात्मक दायित्व दायित्व को आगे दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता हैरू दंडात्मक दायित्वरू जब गलत काम करने वाले को सफल कार्यवाही के बाद जुर्माना या कारावास जैसी सजा दी जाती है, तो इसे न्यायशास्त्र में दंडात्मक दायित्व कहा जाता है। आपराधिक दायित्व इस श्रेणी में आता है। उपचारात्मक दायित्वरू न्यायशास्त्र में इस प्रकार के दायित्व में ऐसे उपाय शामिल होते हैं जो दंडात्मक प्रकृति के नहीं होते हैं। सफल कार्यवाही के बाद, प्रतिवादी को हर्जाना देने, ऋण चुकाने या कोई विशिष्ट कार्रवाई करने का आदेश दिया जा सकता है। दीवानी दायित्व आम तौर पर इसी श्रेणी में आता है। उपचारात्मक दायित्व की व्याख्या उपचारात्मक दायित्व ''यूबी जूस इबी रेमेडियम'' सिद्धांत पर आधारित है, जिसका अर्थ है कि जहाँ अधिकार है, वहाँ उपाय भी होना चाहिए। जब कानून कोई कर्तव्य स्थापित करता है, तो यह यह भी सुनिश्चित करता है कि इसे लागू करने का कोई साधन हो। अधिकांश मामलों में, कानून किसी कर्तव्य का उल्लंघन करने के लिए एक उपाय निर्धारित करता है और यह उपाय कानूनी प्रणाली द्वारा लागू किया जाता है।

इस नियम के अपवादों में शामिल हैं–

अपूर्ण दायित्व के कर्तव्यरू कुछ कर्तव्य कानून में मौजूद हैं, लेकिन लागू करने योग्य नहीं हैं। उदाहरण के लिए, एक समय–बाधित ऋण, हालांकि कानूनी रूप से मान्यता प्राप्त है, भुगतान के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता है। कर्तव्य जो विशेष रूप से लागू नहीं किए जा सकते हैंरू ऐसे कर्तव्य हैं, जिन्हें एक बार तोड़ने के बाद, विशेष रूप से लागू नहीं किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, पूर्ण हमले के मामलों में, प्रतिवादी को कृत्य को पूर्ववत

करने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता है। ऐसे मामले जहां हर्जाना दिया जाता हैरू कुछ मामलों में, हालांकि किसी कर्तव्य का विशिष्ट प्रदर्शन संभव है, कानून, विभिन्न कारणों से, विशिष्ट प्रदर्शन को लागू करने के बजाय वादी को हर्जाना देने का विकल्प चुन सकता है। उदाहरण के लिए, जब किसी अनुबंध में व्यक्तिगत सेवाएं शामिल होती हैं, तो कानून प्रदर्शन को बाध्य नहीं कर सकता है, बल्कि इसके बजाय हर्जाना दे सकता है (विशिष्ट राहत अधिनियम के अनुसार)।

दंडात्मक दायित्व–कानूनी सिद्धांत 'एक्टस नॉन फैसिट रीम, निसी मेन्स सिट री' (केवल कार्य अपराध नहीं है, इसके साथ दोषी मन भी होना चाहिए) दंडात्मक दायित्व को समझने के लिए मौलिक है, जो आपराधिक अपराधों के लिए दायित्व है।

दंडात्मक दायित्व की दो आवश्यक शर्तें

किसी व्यक्ति को आपराधिक रूप से उत्तरदायी ठहराए जाने के लिए दो मुख्य शर्तें हैंरू एक्टस रीस और मेन्स रीस। कार्य (एक्टस रीस) कार्य को स्वैच्छिक शारीरिक गति माना जाता है, जो व्यक्ति की इच्छा या इच्छा के कारण होता है। इसमें व्यक्ति के इरादे से होने वाली शारीरिक गति शामिल होती है, बशर्ते कि शामिल शरीर का अंग सामान्य स्थिति में हो।

प्रश्न न0 8– सम्पति से आप क्या समझते है, सम्पति की अवधारणा की उत्पत्ति से सम्बन्धित विभिन्न सिद्वान्तों की व्याख्या कीजिए।

उत्तर– **उत्पत्ति**–शब्द –संपत्ति लैटिन शब्द प्रोप्राइटरी और फ्रेंच समकक्ष प्रॉपर्टीज से लिया गया है, जिसका अर्थ है स्वामित्व वाली वस्तु। संपत्ति और स्वामित्व की अवधारणा एक दूसरे से बहुत मिलती–जुलती है। हालाँकि, एक महीन रेखा है जो दोनों शब्दों को अलग करती है। यह कहना गलत नहीं होगा कि मनुष्य लंबे समय से अपने अधिकारों के बारे में जानते हैं कि उनके पास जो कुछ भी है, उसका अधिकार है। संपत्ति शब्द की व्याख्या सामण्ड, बेंथम और ऑस्टिन जैसे विभिन्न न्यायविदों द्वारा व्यापक रूप से की गई है। उनके द्वारा दी गई परिभाषाओं का बारीकी से अवलोकन हमें अवधारणा को बेहतर तरीके से समझने में मदद करेगा। संपत्ति शब्द कला से संबंधित शब्द नहीं है। इसका उपयोग विभिन्न अर्थों में किया गया है। व्यापकतम संभव अर्थ में, संपत्ति में किसी व्यक्ति के सभी कानूनी अधिकार शामिल हैं, चाहे उसका वर्णन कुछ भी हो। किसी व्यक्ति की संपत्ति वह सब है जो कानून के अनुसार उसका है। हालाँकि यह अब एक फैशन बन गया है, लेकिन पुरानी किताबों में इस शब्द का ऐसा उपयोग आम है।

ब्लैकस्टोन के अनुसार– ''अवर व्यक्ति के पास वरिष्ठ व्यक्ति की संगति, देखभाल या सहायता में किसी भी प्रकार की संपत्ति नहीं होती है, जैसा कि वरिष्ठ व्यक्ति के पास अवर व्यक्ति की संपत्ति होती है।''

लॉक के अनुसार– ''प्रत्येक व्यक्ति के पास अपने व्यक्तित्व में एक संपत्ति होती है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी संपत्ति, यानी अपनी पत्नी, स्वतंत्रता और संपदा को सुरक्षित रखने का अधिकार है।''

एक संकीर्ण अर्थ में, संपत्ति में किसी व्यक्ति के स्वामित्व अधिकार शामिल होते हैं, न कि उसके अधिकार। स्वामित्व अधिकार उसकी संपत्ति या संपदा का गठन करते हैं, जबकि व्यक्तिगत अधिकारों में उसकी स्थिति या व्यक्तिगत स्थिति शामिल होती है। यदि संकीर्ण अर्थ के लेंस से देखा जाए, तो केवल भूमि, संपत्ति, शेयर और ऋण ही व्यक्तिगत संपत्ति हैं, न कि उसका जीवन, स्वतंत्रता या प्रतिष्ठा। आधुनिक समय में संपत्ति की यह सबसे अधिक इस्तेमाल की जाने वाली व्याख्या है। हालाँकि, संपत्ति की एक अन्य व्याख्या और अर्थ में केवल वे अधिकार शामिल हैं जो मालिकाना और वास्तविक दोनों हैं। संपत्ति का कानून मालिकाना अधिकारों का कानून है। इस व्याख्या के अनुसार, एक फ्रीहोल्ड या लीजहोल्ड एस्टेट या कॉपीराइट में संपत्ति का अर्थ भी शामिल है। संक्षिप्ततम संभव अर्थ में, संपत्ति में भौतिक संपत्ति या भौतिक चीजों के स्वामित्व के अधिकार से अधिक कुछ भी शामिल नहीं है।

ऑस्टिन का मानना था कि संपत्ति के अलग–अलग समय पर अलग–अलग अर्थ हो सकते हैं। इसका उपयोग दासता को छोड़कर कानून द्वारा ज्ञात सबसे बड़े आनंद के अधिकारों को दर्शाने के लिए किया जा सकता है या यह जीवन हित या कभी–कभी दासता भी हो सकती है। यह किसी व्यक्ति के स्वामित्व वाली संपत्तियों का पूरा समूह हो सकता है जिसमें इन–रेम और व्यक्तिगत अधिकार दोनों शामिल हैं। आज, बौद्धिक या अमूर्त संपत्ति बहुत महत्वपूर्ण हो गई है। उदाहरण के लिए कॉपीराइट, ट्रेडमार्क, डिजाइन में संपत्ति और पेटेंट।

संपत्ति के सिद्धांत– संपत्ति की उत्पत्ति और उसके औचित्य को समझाने के लिए कई सिद्धांत सामने रखे गए हैं।

प्राकृतिक सिद्धांत– इस सिद्धांत के अनुसार, संपत्ति वस्तुओं की प्रकृति से प्राप्त प्राकृतिक कारण के सिद्धांत पर आधारित है। संपत्ति किसी मालिक रहित वस्तु पर कब्जा करके और व्यक्तिगत श्रम के परिणामस्वरूप अर्जित की गई थी। ग्रोटियस के अनुसार, सभी चीजें मूल रूप से बिना मालिक की थीं और जिसने भी इसे हासिल किया या कब्जा किया, वह इसका मालिक बन गया। पुफेंडोर्फ के अनुसार, मूल रूप से चीजें लोगों की थीं। व्यक्तिगत स्वामित्व की कोई अवधारणा नहीं थी। समय और मानव जाति के विकास के साथ ही स्वामित्व और कब्जे की आवश्यकता पैदा हुई। इस प्रकार कब्जे का सिद्धांत सभी संपत्तियों का आधार और नींव बन गया।

आध्यात्मिक सिद्धांत–यह सिद्धांत कांट और हेगेल द्वारा प्रतिपादित किया गया था। कोई विशेष वस्तु सही मायने में मालिक की होती है जब वह उससे इतना जुड़ा होता है कि कोई भी व्यक्ति जो उसकी सहमति के बिना उसका उपयोग करता है, वह उसे नुकसान पहुंचाता है। लेकिन संपत्ति के कानून पर बेहतर औचित्य प्राप्त करने के लिए हमें कब्जे के मामलों से परे जाना होगा जहां वस्तु से वास्तविक भौतिक संबंध होता है और हस्तक्षेप व्यक्तित्व पर

आक्रमण होता है। सरल शब्दों में कहें तो संपत्ति वह वस्तु है जिस पर व्यक्ति को अपनी इच्छा निर्देशित करने की स्वतंत्रता होती है।

ऐतिहासिक सिद्धांत–इस सिद्धांत के अनुसार, निजी संपत्ति में धीमी और स्थिर वृद्धि हुई है। यह सामूहिक समूह या संयुक्त संपत्ति से विकसित हुई है। निजी संपत्ति के विकास में कई चरण थे। प्राकृतिक कब्जे का पहला चरण कानून से स्वतंत्र रूप से अस्तित्व में था। न्यायिक कब्जे का दूसरा चरण तथ्य और कानून दोनों की अवधारणा थी। विकास चक्र में अंतिम चरण स्वामित्व का था। स्वामित्व एक विशुद्ध कानूनी अवधारणा बन गया। डीन रोस्को पाउंड के अनुसार, संपत्ति का सबसे प्रारंभिक रूप एक समूह संपत्ति थी। यह समय की बात थी कि परिवार विभाजित हो गए और व्यक्तिगत संपत्ति अस्तित्व में आई।

सकारात्मक सिद्धांत–इस सिद्धांत के संस्थापक स्पेंसर थे। उन्होंने अपने सिद्धांत को समान स्वतंत्रता के मौलिक कानून पर आधारित किया। उनके अनुसार, संपत्ति व्यक्तिगत श्रम का परिणाम थी। किसी भी व्यक्ति को उस संपत्ति पर कोई नैतिक अधिकार नहीं है जिसे उसने अपने व्यक्तिगत श्रम और प्रयास से अर्जित नहीं किया है।

मनोवैज्ञानिक सिद्धांत–इस सिद्धांत के अनुसार, संपत्ति मनुष्य की अधिग्रहण प्रवृत्ति से अस्तित्व में आई। हर व्यक्ति चीजों का मालिक बनना चाहता है और इसी से संपत्ति अस्तित्व में आती है। बेंथम ने सही कहा है, ष्संपत्ति किसी तर्कपूर्ण चीज से भविष्य में कुछ लाभ प्राप्त करने की एक निश्चित उम्मीद के आधार से अधिक कुछ नहीं है।ष समाजशास्त्रीय सिद्धांत इस सिद्धांत के अनुसार, संपत्ति को निजी अधिकारों के संदर्भ में नहीं बल्कि सामाजिक कार्यों के संदर्भ में माना जाना चाहिए। यह एक ऐसी संस्था है जो अधिकतम हित सुरक्षित करती है।

प्रश्न न0 9–निम्नलिखित में से छः पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर– (1) सम्पति अर्जित करने के विभिन्न तरीके– सामण्ड के अनुसार सम्पत्ति कई तरीके से अर्जित की जा सकती है। सम्पत्ति अर्जित करने के लिए निम्नलिखित चार प्रमुख तरीके है।

कब्जा– यह स्वामित्व की वस्तुगत प्राप्ति है। किसी भौतिक वस्तु का कब्जा उसके स्वामित्व का अधिकार है। व्यक्ति और वस्तु के बीच वास्तविक संबंध अपने साथ–साथ वैधानिक संबंध भी लाता है। जो व्यक्ति किसी जमीन के टुकड़े को अपना होने का दावा करता है और उस पर कब्जा भी रखता है, वह स्वामित्व के माध्यम से उसे कानूनी तौर पर भी वैध बनाता है। अगर कोई व्यक्ति किसी चीज पर कब्जा रखता है, तो वह ऐसा जबरदस्ती नहीं कर सकता। उसे अपने अधिकार को साबित करने के लिए कानून की मदद भी लेनी पड़ती है। लेकिन अगर कोई संपत्ति किसी की नहीं है, तो उस पर कब्जा करने वाले और उस पर कब्जा करने वाले व्यक्ति का पूरी दुनिया पर एक अच्छा अधिकार होता है। यह उसी तरह है जैसे हवा में उड़ने वाले पक्षी और पानी में मछलियाँ उस व्यक्ति की होती हैं जो उन्हें पकड़ता है।

प्रिस्क्रिप्शन–सामण्ड के अनुसार, ''प्रिस्क्रिप्शन को अधिकारों को बनाने और नष्ट करने वाले समय के बीतने के प्रभाव के रूप में परिभाषित किया जा सकता हैय यह एक बहुमुखी प्रभाव के रूप में समय का संचालन है।'' प्रिस्क्रिप्शन दो प्रकार के होते हैं– सकारात्मक अर्जनात्मक प्रिस्क्रिप्शन और नकारात्मक या विलुप्त प्रिस्क्रिप्शन। प्रिस्क्रिप्शन केवल रेम में अधिकारों तक सीमित नहीं है। यह दायित्वों और संपत्ति के दायरे में पाया जाता है। सकारात्मक प्रिस्क्रिप्शन केवल उन अधिकारों के मामलों में संभव है जो कब्जे को स्वीकार करते हैं। इस प्रकृति के अधिकांश अधिकार रेम में अधिकार हैं। व्यक्तिगत अधिकार आमतौर पर उनके प्रयोग से समाप्त हो जाते हैं और प्रिस्क्रिप्शन द्वारा उन्हें प्राप्त या प्राप्त नहीं किया जा सकता है। नकारात्मक प्रिस्क्रिप्शन संपत्ति और दायित्वों के कानून के लिए आम है। अधिकांश दायित्व समय बीतने के साथ नष्ट हो जाते हैं। उनके स्वामित्व के साथ उनका कब्जा नहीं हो सकता है।

समझौता– पैटन के अनुसार, एक समझौता दो या दो से अधिक व्यक्तियों द्वारा एक दूसरे को उनके बीच कानूनी संबंधों को प्रभावित करने के एक सामान्य इरादे की अभिव्यक्ति है। यह एक द्विपक्षीय अधिनियम का परिणाम है। यह असाइनमेंट या अनुदान की प्रकृति में हो सकता है। असाइनमेंट मौजूदा अधिकारों को एक मालिक से दूसरे मालिक को हस्तांतरित करता है। अनुदान संपत्ति के स्वामित्व के आश्वासन या हस्तांतरण को दर्शाता है जो संपत्ति के वितरण से अलग है। कुछ समझौते ऐसे होते हैं जिनके लिए विलेख के सत्यापन और पंजीकरण की आवश्यकता होती है। एक सामान्य नियम है कि समझौते द्वारा हस्तांतरिती का शीर्षक हस्तांतरक के शीर्षक से बेहतर नहीं हो सकता। यह मुख्य रूप से इस तथ्य के कारण है कि कोई भी व्यक्ति अपने पास मौजूद शीर्षक से बेहतर शीर्षक हस्तांतरित नहीं कर सकता।

विरासत– संपत्ति प्राप्त करने का एक और तरीका विरासत के माध्यम से है। जब कोई व्यक्ति मर जाता है, तो कुछ अधिकार उसके बाद भी उसके उत्तराधिकारियों और उत्तराधिकारियों को मिल जाते हैं। वे अधिकार जो किसी व्यक्ति के पास बचे रहते हैं उन्हें विरासत में मिलने वाले अधिकार कहा जाता है। मालिकाना अधिकार विरासत में मिलने वाले अधिकार होते हैं। जबकि, आम तौर पर व्यक्तिगत अधिकार विरासत में नहीं मिलते हैं, लेकिन इस सामान्य नियम के अपवाद भी हैं। किसी व्यक्ति की संपत्ति का उत्तराधिकार वसीयत या बिना वसीयत के हो सकता है। यह वसीयत के जरिए या बिना वसीयत के हो सकता है। अगर वसीयत है, तो उत्तराधिकार कानून के अनुसार होता है। अगर कोई वारिस नहीं है, तो संपत्ति राज्य को जाती है।

(2) अजन्मा व्यक्ति की विधिक स्थिति– जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, एक व्यक्ति को उसके जन्म से लेकर उसकी मृत्यु तक एक प्राकृतिक व्यक्ति माना जाता है। ऐसा प्राकृतिक व्यक्ति अधिकारों और कर्तव्यों को वहन करने

में सक्षम होता है, इस प्रकार उसका एक कानूनी व्यक्तित्व होता है। आम तौर पर, जन्म से पहले और मृत्यु के बाद एक प्राकृतिक व्यक्ति के पास कोई कानूनी व्यक्तित्व नहीं होता है। इसलिए, एक प्राकृतिक व्यक्ति के पास अधिकार और कर्तव्य होने के लिए, उसका जीवित होना जरूरी है। हालाँकि, जब अजन्मे बच्चे का मामला आता है तो कानून को एक समस्या का सामना करना पड़ता है। चिकित्सा और धर्मशास्त्र जैसे विषय यह स्थापित करते हैं कि एक अजन्मा बच्चा एक जीवित इकाई है। कानूनी कथाओं के अनुसार, अपनी माँ के गर्भ में पल रहे बच्चे को पहले से ही जन्मा हुआ माना जाता है। जब वह जीवित पैदा होता है, तो उसे कानूनी दर्जा प्राप्त होता है। सामान्य शब्दों में, कानून केवल जीवित प्राकृतिक व्यक्तियों पर ध्यान देता है, लेकिन एक शिशु वेन्ट्रे सा मेरे (अपनी माँ के गर्भ में पल रहे बच्चे) के मामले में, कानून एक अपवाद बनाता है। अपनी माँ के गर्भ में पल रहा बच्चा कुछ अधिकार प्राप्त करने और संपत्ति प्राप्त करने में सक्षम होता है, लेकिन यह सब इस बात पर निर्भर करता है कि बच्चा जीवित पैदा हुआ है या नहीं। विभाजन के दौरान एक अजन्मे बच्चे को एक व्यक्ति माना जाता है। ऐसे अजन्मे बच्चे द्वारा अपनी माँ के गर्भ में लगी चोट के लिए हर्जाना भी मांगा जा सकता है।

(3) एक मस्जिद की विधिक स्थिति– मस्जिद एक न्यायिक व्यक्ति नहीं है। लाहौर के फैसले (मौला बख्श बनाम हाफिज–उद–दीन , एआईआर 1926 लाहौर. 372) में यह माना गया था कि एक मस्जिद एक न्यायिक व्यक्ति है और उस पर मुकदमा किया जा सकता है और उस पर मुकदमा चलाया जा सकता है, लेकिन मस्जिद शहीद गंज केस (1940, 67 आईए 251) में प्रिवी काउंसिल ने फैसला किया था कि मस्जिदों द्वारा या उनके खिलाफ मुकदमा नहीं लाया जा सकता है, क्योंकि वे कानून की नजर में शकृत्रिमश व्यक्ति नहीं हैं। हालांकि, उन्होंने यह प्रश्न खुला छोड़ दिया कि क्या किसी भी उद्देश्य के लिए मस्जिद को 'न्यायिक' व्यक्ति माना जा सकता है। श मस्जिद शहीद गंज बनाम शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी , (एआईआर 1938 लाह. 369) में उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने माना कि एक मस्जिद न्यायिक व्यक्ति है।

(4) भारत के राष्ट्रपति की विधिक स्थिति– भारत के राष्ट्रपति पद एकल निगम के अन्तर्गत रखा जा सकता है, क्योकि इस पद को धारण करने वाले की मृत्यु हो जाने के पश्चात् दूसरा व्यक्ति इस पद पर आसीन हो जाता है। किसी पद वास्तविक अधिकारी वही कल्पित व्यक्ति होता है जो भी नहीं मरता है। जीवित पदाधिकारी आते–आते रहते हैं, परन्तु विधि द्वारा निर्मित यह व्यक्ति सदा एक ही रूप में विद्यमान रहता है। भारत का राष्ट्रपति न्यायिक व्यक्ति है।

(5) तथ्यतः कब्जा– जब किसी व्यक्ति द्वारा वस्तु को स्वंय धारण किया जाता है या उस पर भौतिक नियत्रण स्थापित कर लिया जाता है तब वह तथ्यतरू कब्जा कहलाता हैं। साधारण शब्दों में किसी व्यक्ति और वस्तु के बीच जो सम्बन्ध होता है उसे तथ्यतः कब्जा (Possession) कहते है। किसी वस्तु पर तध्यतः कब्जा होना उस पर भौतिक नियंत्रण का प्रतीक होता है। उदाहरण –यदि किसी व्यक्ति ने तोते को पिंजरे में रखा है, तो उस तोते पर उस व्यक्ति का कब्जा होगा किन्तु जैसे ही तोता उड़कर भाग जाता है, तब उस व्यक्ति का तोते पर से कब्जा समाप्त हो जाता है।

तथ्यतः कब्जे के विषय में निम्न बातें महत्वपूर्ण है–

(क) ऐसी वस्तुएँ जिन पर मनुष्य का भौतिक नियंत्रण नहीं हो सकता, कब्जे की विषयवस्तु नहीं हो सकती। उदाहरणर्थ, चन्द्रमा, सितारे आदि।

(ख) किसी वस्तु पर वास्तविक कब्जा होने के लिए व्यक्ति का उस पर भौतिक नियंत्रण होना आवश्यक है। लेकिन इसका आशय यह कभी नहीं है कि उस वस्तु को मनुष्य हमेशा ही अपने वास्तविक नियंत्रण में रखे रहे।

(ग) तथ्यतः कब्जे के लिए व्यक्ति का वस्तु पर केवल भौतिक नियंत्रण होना ही पर्याप्त नहीं है, उस व्यक्ति को अन्यों को उस कब्जे से अपवर्जित (euclude) करने की सामर्थ्य भी होना चाहिये।

(घ) कब्जे के अर्जन, त्यजन या समाप्ति के निर्धारण के लिए कब्जाधारी की उस वस्तु को धारण किये रहने की इच्छा होना महत्वपूर्ण है। लेकिन अपवाद रूप में कुछ दशाओं में बिना इच्छा या आशय के भी कब्जा (Possession) रह सकता है।

(6) विधितः कब्जा– कानून में कब्जा को ''डी ज्यूर'' कब्जा भी कहा जाता है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि कानून दो स्पष्ट कारणों से कब्जा सुरक्षित करता है, खास तौर पर, जो इस प्रकार हैं।

(1) स्वामी को कुछ कानूनी अधिकार प्रदान करके।

(2) व्यक्ति के रूप में कब्जा करने वाले लोगों को दंडित करके या धारक को हर्जाना देकर।

जब भी कोई व्यक्ति कब्जा करने के लिए मुकदमा दायर करता है, तो सबसे पहले अदालत यह पता लगाती है कि क्या वादी के पास विवादित वस्तु का वास्तविक कब्जा था। तथ्य दर्शाते हैं कि वास्तविक कब्जा के ज्यादातर मामलों में वैध कब्जा होता है, लेकिन कई ऐसे मामले भी होते हैं जब किसी व्यक्ति के पास वस्तु का वास्तविक कब्जा होने के बावजूद कानून में कब्जा नहीं होता।

कानूनी अर्थ में, कब्जा एक सापेक्ष शब्द के रूप में उपयोग किया जाता है। कानून आम तौर पर इस बात से चिंतित नहीं होता कि सबसे अच्छा मालिकाना हक किसके पास हैय बल्कि, यह इस बात से चिंतित होता है कि उसके पहले के समूहों में से किसका बेहतर मालिकाना हक है।

(1) मेरी बनाम ग्रीन (1847) 7 एम एंड डब्ल्यू 623– इस मामले में , वादी ने नीलामी में एक टेबल खरीदी और उसके एक दराज में पर्स पाया। इसके बाद, उसे पता चला कि विक्रेता के गुप्त दराज में कुछ पैसे थे, लेकिन उसने

उसे हड़प लिया। यह माना गया कि यह वादी का नहीं बल्कि विक्रेता का था क्योंकि हस्तांतरण की प्रक्रिया के दौरान उस पर्स के लिए इरादे का तत्व गायब था। उस पर्स को बेचने का इरादा विक्रेता का नहीं था और उस पर्स को खरीदना क्रेता का नहीं था।

(2) हन्नाह बनाम पील (1945) 1 के.बी. 509– इस मामले में , वादी एक सैनिक था और उसे एक घर में रहने के लिए कहा गया था और उसे वहाँ से एक ब्रोच मिला। प्रतिवादी ने सैनिक के खिलाफ मुकदमा दायर किया लेकिन ब्रोच मालिक को नहीं दिया गया क्योंकि उसने घर को भौतिक रूप से अपने कब्जे में नहीं लिया था और ब्रोच फर्श पर पाया गया था। कॉर्पस तत्व कभी भी घर के मालिक के पक्ष में नहीं था और जिस तरह से ब्रोच पाया गया था, उसमें रेस नुलिस का सिद्धांत लागू था।

(7) स्वामित्व और कब्जे में अन्तर–

आधार	**स्वामित्व**	**कब्ज़ा**
अर्थ	कानून द्वारा मान्यता प्राप्त कानूनी अधिकार।	स्वामित्व के बिना भौतिक नियंत्रण.
कानूनी मान्यता	वास्तविक अवधारणा.	वास्तविक अवधारणा.
अधिकारों की सीमा	अधिक व्यापक।	सीमित।
स्थानांतरण	जटिल प्रक्रियाएं.	सरल, प्रायः कोई औपचारिक दस्तावेजीकरण नहीं।
कानूनी उपायों	मालिकाना उपचार उपलब्ध हैं।	सुरक्षा के लिए अधिकारिक उपाय

(8) विधि और नैतिकता में अन्तर–

आधार	**कानून**	**नीति**
अर्थ	ये समाज में न्याय करने और मानव व्यवहार को विनियमित करने के लिए नियमों और विनियमों का एक समूह है।	नैतिकता से तात्पर्य उन सभी स्वीकार्य रीति-रिवाजों और प्रथाओं से है जो अनादि काल से चली आ रही हैं।
मूल	किसी देश में कानून विधायकों या विधिनिर्माताओं द्वारा बनाए जाते हैं तथा संसद इस पूरी प्रक्रिया में सक्रिय भूमिका निभाती है।	नैतिकता समाज की उपज है। इसे समाज के धार्मिक नेता या परिवार के सदस्य तैयार करते हैं।
धर्म की भूमिका	कानून बनाने में धर्म की कोई भूमिका नहीं है।	किसी विशेष क्षेत्र में लोगों के धर्म के आधार पर नैतिकता का निर्धारण किया जा सकता है।
वर्दी	पूरे देश में कानून एक समान हैं और सभी लोगों को उनका पालन करना अनिवार्य है।	विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले अलग-अलग लोगों की मान्यताओं के आधार पर नैतिकता क्षेत्र दर क्षेत्र अलग-अलग होती है।
FLEXIBILITY	कानून नैतिकता की तुलना में अधिक लचीले होते हैं क्योंकि उन्हें लोगों की मांग के आधार पर बदला जा सकता है।	समुदाय में लोगों की कठोर मानसिकता के कारण नैतिकता को बदलना बहुत कठिन होता है।
उद्देश्य	कानूनों का उद्देश्य उचित सामाजिक व्यवस्था और शांति के साथ सभ्य समाज का निर्माण करना है।	नैतिकता का उद्देश्य लोगों को सही और गलत के बीच अंतर करना सिखाना तथा दूसरों के नैतिक अधिकारों की रक्षा करना है।
सज़ा	किसी व्यक्ति को कोई भी गलत कार्य करने पर दंडित किया जा सकता है, जैसे जुर्माना भरना या कारावास।	किसी व्यक्ति को नैतिक मानकों का पालन न करने के लिए दंडित नहीं किया जा सकता क्योंकि वे कानूनी रूप से बाध्यकारी नहीं हैं।
प्रवर्तनीयता	कानून राज्य द्वारा देश के नागरिकों पर लागू किये जाते हैं।	नैतिकता राज्य द्वारा लागू नहीं की जा सकती, तथा व्यक्ति कानूनी रूप से उनका पालन करने के लिए बाध्य नहीं हैं।
उदाहरण	कानून का एक उदाहरण भारतीय दंड संहिता, 1860 के प्रावधान हैं।	नैतिकता का एक उदाहरण अपने माता-पिता का आदर करना और उनकी आज्ञा का पालन करना है।

प्रश्न न0 10—नैतिकता विधि के आधार है। उपरोक्त कथन के प्रकाश में नैतिकता के महत्व की व्याख्या कीजिए।

उत्तर— कानून और नैतिकता— जब से कानून को सामाजिक व्यवस्था के एक प्रभावी साधन के रूप में मान्यता दी गई है, तब से नैतिकता के साथ इसके संबंधों पर बहस जारी है। पैटन के अनुसार, नैतिकता या आचार सर्वोच्च भलाई का अध्ययन है। सामान्य तौर पर, नैतिकता को निम्न के रूप में परिभाषित किया गया हैरू सभी प्रकार के नियम, मानक, सिद्धांत या मानदंड जिनके द्वारा मनुष्य स्वयं के साथ और दूसरों के साथ अपने संबंधों को विनियमित, निर्देशित और नियंत्रित करते हैं। कानून और नैतिकता दोनों का एक ही उद्गम है। वास्तव में, नैतिकता ने कानूनों को जन्म दिया। राज्य ने नैतिक नियमों के पीछे अपनी स्वीकृति दी और उन्हें लागू किया। इन नियमों को कानून नाम दिया गया। हार्ट के शब्दों में, प्रत्येक आधुनिक राज्य का कानून हजारों बिंदुओं पर स्वीकृत सामाजिक नैतिकता और व्यापक नैतिक आदर्श दोनों के प्रभाव को दर्शाता है। कानून और नैतिकता दोनों का एक ही उद्देश्य या अंत है, क्योंकि दोनों ही मनुष्यों के कार्यों को इस तरह निर्देशित करते हैं कि अधिकतम सामाजिक और व्यक्तिगत भलाई उत्पन्न हो। कानून और नैतिकता दोनों को सामाजिक या बाहरी स्वीकृति का समर्थन प्राप्त है। बेंथम ने कहा कि कानून का नैतिकता के साथ एक ही केंद्र है, लेकिन इसकी परिधि समान नहीं है। नैतिकता आम तौर पर कानून का आधार है, यानी अवैध (हत्या, चोरी, आदि) भी अनैतिक है। लेकिन कई अनैतिक कार्य हैं जैसे दो अविवाहित वयस्कों के बीच यौन संबंध, कठोरता, कृतघ्नता, आदि जो अनैतिक हैं लेकिन अवैध नहीं हैं। इसी तरह, ऐसे कानून भी हो सकते हैं जो नैतिकता पर आधारित नहीं हैं और उनमें से कुछ नैतिकता के विपरीत भी हो सकते हैं, जैसे तकनीकी मामलों पर कानून, यातायात कानून, आदि। कानून की कसौटी के रूप में नैतिकतारू कई न्यायविदों ने देखा है कि कानून को नैतिकता के अनुरूप होना चाहिए, और जो कानून नैतिकता के अनुरूप नहीं है, उसका उल्लंघन किया जाना चाहिए और ऐसे कानून बनाने वाली सरकार को उखाड़ फेंकना चाहिए।

पैटन ने कहा कि अगर कानून लोकप्रिय मानक से पीछे रह जाता है, तो यह विवाद में पड़ जाता है, अगर कानूनी मानक बहुत ऊंचे हैंय तो प्रवर्तन में बड़ी मुश्किलें आती हैं।

कानून के अंत के रूप में नैतिकतारू कुछ न्यायविदों के अनुसार, कानून का उद्देश्य न्याय करना है।

पैटन ने कहा कि न्याय कानून का अंत है। अपने प्रचलित अर्थ में, श्न्यायश शब्द नैतिकता पर आधारित है। इस प्रकार, न्याय का हिस्सा होने के कारण ऐसी नैतिकता न्याय का लक्ष्य बन जाती है। हमारे संविधान की प्रस्तावना जिस लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयास करती है, वह नैतिकता है।

प्रस्तावना—प्राचीन काल में कोई भेद नहींरू समाज के आरंभिक चरणों में कानून और नैतिकता के बीच कोई भेद नहीं था। हिंदू कानून में, जिसके प्रमुख स्रोत वेद और स्मृतियाँ हैं, हमें आरंभ में ऐसा कोई भेद नहीं मिलता। हालाँकि, बाद में मीमांसा ने अनिवार्य और संस्तुति संबंधी आदेशों में अंतर करने के लिए कुछ सिद्धांत निर्धारित किए। पश्चिम में भी स्थिति ऐसी ही थी। यूनानियों ने प्राकृतिक अधिकारों के सिद्धांत के नाम पर कानून का सैद्धांतिक नैतिक आधार तैयार किया। रोमन न्यायविदों ने 'प्राकृतिक कानून' के नाम पर कुछ नैतिक सिद्धांतों को कानून के आधार के रूप में मान्यता दी। मध्य युग में, यूरोप में चर्च का बोलबाला हो गया। प्राकृतिक कानून को धार्मिक आधार दिया गया और ईसाई नैतिकता को कानून का आधार माना गया।

कानून के आधार के रूप में नैतिकता

पूरे इतिहास में, कानून और नैतिकता के बीच कोई स्पष्ट अंतर नहीं किया गया है। अंतर न होने के कारण, सभी कानूनों की उत्पत्ति समाज में लोगों द्वारा नैतिक रूप से सही माने जाने वाले सिद्धांतों से हुई। आखिरकार, राज्य ने नैतिक रूप से सही चीजों को चुना और उन्हें कानून या नियम और विनियमों का रूप दिया। इसलिए, कानून की उत्पत्ति होती है और यह लोगों के बीच प्रचलित मूल्यों पर आधारित होता है, जिससे दो अवधारणाओं, यानी कानून और नैतिकता के बीच समानता पैदा होती है। उदाहरण के लिए, किसी की हत्या करना या किसी का बलात्कार करना नैतिक रूप से गलत है। इस मूल्य ने कानून का रूप ले लिया है। समय के साथ नैतिकता को कानूनों से अलग कर दिया गया है, लेकिन यह कानूनी विकास का एक अभिन्न अंग बना हुआ है। कानून में अनिवार्य रूप से कुछ बुनियादी सिद्धांत शामिल होते हैं जैसे निष्पक्षता और समानता का सिद्धांत, और ये सिद्धांत नैतिकता और नैतिकता से प्राप्त होते हैं।

कानून की नैतिकता की कसौटी— कानूनों के अस्तित्व का पूरा उद्देश्य समाज में न्याय सुनिश्चित करना और सभी लोगों के कल्याण के लिए सबसे अच्छा काम करना है। चूंकि न्याय का सिद्धांत नैतिकता के दायरे में आता है, इसलिए कई न्यायविदों का मानना है कि कानून और नैतिकता के बीच कोई विरोधाभास नहीं होना चाहिए। कोई भी कानून जो नैतिक मानकों का पालन नहीं करता है, उसे हटा दिया जाना चाहिए और कोई कानून सही है या गलत, इसका मूल्यांकन इस आधार पर किया जा सकता है कि वह नैतिक मूल्यों के अनुरूप है या नहीं।

कानून के उद्देश्य के रूप में नैतिकता— जैसा कि पहले कहा गया है, कानून बनाने का अंतिम लक्ष्य एक ऐसा समाज बनाए रखना है जो न्याय, निष्पक्षता और समानता के सिद्धांतों पर आधारित हो। कुछ नैतिक मानकों का पूरा उद्देश्य समाज में किसी तरह की व्यवस्था बनाए रखना भी है जिससे संघर्ष कम होंगे। इससे पता चलता है कि कमोबेश इन दोनों घटनाओं का उद्देश्य एक ही है। न्यायविदों का मानना है कि अगर कानून को लोगों के जीवन में शामिल रहना है, तो वह नैतिकता को नजरअंदाज नहीं कर सकता। अगर कोई कानून नैतिक मानकों के खिलाफ है, तो लोग उसका पालन करने में हिचकिचा सकते हैं जिससे समाज में और संघर्ष पैदा होंगे।

दार्शनिक विकल्प– कानून के विकास में मोटे तौर पर दो सिद्धांत हैं, जो कानूनी प्रत्यक्षवाद और प्राकृतिक कानून सिद्धांत हैं।

प्राकृतिक कानून सिद्धांत के अनुसार, कोई भी घोर अन्यायपूर्ण कानून, जिससे नैतिकता के मानकों का उल्लंघन होता है, वह कानून नहीं है। इसका मतलब है कि कानून और नैतिकता गहराई से जुड़े हुए हैं। श्प्राकृतिक कानूनश शब्द अपने आप में इस विचार से आता है कि मानव नैतिकता प्रकृति से आती है और समाज में नियमों और विनियमों का रूप लेती है। प्राकृतिक कानून सिद्धांत का समर्थन करने वाले कानूनी सिद्धांतकार ऑगस्टीन, एक्विनास, लोन फुलर और अन्य थे।

दूसरी ओर कानूनी प्रत्यक्षवाद कहता है कि कानूनी निकाय नैतिकता के किसी भी मानदंड से रहित होता है। ऐसा कहा जा रहा है, यह सिद्धांत कानूनों पर नैतिकता के प्रभाव को पूरी तरह से नकारता नहीं है। सिद्धांत इस दृष्टिकोण का अनुसरण करता है कि सभी कानून, नियम और विनियम मानव निर्मित हैं और इस प्रकार कानूनों और नैतिकता के पृथक्करण की वकालत करते हैं। कानूनी प्रत्यक्षवाद की वकालत करने वाले कानूनी सिद्धांतकारों में जॉन ऑस्टिन और एच.एल.ए. हार्ट शामिल हैं।

कानून और नैतिकता पर हार्ट–फुलर बहस– हार्ट–फुलर बहस, कानून और नैतिकता के बीच दिलचस्प अंतर–निर्भरता पर लोन फुलर और एच.एल.ए. हार्ट के बीच विचारों और राय के सबसे दिलचस्प आदान–प्रदानों में से एक है। यह 1958 में हार्वर्ड लॉ रिव्यू में प्रकाशित हुआ था और इसमें प्रत्यक्षवादी और प्राकृतिक कानून दर्शन में विचारों के अंतर को उजागर किया गया था। इन दोनों विचारकों द्वारा प्रस्तुत बिंदुओं को समझने के लिए, उनकी मान्यताओं और उनके पीछे के तर्क का अलग–अलग विश्लेषण करना महत्वपूर्ण है।

एच.एल.ए. हार्ट– हार्ट एक प्रत्यक्षवादी हैं और इसलिए उनकी राय है कि कानून और नैतिकता के बीच घनिष्ठ संबंध हो सकता है, लेकिन दोनों निश्चित रूप से एक–दूसरे पर निर्भर नहीं हैं। ऐसा कहने के बाद, हार्ट का मानना है कि कानून समाज में व्याप्त नैतिकता से काफी प्रभावित हुआ है। उनके अनुसार, कानून क्या होना चाहिए और क्या होना चाहिए, इसके बीच एक स्पष्ट अंतर किया जाना चाहिए। यहीं पर हार्ट ने पेनम्ब्रा की समस्या को सामने लाया, जिसका अर्थ है कानून के अस्पष्ट होने पर अर्थ निर्धारित करना। फुलर ने इसके विरोध में कहा कि ऐसी परिस्थितियों में जहां कानून अनिश्चित है, न्यायाधीश नैतिकता के आधार पर निर्णय लेते हैं, मूल रूप से क्या होना चाहिए। इस पर हार्ट ने जवाब देते हुए कहा कि क्या होना चाहिए यह निर्धारित करना कानूनी अर्थ से समझा जाना चाहिए, न कि नैतिक अर्थ से। अनिवार्य रूप से, कानून की व्याख्या कानूनी दुनिया के बाहर से नहीं आ सकती।

कानून और नैतिकता के बीच अंतर्संबंध के कारण चुनौतियाँ– कानून और नैतिकता की दो अवधारणाएँ कई कारणों से अलग हो सकती हैं, लेकिन एक बात जो उनमें समान है वह यह है कि ये दोनों हमारे जीवन जीने के तरीके को प्रभावित करती हैं। नैतिकता और कानून दोनों ही अस्पष्ट अवधारणाएँ हैं जिनका कोई निश्चित अर्थ नहीं है। ये दोनों ही अवधारणाएँ समय के साथ उभरे नए विचारों के साथ विकसित हुई हैं। आजकल, ऐसा प्रतीत होता है कि नैतिकता का विचार एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में भिन्न होने लगा है। इसका मतलब है कि नैतिकता अपने आप में व्यक्तिपरक हो गई हैय जो एक के लिए नैतिक रूप से गलत हो सकता है वह दूसरे के लिए नैतिक रूप से सही हो सकता है। जब नैतिक रूप से सही क्या हो सकता है इसका कोई निश्चित मानक नहीं है, तो कानून निर्माता नैतिकता के आधार पर कानून कैसे बना सकते हैं? आधुनिक दुनिया कानून और नैतिकता के बीच टकराव देख रही है और ऐसे कई मुद्दे हैं जहाँ इन दोनों अवधारणाओं को ओवरलैप नहीं किया जाना चाहिए, और नए कानूनों को पूरी तरह से मौजूदा कानूनी ढांचे पर निर्भर होना चाहिए। न्याय सुनिश्चित करने वाले कानून बनाने के लिए एक प्रगतिशील दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है, जो पूरी तरह से नैतिकता के अनुरूप नहीं हो सकता है। व्यावहारिक दृष्टिकोण से कानून और नैतिकता के बीच संघर्ष को समझने के लिए निम्नलिखित मुद्दों का विश्लेषण किया जा सकता है।

डडली और स्टीफन केस– आर वी डडली और स्टीफंस (1884) कानून और नैतिकता के बीच सदियों पुरानी बहस से निपटने वाले सबसे प्रसिद्ध मामलों में से एक है। इस मामले में इस बात पर चर्चा की गई थी कि क्या नरभक्षण, जिसे अत्यधिक अनैतिक कार्य माना जाता था, आवश्यकता और असहायता के प्रश्न पर किया जा सकता है। मामले के तथ्यों में चार व्यक्ति शामिल थे जो समुद्र के बीच में, जमीन से बहुत दूर, एक नाव में फंसे हुए थे। पुरुषों के पास किसी भी व्यक्ति से संपर्क करने का कोई तरीका नहीं था और वे बिना किसी भोजन और पानी के नाव में फंसे हुए थे। भोजन और पानी के बिना सात दिनों तक खुद को प्रताड़ित करने के बाद, जहाज के कप्तान थॉमस डडली ने एक अनैतिक समाधान निकाला। उन्होंने सुझाव दिया कि चार लोगों में से एक को बलिदान देना होगा ताकि अन्य तीन उसका मांस खाकर जीवित रह सकें। एडवर्ड स्टीफंस सहमत हो गए जबकि नेड ब्रूक्स ने इस योजना को आगे बढ़ाने से इनकार कर दिया और केबिन बॉय रिचर्ड पार्कर से सलाह नहीं ली गई। आखिरकार, लड़के को डडली और स्टीफन ने मार डाला जिसके बाद तीनों लोगों ने लड़के का मांस खाया।

<u>प्रश्न न0 11–</u>प्रतिनिहित दायित्व से आप क्या समझते है? अपने सेवकों के द्वारा कारित किये गये अपकृत्यों के लिए भारत सरकार के दायित्वों का निर्धारण कीजिए।

<u>उत्तर</u>– कानून अपने नागरिकों पर कुछ कर्तव्य लगाता है। इन कर्तव्यों का उल्लंघन एक गलत कार्य है। जब कोई व्यक्ति आपराधिक कानून या अनुबंध के उल्लंघन या विश्वास के उल्लंघन जैसे नागरिक गलत कार्यों के विपरीत नागरिक कानून द्वारा लगाए गए कर्तव्य का उल्लंघन करता हैए तो वह टोर्ट कानून का उल्लंघन करता है। टोर्ट

मुख्य रूप से एक नागरिक गलत हैए दूसरे में निहित सामान्य कानूनी अधिकारों का उल्लंघन। कानून के सामान्य क्रम मेंए जो व्यक्ति अपराध करता हैए वह सजा काटता है। हालाँकिए इस सामान्य नियम के कुछ अपवाद हैंए जिनमें से एक प्रतिनिधि दायित्व की सामान्य कानून अवधारणा है। प्रतिनिधि शब्द लैटिन शब्द ष्वाइसष् से लिया गया है जिसका अर्थ है के स्थान पर। व्युत्पत्ति के अनुसारए प्रतिनिधि दायित्व का अर्थ है श्इसके बजाय दायित्वश् यानी एक द्वारा वहन किया गया दायित्व लेकिन दूसरे द्वारा भुगता या चुकाया गया। श्विकरश् शब्द वाइस का समानार्थी है और इसका अर्थ है 'व्यक्ति में' या विकल्प।कानून की दृष्टि मेंए किसी व्यक्ति को दूसरे के कृत्यों के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता हैए उसे केवल उसके द्वारा किए गए टोर्ट या गलत कार्यों के लिए उत्तरदायी ठहराया जाएगा। हालाँकिए कुछ परिस्थितियों मेंए किसी व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति के दायित्व का निर्वहन करने के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। जब कोई व्यक्ति ऐसी परिस्थितियों में किसी दूसरे व्यक्ति के दायित्व का निर्वहन करता हैए तो उसे प्रतिनिधि दायित्व कहा जाता है। प्रतिनिधि दायित्व गलत काम करने वाले के अलावा किसी अन्य व्यक्ति पर दायित्व थोपता हैए जिसे आरोपित दायित्व भी कहा जाता है।

(1) एक व्यक्ति द्वारा गलतध्अपराधपूर्ण कार्य या चूक की जाती है

(2) गलत करने वाले और अपकारक के बीच नियंत्रण का संबंध होता है।

(3) जब ऐसा कार्य या चूक सीधे उक्त संबंध से संबंधित हो।

ऐसे 3 प्रकार के संबंध हैं, जिनमें प्रतिनिधि दायित्व की अवधारणा लागू की जा सकती है, अर्थात् एजेंट और

(1) **प्रिंसिपल के बीच संबंध–** एजेंट और प्रिंसिपल के बीच एक प्रत्ययी संबंध होता है, यानी विश्वास पर आधारित संबंध। इस संबंध में, प्रिंसिपल एजेंट को नियुक्त करता है और उसे अपनी ओर से कार्य करने और प्रिंसिपल द्वारा उस पर लगाए गए कर्तव्यों का निर्वहन करने के लिए अधिकृत करता है। जिस व्यक्ति को इस तरह कार्य करने के लिए अधिकृत किया जाता है, वह एजेंट होता है। प्रिंसिपल का प्राधिकरण व्यक्त या निहित हो सकता है। यदि एजेंट अपने रोजगार के दौरान या अपने कर्तव्यों के निर्वहन में कोई अपकृत्य करता है, तो उस प्रिंसिपल पर भी दायित्व लगाया जा सकता है, जिसने पहले स्थान पर ऐसे कार्य को अधिकृत किया था। यहां, प्रिंसिपल अपने एजेंट पर शक्ति और नियंत्रण की स्थिति में होता है। इसलिए, एजेंट और प्रिंसिपल दोनों संयुक्त अपकृत्यकर्ता हैं और उनका दायित्व संयुक्त और अलग–अलग है। वादी को दोनों या किसी एक पर मुकदमा करने का अधिकार है। स्टेट बैंक **ऑफ इंडिया बनाम श्यामा देवी मामले में,** वादी के पति ने अपने खाते में जमा किए जाने वाले चेक अपने एक मित्र को दिए थे, जो प्रतिवादी बैंक का कर्मचारी था। जमा की कोई रसीद नहीं ली गई और मित्र ने राशि का दुरुपयोग किया। न्यायालय ने माना कि कर्मचारी बैंक में अपने रोजगार के दायरे में काम नहीं कर रहा था, बल्कि धोखाधड़ी करने के समय जमाकर्ता के मित्र के रूप में काम कर रहा था। इसलिए, प्रतिवादी बैंक को प्रतिनिधि दायित्व के तहत उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता।

(2) स्वामी और उसके नौकर के बीच संबंध– यह कानून का एक सामान्य नियम है, कि यदि कोई स्वामी अपने नौकर द्वारा कुछ कार्य किए जाने को अधिकृत करता है या आदेश देता है, तो मालिक को नौकर द्वारा किए गए किसी भी अपकृत्य के लिए उत्तरदायी ठहराया जाना चाहिए। फिर से, यहाँ स्वामी अपने पर्यवेक्षण के तहत काम करने वाले नौकर पर नियंत्रण या अधिकार की स्थिति में है। स्वामी का दायित्व इसलिए उत्पन्न होता है क्योंकि वह अपने नौकर द्वारा किए गए कार्यों का लाभ उठाता है।

हालांकि, मालिक को अपने नौकर के कार्यों के लिए उत्तरदायी बनाने के लिए निम्नलिखित अनिवार्यताओं को पूरा किया जाना चाहिए–

(1) नौकर द्वारा अपकृत्य किया गया था। नौकर वह व्यक्ति है जिसे उसके मालिक द्वारा सौंपे गए सभी कर्तव्यों को पूरा करने के लिए नियुक्त किया जाता है।

(2) नौकर ने रोजगार के दौरान अपकृत्य किया। किसी कार्य को रोजगार के दौरान तब कहा जाता है जब गलत कार्य मालिक द्वारा स्पष्ट रूप से अधिकृत किया जाता है या यदि यह मालिक द्वारा अधिकृत कार्य करने का गलत या अनधिकृत तरीका है।

यह ध्यान रखना उचित है कि यह दायित्व तब भी उत्पन्न होता है जब नौकर ने स्पष्ट निर्देशों के विरुद्ध और अपने मालिक के किसी लाभ के लिए कार्य नहीं किया हो। एजेंट और प्रिंसिपल संबंध की तरह, मालिक और नौकर का दायित्व संयुक्त और अलग–अलग होता है और दोनों संयुक्त अपकृत्यकर्ता होते हैं। हालांकि, ऐसे मामलों में जहां नौकर अपने रोजगार के दौरान कार्य करता है, मालिक को उसके कार्यों के लिए केवल इसलिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है क्योंकि उसे ऐसा कार्य करने का अवसर नहीं मिला होता, लेकिन वह मालिक की सेवा में होता। इसी तरह, मालिक को उसके द्वारा नियुक्त किए गए स्वतंत्र ठेकेदार के गलत कार्यों के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है। एक नौकर की तरह, एक स्वतंत्र ठेकेदार अपने नियोक्ता के कार्य को पूरा करने का बीड़ा उठाता है, हालांकि, एक नौकर के विपरीत, वह अपने नियोक्ता की देखरेख या नियंत्रण में नहीं होता है और अपने कर्तव्यों के निर्वहन में स्वतंत्र विवेक का उपयोग कर सकता है।

परंपरागत रूप से, एक नौकर और एक स्वतंत्र ठेकेदार के बीच अंतर निर्धारित करने के लिए परीक्षण षनियंत्रण परीक्षणष हुआ करता था। हालाँकि, आधुनिक अधिकारी ''नौकरी और आगजनी'' परीक्षण लागू करते हैं, यानी यह जाँचने के लिए कि क्या कोई व्यक्ति दूसरे का वेतन स्वामी है और उसे अपने कर्मचारी को नौकरी से निकालने का अधिकार है।

(3) साझेदारों की जिम्मेदारी– भागीदारों के बीच संबंध प्रिंसिपल और एजेंट का होता है और एजेंसी के नियम भी उन पर लागू होते हैं। साझेदारी में सभी अभिनेता एक दूसरे की ओर से काम करते हैं जबकि खुद को सामूहिक रूप से पेश करते हैं। ये साझेदारी फर्म, कंपनी, ट्रस्टी या हिंदू संयुक्त परिवार का प्रतिनिधित्व करने वाले कर्ता के रूप में भी हो सकती है। इसलिए, भारतीय भागीदारी अधिनियम, 1935 में उल्लिखित नियमों के तहत एक भागीदार को दूसरे भागीदार द्वारा गलत या लापरवाही से किए गए कार्य के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

हैमलिन बनाम ह्यूस्टन एंड कंपनी में, फॉर्म के भागीदारों में से एक ने अपने अधिकार के दायरे में काम करते हुए, वादी के क्लर्क को उसके रोजगार अनुबंध का उल्लंघन करने के लिए प्रेरित करने के लिए रिश्वत देने का प्रयास किया। न्यायालय ने माना कि दूसरे भागीदार को भागीदारों में से किसी एक द्वारा किए गए अपकृत्य के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

राज्य की जिम्मेदारी– पिछले कई दशकों से, राज्य की शक्तियों और कार्यों में काफी विस्तार हुआ है। पारंपरिक अहस्तक्षेप नीतियों से लेकर कल्याणकारी राज्य के रूप में राज्य की मान्यता तक में काफी बदलाव आया है। यह भी एक प्रचलित कहावत है कि ''सत्ता भ्रष्ट करती है और पूर्ण सत्ता पूर्ण रूप से भ्रष्ट करती है।'' इसलिए, राज्य द्वारा नियोजित व्यक्तियों द्वारा नागरिकों के सामान्य कानूनी अधिकारों के उल्लंघन की परिस्थितियों में अपनी जवाबदेही सुनिश्चित करने के लिए राज्य की शक्तियों पर नियंत्रण एक आवश्यक आवश्यकता है। यह आवश्यकता भारतीय संविधान के अनुच्छेद 300 द्वारा पूरी की गई है, जो यह प्रावधान करती है कि भारत संघ और राज्य किसी भी मुकदमे या कार्यवाही के उद्देश्य के लिए न्यायिक व्यक्ति हैं और इस प्रकार उनके नाम पर मुकदमा चलाया जा सकता है या उन पर मुकदमा चलाया जा सकता है। वर्तमान में भारतीय संविधान के आने से पहले, भारत सरकार अधिनियम, 1858 की धारा 65 के तहत राज्य के दायित्व का संक्षिप्त उल्लेख था। राज्य पर प्रतिनिधि दायित्व के आरोपण की अवधारणा अपने नागरिकों की सुरक्षा के अपने मूल कर्तव्य के प्रदर्शन के लिए आवश्यक है। यदि ऐसे प्रावधान न होते, तो सरकारी अस्पताल में कोई भी डॉक्टर या कोई भी पुलिस अधिकारी किसी भी दुर्भावनापूर्ण या गलत कार्य के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता था। प्रतिनिधि दायित्व की अवधारणा का आधार और औचित्य।

प्रतिनिधि दायित्व की अवधारणा की जड़ें निम्नलिखित लैटिन कहावतों में पाई जाती हैं –– ''क्विट फैसिट पर एलियमफैसिट पर से'' शाब्दिक अर्थ है, ''जो कोई दूसरे के माध्यम से कोई कार्य करता है, उसे कानून में स्वयं करने वाला माना जाता है।'' यह कहावत स्वामी–सेवक और प्रधान–एजेंट संबंधों में लागू होती है क्योंकि इस संबंध में एक अभिनेता को दूसरे द्वारा विशेष रूप से उनकी ओर से कार्य करने या कुछ निर्दिष्ट कार्य करने के लिए नियुक्त किया जाता है। चूँकि वे दूसरे के कार्यों का लाभ उठाते हैं, इसलिए वे ऐसे कार्यों के निष्पादन में होने वाली किसी भी देनदारी को स्वीकार करे के लिए भी उत्तरदायी होते हैं।

रेस्पोंडेट सुपीरियर–शाब्दिक अर्थ है, ''वरिष्ठ को उत्तरदायी होने दें।'' यहाँ भी, स्वामी और प्रधान को शक्ति और नियंत्रण की स्थिति प्राप्त है जिसके द्वारा वे किसी कार्य के निष्पादन को निर्देशित या अधिकृत कर सकते हैं। इन मामलों में, चूँकि वे श्रेष्ठता की स्थिति रखते हैं, इसलिए उन्हें अपने कर्मचारियों के कार्यों के लिए प्रतिनिधि रूप से उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

इस सिद्धांत को निम्नलिखित कारणों से भी उचित ठहराया जाता है–

(1) यह धारणा कि कोई भी व्यक्ति जो अपनी ओर से किसी दूसरे को काम पर रखता है, उसके पास ''बहुत ज्यादा पैसे'' होते हैं और इसलिए, उसे वास्तविक अपराधी के विकल्प के रूप में उस व्यक्ति के दावों को पूरा करने के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सकता है, जिसके साथ गलत व्यवहार किया गया है। उदाहरण के लिए, एक मालिक–सेवक संबंध में, मालिक अपनी बड़ी जेब या बीमा में अपने दावे के कारण दावे को पूरा करने में सक्षम हो सकता है।

(2) चूँकि मालिक के पास संभावित वित्तीय चिंता है, इसलिए वह अपने कर्मचारियों और दूसरों के लिए पूर्ण सुरक्षा और देखभाल सुनिश्चित करेगा।

(3) चूँकि एक व्यक्ति दूसरे के श्रम का फल भोगता है, इसलिए उसे किसी भी नुकसान के लिए भी उत्तरदायी ठहराया जाना चाहिए। उसे लाभ स्वीकार करने और अपने श्रम के बोझ को अस्वीकार करने की अनुमति नहीं दी जा सकती।

<u>प्रश्न न0 12</u>–विधि न्याय प्राप्त करने का एक साधन है। उपरोक्त कथन के प्रकाश में विधि के उददेश्यों की व्याख्या कीजिए।

<u>उत्तर</u>– 'कानून' शब्द के तीन प्राथमिक अर्थ हैं। सबसे पहले, यह ष्कानूनी व्यवस्थाष की अवधारणा को दर्शाता है। यह एक संरचित प्रणाली को संदर्भित करता है जो राजनीतिक समाज के संगठित और आधिकारिक प्रभाव के माध्यम से संबंधों को नियंत्रित करता है और उचित आचरण को निर्देशित करता है। यह शासकीय निकाय के विनियमित बल का उपयोग करके संघर्षों को हल करने और व्यवस्था बनाए रखने के लिए एक रूपरेखा स्थापित करता है।

दूसरा, 'कानून' एक राजनीतिक रूप से संगठित समुदाय के भीतर मौजूद कानूनी उपदेशों की संपूर्णता को समाहित करता है। इसमें नियमों, विनियमों और सिद्धांतों का एक व्यापक संग्रह शामिल है जो व्यक्तियों और संस्थानों के व्यवहार का मार्गदर्शन करते हैं, एक कार्यशील और व्यवस्थित समाज सुनिश्चित करते हैं। कानूनी सिद्धांतों का यह समूह वह आधार बनाता है जिस पर समाज के संचालन और अंतःक्रियाएँ निर्मित होती हैं।

तीसरा, 'कानून' शब्द एक राजनीतिक रूप से संरचित समाज के भीतर संचालित होने वाले आधिकारिक नियंत्रण के सभी रूपों को समाहित करता है। इसमें न केवल कानून के सैद्धांतिक निर्माण शामिल हैं, बल्कि न्याय का व्यावहारिक अनुप्रयोग भी शामिल है। इसमें विवादों को हल करने और समाज में निष्पक्षता बनाए रखने के लिए स्थापित कानूनी सिद्धांतों का कार्यान्वयन शामिल है। कानून का यह पहलू कानूनी रूपरेखाओं द्वारा प्रदान किए गए सैद्धांतिक मार्गदर्शन और अधिकारियों द्वारा न्याय के सक्रिय निष्पादन के बीच अंतर करता है। एक संकीर्ण अर्थ में, 'कानून' विशेष रूप से नागरिक कानून या किसी विशेष भौगोलिक क्षेत्र को नियंत्रित करने वाले कानूनी नियमों को संदर्भित कर सकता है। यह परिभाषा कानूनी प्रणाली के मूर्त और परिचालन पहलुओं पर जोर देती है जो दैनिक बातचीत, विवादों और सामाजिक महत्व के मामलों को नियंत्रित करती है।

कानून का उद्देश्य– कानून कई उद्देश्यों को पूरा करता है, जिनमें से चार मुख्य हैं–

(1) व्यवस्था बनाए रखना

कानून सामाजिक मानदंडों को स्थापित करने के व्युत्पन्न के रूप में कार्य करता है। जिस तरह एक सभ्य समाज साझा मूल्यों की आवश्यकता रखता है, उसी तरह कानून एक सुसंगत ढांचा प्रदान करता है। लागू कानून समाज के दिशा–निर्देशों के साथ संरेखण सुनिश्चित करता है। उदाहरण के लिए, वन्यजीव प्रबंधन कानून भविष्य की पीढ़ियों के लिए खेल की सुरक्षा और संरक्षण करते हैं।

(2) मानक स्थापित करना– कानून समाज के भीतर स्वीकार्य आचरण के लिए एक बेंचमार्क निर्धारित करता है। यह उन कार्यों को निर्दिष्ट करता है जिन्हें आपराधिक माना जाता है, जो व्यक्तियों या उनके सामान को नुकसान पहुँचाने वाले व्यवहारों पर समाज के रुख को दर्शाता है। उदाहरण के लिए, किसी अन्य व्यक्ति को अनुचित नुकसान पहुँचाना एक अपराध है, जो हमला है।

(3) विवादों का समाधान–विविध इच्छाओं, आवश्यकताओं और मूल्यों को शामिल करने वाले समाजों में, विवाद अपरिहार्य हैं। कानून इन विवादों को सुलझाने के लिए एक औपचारिक रास्ता प्रदान करता है, अक्सर न्यायालय प्रणाली के माध्यम से।

(4) स्वतंत्रता और अधिकारों की रक्षा– संविधान और कानून व्यक्तियों को उनके संबंधित अधिकार क्षेत्र में विभिन्न अधिकार और स्वतंत्रता प्रदान करते हैं। कानून के महत्वपूर्ण कार्यों में से एक इन अधिकारों को सरकारों या व्यक्तियों जैसी संस्थाओं द्वारा अन्यायपूर्ण उल्लंघन से सुरक्षित रखना है। अगर किसी को लगता है कि सरकार द्वारा उनके अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार का उल्लंघन किया गया है, तो अदालती कार्यवाही के माध्यम से कानूनी सहारा उपलब्ध है। कानून के ये प्रमुख उद्देश्य सामूहिक रूप से सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने, स्वीकार्य आचरण को परिभाषित करने, असहमति को निपटाने और व्यक्तिगत स्वतंत्रता और अधिकारों की रक्षा करने में कानून की भूमिका को रेखांकित करते हैं।

न्यायशास्त्र में कानून के कार्य– न्यायशास्त्र में कानून के कार्य न्यायविदों के बीच विविध दृष्टिकोणों का विषय रहे हैं। कानून को एक गतिशील अवधारणा के रूप में पहचाना जाता है जो समय और स्थान के साथ विकसित होती है, सामाजिक परिवर्तनों के अनुकूल होती है। इसकी समकालीन व्याख्या कानून को न केवल एक लक्ष्य के रूप में बल्कि एक लक्ष्य को प्राप्त करने के साधन के रूप में रखती है – सामाजिक न्याय की प्राप्ति। सिद्धांतकारों के बीच आम सहमति यह है कि कानून न्याय सुनिश्चित करने के लिए एक प्रमुख साधन के रूप में कार्य करता है। कानून के कार्यों पर हॉलैंड द्वारा व्यक्त एक दृष्टिकोण यह दावा करता है कि कानून समाज के अधिक से अधिक कल्याण की सेवा करता है, जो व्यक्तिगत अधिकारों के लिए मात्र सुरक्षा की भूमिका से परे है।

रोस्को पाउंड ने कानून के चार प्रमुख कार्यों की पहचान कीरू कानून और व्यवस्था का संरक्षण, सामाजिक संतुलन को बनाए रखना, व्यक्तिगत स्वतंत्रता की सुविधा और मौलिक मानवीय आवश्यकताओं की संतुष्टि। उन्होंने कानून को सामाजिक इंजीनियरिंग के एक रूप के रूप में माना, जिसका निर्माण व्यक्तियों और राज्य दोनों के कल्याण को अनुकूलित करने के लिए किया गया है। यथार्थवादियों का प्रस्ताव है कि न्यायशास्त्र में कानून के कार्य व्यक्तियों और राज्य के सर्वोत्तम हितों को आगे बढ़ाते हैं, एक नियामक शक्ति के रूप में कार्य करते हैं। कानून के सार पर सैल्मंड का दृष्टिकोण तार्किक है। ष्कानूनष् शब्द में नियमों और सिद्धांतों की एक विस्तृत श्रृंखला शामिल है। यह समाज के ढांचे के भीतर न्याय, नैतिकता, तर्क, संरचना और अधिकार को दर्शाते हुए मानव व्यवहार को विनियमित करने वाले तंत्र के रूप में कार्य करता है। यह कानून, अधिनियम, नियम, विनियम, आदेश और अध्यादेश जैसे विधायी घटकों से भी संबंधित है। न्यायिक दृष्टिकोण से, इसमें न्यायालय के निर्णय, डिक्री, निर्णय, न्यायालय के आदेश और निषेधाज्ञा शामिल हैं। इस विस्तृत परिभाषा में अधिनियम, कानून, नियम, विनियम, आदेश, नैतिकता, न्याय, तर्क, निष्पक्षता, न्यायालय प्रक्रिया, आदेश, निर्णय, निषेधाज्ञा, कानूनी गलतियाँ, कानूनी दर्शन और सिद्धांत शामिल हैं।

B.A.LL.B.-6th Sem. Paper-V Law of Torts and Protection Act

प्रश्न न0 1– उपताप को परिभाषित कीजिए। विभिन्न प्रकार के उपतापों का वर्णन कीजिए।

उत्तर– एक अपकृत्य के रूप में न्यूसेन्स का तात्पर्य किसी व्यक्ति द्वारा भूमि के प्रयोग अथवा उपभोग अथवा उससे सम्बद्ध या उससे सम्बन्धित किसी अधिकार के साथ विधिविरूद्ध हस्तक्षेप है। आराम, स्वास्थ्य अथवा सुरक्षा के प्रतिकूल किया गया हस्तक्षेप अथवा बाधा के कार्य इसके उदाहरण है। हस्तक्षेप अथवा बाधा पहुँचाने का कार्य किसी भी रीति से किया जा सकता है, उदाहरण के लिये शोर, प्रकम्पन, ऊष्मा, धुँआ, गंध, धूम, जल, गैस, विद्युत प्रवाह, उत्खनन अथवा रोग उत्पन्न करने वाले जीवाणु न्यूसेन्स के स्त्रोत बन सकते है।

(1) प्रो0 विनफील्ड के अनुसार(According to Prof. Dinfield) – किसी व्यक्ति की भूमि के या उस पर अथवा उससे सम्बन्धित किसी अधिकार के उपयोग अथवा उपभोग में अवैध हस्तक्षेप उपताप है।

(2) पोलक के अनुसार (According to Pollak) – किसी व्यक्ति को उपभोग अथवा सामान्य अधिकार के प्रयोग में अवैध ढंग से बाधा पहुँचाने का दोष उपताप है।

(3) सामण्ड के अनुसार(According to Salmond)– "उपताप के दोष में कानूनी औचित्य के बिना उसकी भूमि से या कहीं और से वादी के कब्जे वाली भूमि में किसी भी हानिकारक वस्तु को भागने की अनुमति देना या अनुमति देना शामिल है, उदाहरण के लिए। पानी, धुआं, धुआं, गैस, शोर, गर्मी, कंपन, बिजली, बीमारी, रोगाणु, जानवर।''

उपताप के आवश्यक तत्व– उपताप के किसी कार्य को अपकृत्य कानून के तहत कार्रवाई योग्य बनाने के लिए निम्नलिखित आवश्यक बातें होनी चाहिए

(1)संतुष्ट होना– प्रतिवादी द्वारा गलत कार्य उपताप के खिलाफ कार्रवाई के लिए पहली अनिवार्यता गलत कार्य का आचरण है

(2) प्रतिवादी द्वारा– इसमें कोई भी कार्रवाई शामिल हो सकती है जो प्रथम दृष्टया कानूनी नहीं है और विवेकशील व्यक्ति की दृष्टि में अनुचित।

चेतावनी – यदि वादी अतिरिक्त संवेदनशील है और उसे प्रतिवादी का कृत्य उचित लगता है। उसकी संवेदनशीलता के कारण अनुचित, जो अन्यथा एक विवेकशील व्यक्ति के अनुसार उचित है उपताप के लिए कार्रवाई उत्पन्न नहीं हो सकती है। वादी को हुई क्षतिध्हानिध्असुविधा अगली अनिवार्यता के लिए वादी को होने वाली पर्याप्त क्षति या असुविधा की आवश्यकता होती है।

वादी. कहावत 'डी मिनिमिस नॉन क्यूरेट लेक्स' चलन में आती है और यह प्रदान करती है कि मुझे ऐसा करना चाहिए। अपनी संवेदनशीलता के कारण वादी द्वारा दावा की गई छोटी–छोटी बातों या न्यूनतम क्षति पर विचार न करें। फिर भी, यदि प्रतिवादी के कृत्य में उसके कानूनी अधिकारों में बाधा उत्पन्न होती है

वादी, उपताप खेल में आता है।

केस कानून : उषाबेन वी. भाग्यलक्ष्मी चित्र मंदिर में, जहां वादी ने मुकदमा दायर किया। प्रतिवादी ने फिल्म 'जय संतोषी मां' की स्क्रीनिंग का विरोध करते हुए दावा किया कि इससे दुख होता है एक विशेष हिंदू समुदाय की धार्मिक भावनाएं, यह कहते हुए अदालत ने याचिका खारिज कर दी धार्मिक भावना को ठेस पहुँचाना कोई कार्रवाई योग्य गलती नहीं थी और वादी इसे न देखने के लिए स्वतंत्र है फिल्म फिर से. इसलिए यह माना गया कि उपद्रव के लिए नुकसान का दावा करने के लिए, हस्तक्षेप करना होगा गलत जारी रहने की स्थिति.

हैल्सी वी. एस्सो पेट्रोलियम कंपनी लिमिटेड में, जहां प्रतिवादी की फैक्ट्री से धुआं, तेल, उत्सर्जित होता था धुएं और गंध ने वादी के स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचाने के साथ–साथ पर्यावरण को प्रदूषित किया अपने स्वयं के संवेदनशील स्वास्थ्य मुद्दे के कारण, पूर्व को केवल बाद वाले के प्रति उत्तरदायी ठहराया गया था। धुआं, तेल और धुएं का उत्सर्जन स्वास्थ्य के लिए खतरा नहीं है।

उपताप के प्रकार–अपकृत्य के रूप में उपताप को आगे दो प्रकारों में वर्गीकृत किया गया है– व्यक्तिगत उपताप और लोक या सार्वजनिक उपताप, दोनों के अपने–अपने कार्य क्षेत्र और क्षति के प्रकार हैं।

व्यक्तिगत उपताप– व्यक्तिगत उपताप उपयोग में आने वाली भूमि या परिसर के कब्जेदार के हितों की रक्षा करता है और उसकी भूमि का आनंद. इस प्रकार का उपद्रव आमतौर पर प्रतिवादी के निजी क्षेत्र से उत्पन्न होता है। भूमि या उसकी निजी क्षमता में उसके कार्य। तदनुसार, एक वादी को यह दिखाना होगा कि उसके पास है। विचाराधीन भूमि में कुछ रुचि। इस प्रकार, भूमि सार्वजनिक भूमि नहीं होनी चाहिए। का कानून।

व्यक्तिगत उपताप दो परस्पर विरोधी हितों के बीच संतुलन बनाना चाहता हैय एक का कब्जाधारी अपनी भूमि का उपयोग जैसा वह उचित समझे करता है और अपने पड़ोसी की भूमि का शान्त आनंद के साथ करता है। उसकी

जमीन का. इस प्रकार, किसी व्यक्ति को अपनी संपत्ति का उपयोग इस तरह से नहीं करना चाहिए जिससे इसका कारण बने उसके पड़ोसियों को असुविधा।

व्यक्तिगत उपताप की कार्रवाई में, अदालत निम्नलिखित पर विचार करती है–

(1) क्या जिस चोट की शिकायत की गई है वह भौतिक क्षति के मामले में उचित है संपत्ति और भूमि के उपभोग में हस्तक्षेप की स्थिति में चाहे क्षति हो पर्याप्त है।

(2) क्या प्रतिवादी का आचरण गैरकानूनी, अनुचित या अनुचित है।

ऐसे तत्व जो एक व्यक्तिगत उपद्रव का निर्माण करते हैं

(1) हस्तक्षेप अनुचित या गैरकानूनी होना चाहिए। तात्पर्य यह है कि कृत्य नहीं करना चाहिए कानून की नजर में उचित होना चाहिए और ऐसा कार्य होना चाहिए जो किसी भी उचित व्यक्ति द्वारा नहीं किया जाता है।

(2) इस तरह का हस्तक्षेप भूमि के उपयोग या उपभोग, या कुछ अधिकारों के साथ होना चाहिए संपत्ति, या यह संपत्ति या शारीरिक परेशानी के संबंध में होना चाहिए।

(3) संपत्ति या आनंद के साथ दृश्यमान क्षति होनी चाहिए। एक निजी उपताप का गठन करने के लिए संपत्ति।

रोज बनाम माइल्स (1815) 4एम और एस.101

प्रतिवादी ने गलत तरीके से एक सार्वजनिक नौगम्य खाड़ी को अवरुद्ध कर दिया था जिससे बाधा उत्पन्न हुई प्रतिवादी को खाड़ी के माध्यम से अपना माल परिवहन करने से रोका गया जिसके कारण उसे अपना माल परिवहन करना पड़ा। भूमि के माध्यम से अच्छा था जिसके कारण उसे परिवहन में अतिरिक्त लागत का सामना करना पड़ा। ये हुआ था। जैसा कि वादी ने सफलतापूर्वक साबित कर दिया है कि प्रतिवादी के कृत्य से सार्वजनिक उपद्रव हुआ था। कि उसे समाज के अन्य सदस्यों की तुलना में हानि हुई है और इस पर उसे कार्रवाई का अधिकार है प्रतिवादी के विरुद्ध।

उपताप संपत्ति या शारीरिक परेशानी के संबंध में हो सकता है

1– संपत्ति –संपत्ति के संबंध में उपद्रव के मामले में, संपत्ति को कोई भी समझदार क्षति नहीं होगी क्षति के लिए कार्रवाई का समर्थन करने के लिए पर्याप्त हो।

संपत्ति के नुकसान के मामले में कोई भी समझदार चोट कार्रवाई का समर्थन करने के लिए पर्याप्त होगी।

सेंट हेलेन स्मेल्टिंग कंपनी बनाम टिपिंग (1865), में प्रतिवादी के निर्माण कार्य से निकलने वाले धुएं ने वादी के पेड़ों और झाड़ियों को नुकसान पहुंचाया। न्यायालय ने माना कि इस तरह की क्षति संपत्ति की क्षति होने के कारण कार्रवाई का कारण बनती है।

2– शारीरिक परेशानी– शारीरिक परेशानी से उत्पन्न उपद्रव के मुकदमे में, दो आवश्यक शर्तें हैं आवश्यक।

(क) संपत्ति के आनंद के प्राकृतिक और सामान्य तरीके से अधिक। तीसरे पक्ष द्वारा उपयोग किसी एक के आनंद के स्वाभाविक क्रम से बाहर होना चाहिए दल।

(ख) मानव अस्तित्व के सामान्य आचरण में हस्तक्षेप करना। असुविधा इस स्तर की होनी चाहिए कि इसका असर इलाके के किसी व्यक्ति पर पड़े और लोग आनंद को सहने या सहन करने में सक्षम नहीं होंगे।

3– क्षति– उपताप के अपकृत्य का तीसरा आवश्यक तत्व क्षति है। यह किसी भी नुकसान या चोट के लिए मौद्रिक मुआवजा है। उपताप के कारण वादी. अर्थात् नुकसान कई प्रकार के होते हैं

(1) बढ़ी हुई क्षति

(2) नाममात्र की क्षति

(3) विशेष क्षति

सार्वजनिक उपताप– सार्वजनिक उपताप से तात्पर्य उस चीज से है जो आम जनता या जनता के एक वर्ग को प्रभावित करती है। यह है वह जो सार्वजनिक क्षेत्र या जनता के वर्ग को इस कारण प्रभावित करता है कि वह अंधाधुंध है अपने प्रभाव या व्यापकता में। कोई उपताप या तो अपने स्रोत से या सार्वजनिक उपताप बन सकता है इसका अंतिम प्रभाव या गंतव्य। फिर, एक उपद्रव जो समाज के एक वर्ग या एक वर्ग को प्रभावित करता है। सार्वजनिक उपताप और क्या प्रभावित व्यक्तियों की संख्या जनता की योग्यता के लिए पर्याप्त है उपताप प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर तथ्यों का प्रश्न है। हर चीज को उचित दृष्टिकोण से देखा जाना चाहिए। सार्वजनिक उपताप के उदाहरणों में राजमार्ग या सार्वजनिक सड़कों में बाधा डालना शामिल है जलमार्ग, ध्वनि प्रदूषण, बहुराष्ट्रीय तेल कंपनियों की गतिविधियों से तेल रिसाव और जीआरए में वेश्यालय संचालित करने जैसा घृणित व्यवसाय करना। सार्वजनिक उपताप आमतौर पर एक अपराध है (आपराधिक संहिता की धारा 234 और धारा 192 देखें)। और दंड संहिता की धारा 194) जिस पर केवल अटॉर्नी जनरल द्वारा ही मुकदमा चलाया जा सकता है। सार्वजनिक अधिकार के संरक्षक के रूप में क्षमता। दूसरे शब्दों में, किसी निजी व्यक्ति को इसका कोई अधिकार नहीं है। सार्वजनिक उपताप के अपराध पर मुकदमा चलानाय अटॉर्नी–जनरल मुकदमा चलाता है। हालाँकि, किसी निजी व्यक्ति पर सार्वजनिक उपताप के लिए मुकदमा करने के लिए, उसे यह दिखाना होगा कि उसे कष्ट हुआ है अन्य सदस्यों को हुई किसी विशेष या विशेष हानि/क्षति से अधिक जनता। **दाओडू बनाम एनएनपीसी के मामले में,** सुप्रीम कोर्ट ने, **क्यूगुग्बू जेएससी के अनुसार**, यह कहा कानून की स्थिति इस प्रकार है, ''सार्वजनिक राजमार्ग में बाधा डालना या मुक्त मार्ग में बाधा डालना।'' राजमार्ग के किनारे की जनता एक

सार्वजनिक उपताप है और एक निजी व्यक्ति को इसका अधिकार है यदि वह यह साबित कर सके कि सामान्य के अलावा विशेष क्षति हुई है तो कार्रवाई की जाएगी जनता को होने वाली असुविधा और चोट और वह विशेष क्षति जो उसे हुई निरंतर प्रत्यक्ष और पर्याप्त था। विशेष क्षति सिद्ध करने की आवश्यकता होगी संतुष्ट होगा यदि वादी यह दिखा सके कि उसे काफी अधिक क्षति हुई है आम जनता द्वारा झेली गई किसी भी पीड़ा से कहीं अधिक। यह ध्यान देने योग्य बात है कि, कई बार जनता का एक वर्ग या वर्ग जनता के लिए मुकदमा करेगा उपताप और आम तौर पर कार्रवाई विफल हो जाएगी क्योंकि अदालत हमेशा कहेगी कि यह एक वर्ग कार्रवाई है ऐसे मामलों में अनुचित. ऐसा इसलिए है क्योंकि वे सभी एक साथ निजी व्यक्ति हैं और वे हैं सार्वजनिक उपताप लागू नहीं कर सकते. अपने आप को साबित करने का प्रयास करके व्यक्तिगत रूप से मुकदमा करना बेहतर है अन्य सभी से अधिक कष्ट सहा है। एडेडिरन बनाम में भी इसी तरह का निर्णय लिया गया था। इंटरलैंड ट्रांसपोर्ट लिमिटेड (सुप्रा), जहां वादी अपीलकर्ताओं ने एक प्रतिनिधि के रूप में मुकदमा दायर किया स्वयं के लिए और आवास संपत्ति के निवासियों की ओर से क्षमताय सर्वोच्च न्यायालय यह मानते हुए कि यद्यपि शिकायत की गई सभी चोटें उसी उपताप से उत्पन्न हुई हैं जिसकी शिकायत की गई है प्रत्येक अलग चोट एक अलग यातना है।

<u>प्रश्न न0 2–</u> वाद योग्य असावधानी की मामला तब तक उत्पन्न नहीं होगा, जब तक सावधानी बरतने के कर्तव्य को भंग न किया जाय निर्णीत वादों के माध्यम से उक्त कथन को स्पष्ट कीजिए।

<u>उत्तर–</u> उपेक्षा – कानून द्वारा किसी व्यक्ति पर दूसरों के प्रति सावधानी से काम करने का कर्तव्य लगाया जाता है, यदि ऐसा है कर्तव्य मौजूद है और सावधानी से कार्य करने में विफलता है और दूसरे को नुकसान उठाना पड़ता है, तो अपकृत्य होता है उपेक्षा बरती गई है. यह पहले से ही ज्ञात है कि भारत का अपकृत्य कानून अंग्रेजी सामान्य कानून पर आधारित है। इस प्रकार उपेक्षा से संबंधित कानून को भारत की अदालतों द्वारा के सिद्धांतों पर अपनाया और संशोधित किया जाता है न्याय, समता और अच्छा विवेक। उपेक्षा शब्द लैटिन शब्द से लिया गया है उपेक्षा, जिसका अर्थ है 'उठाने में असफल होना'। सामान्य अर्थ में लापरवाही का तात्पर्य लापरवाही से है लापरवाह होने का कार्य और कानूनी अर्थ में, यह एक मानक का पालन करने में विफलता को दर्शाता है वह सावधानी जो कर्ता को एक उचित व्यक्ति के रूप में किसी विशेष स्थिति में बरतनी चाहिए थी। अंग्रेजी कानून में लापरवाही केवल 18वीं सदी में कार्रवाई के एक स्वतंत्र कारण के रूप में उभरी शतक। इसी तरह भारतीय कानून, आईपीसी, 1860 में मृत्यु का कारण बनने का कोई प्रावधान नहीं था लापरवाही से एक व्यक्ति की, जिसे बाद में वर्ष 1870 में सम्मिलित करके संशोधित किया गया धारा 304ए.

उपेक्षा की परिभाषा–

(1) टॉर्ट्स कानून में उपेक्षा को चूक के कारण कर्तव्य के उल्लंघन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है कुछ ऐसा करने के लिए जो एक उचित व्यक्ति हो, उन विचारों द्वारा निर्देशित हो जो आम तौर पर मानवीय मामलों के संचालन को विनियमित करना, कुछ करना या करना जो एक विवेकशील उचित व्यक्ति ऐसा नहीं करेगा, कार्रवाई योग्य लापरवाही उपेक्षा में निहित है किसी व्यक्ति के प्रति सामान्य देखभाल का उपयोग या सामान्य देखभाल और कौशल का अवलोकन करना जिस पर प्रतिवादी का सामान्य देखभाल और कौशल का पालन करने का कर्तव्य है।

(2) लापरवाही को तीन तरह से देखा गया है, सबसे पहले मन की लापरवाह स्थिति शामिल है, दूसरा, लापरवाही भरा आचरण, और तीसरा लापरवाही के कारण हुई चोट और क्षति आचरण के उल्लंघन या अपकृत्य के कारण पाया जा सकता है।

विनफील्ड और जोलोविज के अनुसार, उपेक्षा देखभाल के कानूनी कर्तव्य का प्रतीक है वादी जिसके परिणामस्वरूप वादी को अवांछित क्षति होती है।

ब्लिथ बनाम बर्मिंघम वॉटर वर्क्स कंपनी में, उपेक्षा को चूक के रूप में परिभाषित किया गया था कुछ ऐसा जो एक उचित व्यक्ति करेगा या कुछ ऐसा कर रहा है जो एक विवेकपूर्ण या समझदार आदमी ऐसा नहीं करेगा.

जे एम. फेनमैन के अनुसार, लापरवाही का मूल विचार यह है कि लोगों को व्यायाम करना चाहिए जब वे संभावित नुकसान को ध्यान में रखते हुए कार्य करते हैं तो उचित सावधानी बरतें अन्य लोगों को जबरन हानि पहुँचाना।

उपेक्षा की कार्यवाही में वादी की निम्न संघटन सिद्व करने पड़ते हैं–

1. वादी के प्रति सावधानी के बर्ताव का कर्तव्य (The Duty must be towards the plaintiff)– कर्तव्य तब उत्पन्न होता है जब कानून प्रतिवादी और वादी के बीच संबंध को मान्यता देता है और प्रतिवादी को वादी के प्रति एक निश्चित तरीके से कार्य करने की आवश्यकता होती है। यह पर्याप्त नहीं है कि प्रतिवादी का वादी के प्रति देखभाल का कर्तव्य है, बल्कि इसे भी स्थापित किया जाना चाहिए जो आमतौर पर न्यायाधीश द्वारा निर्धारित किया जाता है। **बॉरहिल बनाम यंग (1943) के मामले में** वादी, जो एक मछुआरा थी, एक ट्राम कार से उतरी और जब उसे अपनी टोकरी पीठ पर रखने में मदद की जा रही थी, ट्राम से गुजरने के बाद एक मोटर साइकिल चालक एक मोटर कार से टकरा गया। 15 गज की दूरी पर जो ट्राम के दूसरी ओर था। मोटरसाइकिल चालक की तत्काल मृत्यु हो गई और वादी दुर्घटना या शव को नहीं देख सका क्योंकि ट्राम उसके और उस स्थान के बीच खड़ी थी जहां दुर्घटना हुई थी। उसने केवल टक्कर की आवाज सुनी थी और एक बार शव को दुर्घटना स्थल से हटा दिया गया था, उसने उस जगह का दौरा किया और कुछ खून देखा जो सड़क पर बचा हुआ था। इस घटना की प्रतिक्रिया के रूप में, उसे घबराहट का झटका लगा और उसने 8 महीने के मृत बच्चे को जन्म दिया, जिसके

कारण उसने मृत मोटरसाइकिल चालक के प्रतिनिधियों पर मुकदमा दायर किया। यह माना गया कि मृतक का वादी के प्रति देखभाल का कोई कर्तव्य नहीं था और इसलिए वह मृतक के प्रतिनिधियों से किसी भी नुकसान का दावा नहीं कर सकती थी। **डोनॉग्यू बनाम स्टीवेन्सन (1932) के मामले** ने इस सिद्धांत को विकसित किया है कि हममें से प्रत्येक का अपने पड़ोसी या किसी ऐसे व्यक्ति की देखभाल करने का कर्तव्य है जिसकी हम उचित रूप से उम्मीद कर सकते हैं कि वह हमारे कृत्यों या चूक से प्रभावित होगा। यह माना गया कि निर्माता और नुकसान झेलने वाले व्यक्ति के बीच कोई अनुबंध नहीं होने के बावजूद लापरवाही की कार्रवाई सफल हो सकती है क्योंकि वादी अपने दावे में सफल रही कि वह दोषपूर्ण सामान यानी बोतल के बावजूद देखभाल के कर्तव्य की हकदार थी। घोंघे वाली जिंजर बीयर उसने खुद नहीं, बल्कि उसकी सहेली ने खरीदी थी।

2. देखभाल करने के कर्तव्य का उल्लंघन (Breach of Duty to take care)–

एक वादी के लिए यह साबित करना पर्याप्त नहीं है कि प्रतिवादी पर उसकी देखभाल का कर्तव्य है, लेकिन उसे ऐसा करना ही होगा। यह भी स्थापित करें कि प्रतिवादी ने वादी के प्रति अपने कर्तव्य का उल्लंघन किया। प्रतिवादी इसका उल्लंघन करता है कर्तव्य को पूरा करने में उचित सावधानी बरतने में असफल होना। दूसरे शब्दों में, उल्लंघन। देखभाल के कर्तव्य का अर्थ है कि जिस व्यक्ति पर देखभाल का मौजूदा कर्तव्य है उसे समझदारी से कार्य करना चाहिए **ब्लिथ बनाम के मामले में** सहायता के रूप में कोई भी ऐसा कार्य न छोड़ें या न करें जो उसे करना हो या न करना हो। **बर्मिंघम वॉटरवर्क्स कंपनी,** (1856)। सरल शब्दों में इसका मतलब है किसी मानक का पालन न करना देखभाल का । **रमेश कुमार नायक बनाम भारत संघ** (1994) के मामले में, पोस्ट अधिकारी विफल रहे। किसी डाकघर की चारदीवारी के ढह जाने पर उसे अच्छी स्थिति में बनाए रखें प्रतिवादी को चोटें लगीं. यह माना गया कि डाक अधिकारी उत्तरदायी थे क्योंकि उनके पास एक था डाकघर परिसर को बनाए रखने का कर्तव्य और ऐसा करने के उनके कर्तव्य के उल्लंघन के कारण पतन हुआ घटित हुआ। इसलिए वे मुआवजा देने के लिए उत्तरदायी थे। **नगर निगम के मामले में** दिल्ली बनाम सुभगवंती (AIR 1966) चांदनी चौक के भीड़भाड़ वाले इलाके के ठीक बीच में स्थित एक बहुत पुराना घंटाघर अचानक ढह गया जिससे कई लोगों की मौत हो गई। घंटाघर 80 वर्ष पुराना था। हालांकि घंटाघर का सामान्य जीवनकाल 40–45 वर्ष होना चाहिए था। घड़ी टॉवर दिल्ली नगर निगम के नियंत्रण में था और उनका कर्तव्य है। नागरिकों के प्रति परवाह. घंटाघर की मरम्मत की अनदेखी करके उन्होंने अपने कर्तव्य का उल्लंघन किया है वे जनता की देखभाल करते थे और इस प्रकार उत्तरदायी थे।

वादी को परिणामी क्षति (Consequential damage to the plaintiff)– यह साबित करना पर्याप्त नहीं है कि प्रतिवादी उचित देखभाल करने में विफल रहा। यह होना भी चाहिए साबित कर दिया कि प्रतिवादी द्वारा उचित देखभाल करने में विफलता के परिणामस्वरूप क्षति हुई वादी जिसकी देखभाल का प्रतिवादी का कर्तव्य है।

नुकसान निम्नलिखित वर्गों में हो सकता है–

(क) शारीरिक हानि
(ख) प्रतिष्ठा को नुकसान
(ग) संपत्ति को नुकसान
(घ) वित्तीय हानि
(ई) मानसिक क्षति

जब ऐसी क्षति साबित हो जाती है, तो प्रतिवादी वादी को क्षतिपूर्ति देने के लिए बाध्य होता है नुकसान हुआ। **जोसेफ बनाम डॉ. जॉर्ज मूनजेली (1994)** के मामले में। केरल हाई कोर्ट ने दिया फैसला रुपये की क्षति हुई। 24 का ऑपरेशन करने के लिए एक सर्जन के खिलाफ 1,60,000 रु एक साल की बच्ची को उचित चिकित्सा प्रक्रियाओं का पालन किए बिना और यहां तक कि लोकल दवा भी नहीं दी गई संज्ञाहरण ।

रेस इप्सा लोकिटुर– रेस इप्सा लोकिटुर एक लैटिन वाक्यांश है जिसका अर्थ है ''चीज अपने लिए बोलती है।'' इसे एक प्रकार का परिस्थितिजन्य साक्ष्य माना जाता है जो अदालत को यह निर्धारित करने की अनुमति देता है प्रतिवादी की लापरवाही के कारण एक असामान्य घटना घटी जिसके कारण बाद में उसे चोट लगी वादी. हालाँकि आम तौर पर यह साबित करना कर्तव्य है कि प्रतिवादी ने लापरवाही से काम किया वादी लेकिन रेस इप्सा लोकिटुर के माध्यम से, यदि वादी कुछ परिस्थितिजन्य तथ्य प्रस्तुत करता है, यह साबित करना प्रतिवादी का दायित्व बन जाता है कि उसने लापरवाही नहीं की। इस प्रकार इस कहावत को लागू करने के लिए प्रवाह तीन आवश्यक आवश्यकताएं हैं

(1) क्षति पहुंचाने वाली चीज प्रतिवादी या उसके नियंत्रण में होनी चाहिए नौकर।
(2) दुर्घटना ऐसी होनी चाहिए जो सामान्य प्रक्रिया में न हुई हो लापरवाही के बिना बातें.
(3) दुर्घटना के वास्तविक कारण का कोई सबूत नहीं होना चाहिए।

लापरवाही के मुकदमे में बचाव उपलब्ध है–

वादी द्वारा अंषदायी लापरवाही– अंशदायी लापरवाही का अर्थ है कि जब क्षति का तात्कालिक कारण होता है
स्वयं वादी की लापरवाही के कारण, वादी प्रतिवादी पर क्षतिपूर्ति के लिए मुकदमा नहीं कर सकता है
प्रतिवादी इसे बचाव के रूप में उपयोग कर सकता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि ऐसे मामले में वादी को माना जाता है।अपनी गलती का लेखक स्वयं बनें। यह कहावत वोलेंटी नॉन फिट इनियूरिया पर आधारित है जिसमें कहा गया

है। यदि कोई स्वेच्छा से खुद को ऐसे पद पर रखता है जिसके परिणामस्वरूप नुकसान हो सकता है, तो वे हैं इस तरह के नुकसान से होने वाले नुकसान के लिए दावा करने का हकदार नहीं है। अंशदायी लापरवाही साबित करने का भार प्रथम दृष्टया प्रतिवादी पर है ऐसे साक्ष्य के अभाव में, वादी इसकी गैर–अस्तित्व को साबित करने के लिए बाध्य नहीं है। **शेल्टन बनाम एल एंड डब्ल्यू रेलवे (1946) के मामले में**, जब वादी रेलवे पार कर रहा था लाइन, रेलवे कंपनी का एक नौकर जो क्रॉसिंग का प्रभारी था, ने चिल्लाकर चेतावनी दी उसे। वादी के बहरे होने के कारण, वह चेतावनी सुनने में असमर्थ था और परिणामस्वरूप घायल। अदालत ने माना कि यह उसके द्वारा अंशदायी लापरवाही है।

भगवान का एक कार्य– ईश्वर का कार्य प्रकृति का एक प्रत्यक्ष, हिंसक और अचानक किया गया कार्य है जो किसी भी मात्रा में मानव द्वारा किया जा सकता है। दूरदर्शिता का पूर्वाभास किया जा सकता था और यदि पूर्वाभास किसी भी मानवीय देखभाल द्वारा नहीं किया जा सकता था। और शील का विरोध किया गया है। इस प्रकार ऐसे कार्य जो प्रकृति की मूल शक्तियों के कारण होते हैं इस श्रेणी में आते हैं. उदाहरण के लिए तूफान, तूफान, असाधारण उच्च ज्वार, असाधारण वर्षा आदि यदि किसी व्यक्ति की चोट या मृत्यु का कारण प्राकृतिक आपदा घटित होना है तो प्रतिवादी इसके लिए उत्तरदायी नहीं होगा, बशर्ते कि वह इसे अदालत में साबित कर दे कानून। इस विशेष बचाव की बात **निकल्स बनाम मार्सलैंड (1876) के मामले** में की गई थी जिसमें प्रतिवादी के पास अपनी भूमि पर कृत्रिम झीलों की एक श्रृंखला है। किसी भी प्रकार की लापरवाही नहीं बरती गई कृत्रिम झीलों के निर्माण और रखरखाव में प्रतिवादी की। इस कारण अप्रत्याशित भारी बारिश के कारण कुछ जलाशय फट गए और देश के चार पुल बह गए अदालत ने माना कि पानी निकल जाने के कारण प्रतिवादी को उत्तरदायी नहीं कहा जा सकता भगवान के कार्य से।

अपरिहार्य दुर्घटना– एक अपरिहार्य दुर्घटना को लापरवाही का बचाव भी कहा जा सकता है और यह एक बचाव को संदर्भित करता है। लापरवाही और एक ऐसी दुर्घटना को संदर्भित करता है जिसे अभ्यास द्वारा रोकने की कोई संभावना नहीं थीसाधारण देखभाल, सावधानी, और सरलता से। इसका मतलब शारीरिक रूप से अपरिहार्य दुर्घटना है।**ब्राउन बनाम केंडल (1850) के मामले** में वादी और प्रतिवादी के कुत्ते लड़ रहे थे और उनके मालिकों ने उन्हें अलग करने का प्रयास किया। ऐसा करने के प्रयास में, प्रतिवादी ने कुत्तों को छड़ी से पीटा और गलती से वादी को घायल कर दिया, जिससे उसकी आंख गंभीर रूप से घायल हो गई। वादी लाया प्रतिवादी के विरुद्ध मारपीट और मारपीट का मुकदमा। यह माना गया कि वादी की चोट एक अपरिहार्य दुर्घटना का परिणाम था. यह साबित करने के लिए कि कोई कार्य लापरवाही भरा था, सभी आवश्यक बातों को साबित करना आवश्यक है कर्तव्य, कर्तव्य का उल्लंघन, क्षति और वास्तविक और निकटतम कारण। एक महत्वपूर्ण कहावत लापरवाही के संबंध में, यानी रेस इप्सा लोकिटुर का उपयोग अदालतों द्वारा तब किया जाता है जब कोई लापरवाही भरा कार्य नहीं कर सकता समझाया जाए. साथ ही, लापरवाही के मुकदमे में बचाव का उपयोग प्रतिवादी द्वारा किया जा सकता है वादी द्वारा जारी मुकदमे से अपना बचाव करें।

<u>प्रश्न न0 3–</u> मानहानि का अपकृत्य क्या हैं? इसके आवश्यक तत्व है तथा इसके क्या–क्या बचाव है? व्याख्या कीजिए।

<u>उत्तर–</u> अर्थ– मानहानि किसी व्यक्ति की प्रतिष्ठा पर चोट है। यदि कोई व्यक्ति घायल हो जाता है दूसरे की प्रतिष्ठा में हस्तक्षेप के मामले में वह ऐसा अपने जोखिम पर करता है संपत्ति। एक आदमी की प्रतिष्ठा उसकी संपत्ति है, और यदि संभव हो तो उससे भी अधिक मूल्यवान है अन्य संपत्ति. लखित या मौखिक कोई भी जानबूझकर गलत संचार, जो किसी व्यक्ति को नुकसान पहुंचाता है प्रतिष्ठाय किसी व्यक्ति का सम्मान, आदर या विश्वास कम हो जाता है। या किसी व्यक्ति के विरुद्ध अपमानजनक, शत्रुतापूर्ण, या अप्रिय राय या भावनाएँ उत्पन्न करता है।मानहानि कहा जाता है।

मानहानि की परिभाषा (Defination of Defamation)–

(1) सामाण्ड के अनुसार (According of Salmond)– किसी अन्य व्यक्ति के सम्बन्ध में बिना विधिक औचित्य के मिथ्या तथा मनहानिकारक वक्तव्य का प्रकाशन मानहानि का दोष है।

(2) अण्डरहिल के अनुसार (According of Andarhill)– मानहानि किसी अन्य व्यक्ति के सम्बन्ध में बिना न्यायसंगत हेतुक अथवा प्रतिहेतु के किसी ऐसे मिथ्या तथा मानहानिकारक वक्तव्य है जिससे कि उस व्यक्ति की ख्याति को क्षति होती है।

मानहानि के प्रकार **(Kinds of Defamation)–** मानहानि निम्नलिखित दो प्रकार के होते हैं।

(1) अपलेख (Libel)– लिबेल स्थायी मानहानिकारक बयानों को संदर्भित करता है, इसलिए जो कुछ भी लिखा जाता है (किताबें, समाचार पत्र, पत्र), कुछ भी जो प्रसारित किया जाता है (मानहानि अधिनियम 1952 की धारा 1 के अनुसार टेलीविजन या रेडियो, केबल की धारा 28 के अनुसार केबल टेलीविजन और प्रसारण अधिनियम 1984), और यहां तक कि थिएटर प्रस्तुतियां (थिएटर अधिनियम 1968 की धारा 4(1) के अनुसार।) श्स्थायित्वश आवश्यकता का मतलब श्हमेशा के लिएश नहीं है (क्योंकि काफी लंबी समय रेखा पर, कुछ भी नहीं है), बल्कि वह संचार जो मूल संदेश संचारित होने के समय से अधिक समय तक मौजूद रहता है। इस प्रकार, अदालतें यहां तक सुझाव दे रही हैं कि स्काई राइटिंग मानहानि हो सकती है क्योंकि लेखन को फैलने में समय लगता है, जैसा कि **गल्फ ऑयल**

(जीबी) लिमिटेड बनाम पेज 1987, अध्याय 327 में हुआ था, जो अपने पीछे एक मानहानिकारक बयान ले जाने वाले विमान से संबंधित था। शब्द आवश्यक नहीं हैं, यह केवल एक प्रकार का स्थायी संचार होना चाहिए। इस प्रकार मॉनसून बनाम तुसाद लिमिटेड ख्1934, 50 टीएलआर 581 में प्रतिवादी ने अपने श्चौंबर ऑफ हॉरर्सश प्रदर्शनी के पास दावेदार का मोम का पुतला रखा। उस पर हत्या का मुकदमा चलाया गया, लेकिन दोषी नहीं ठहराया गया। चूँकि यह एक स्थायी संचार था, इसलिए इसे मानहानि माना गया (अदालत द्वारा इसे इन्यूएन्डो के माध्यम से मानहानि के रूप में वर्णित किया गया)।

(2) अपवंचन (Slander)– अपवंचन एक अपमानजनक बयान है जो अस्थायी है। संक्षेप में, इसमें मानहानिकारक बयान शामिल हैं जो मानहानि के अंतर्गत शामिल नहीं हैं। मुख्य उदाहरण बोला गया शब्द है – सही व्यक्ति के कान में फुसफुसाया गया एक असत्य कथन किसी व्यक्ति के लिए विनाशकारी हो सकता है, और इसलिए कानून इसे पहचानता है। इशारे भी अपवंचन का कारण बन सकते हैं, क्योंकि वे अस्थायी संचार का एक रूप हैं – इस प्रकार, यहां तक कि जो लोग सांकेतिक भाषा के माध्यम से संवाद करते हैं वे भी कानून के दायरे में आते हैं! क्योंकि गैर–स्थायी बयानों का स्थायी बयानों की तुलना में कम प्रभाव होता है, एक दावेदार को यह दिखाना होगा कि उन्हें श्विशेष नुकसानश हुआ है, वास्तव में एक नुकसान जिसका अनुमान मौद्रिक संदर्भ में लगाया जा सकता है। हालाँकि, अदालतों ने इस परिभाषा को विवाह की संभावना के नुकसान (स्पाइट बनाम गोस्ने ख्1891, 60 एलजेक्यूबी 231 में) और कंसोर्टियम के नुकसान (प्रभावी रूप से, परिवार के किसी सदस्य के वित्तीय समर्थन को खोना, जैसा कि लिंच बनाम नाइट ख्1861) में शामिल किया है। , 9 एचएलसी 777). इस नियम पर छूटें हैं। सबसे पहले, अगर यह आरोप लगाया जाता है कि दावेदार ने ग्रे बनाम जोन्स 1939, 1 ऑल ईआर 798 के अनुसार कारावास से दंडनीय एक आपराधिक अपराध किया है (पहली बार में, बार–बार अपराध के विपरीत)। यह स्वभाव बहुत आसानी से समाज से बहिष्कार और अन्य नकारात्मक प्रभावों का कारण बन सकता है। दूसरे, यदि बयानों की गणना दावेदार को उसके पेशे, व्यवसाय या कार्यालय में अपमानित करने के लिए की जाती है। इस प्रकार, फॉल्गर बनाम न्यूकॉम्ब 1867, एलआर 2 एक्स में। 327 दावेदार एक गेमकीपर था जिसे लोमड़ियों को संरक्षित करने का काम सौंपा गया था।

मानहानि के आवश्यक तत्व (Essential Elements of Defamation)– मानहानि के अपकृत्य के निम्नलिखित आवश्यक तत्व होते हैं।

(1) कथन मानहानिकारक होना चाहिए (Statement must be Defamatory)–

मानहानिकारक कथन की परिभाषा सामान्य कानून में पाई जाती है। चूँकि अवधारणाओं और भावनाओं का संचार स्वाभाविक रूप से एक अचूक घटना है, इसलिए मानहानिकारक बयान की परिभाषा भी यही है। हालाँकि मानहानिकारक बयान के किनारे थोड़े अस्पष्ट हैं, सामान्य अवधारणा को कई मामलों के संदर्भ में पाया जा सकता है। नोट का पहला उदाहरण पार्मिटर बनाम कप्लैंड में उन्नत परिभाषा है। फोकस में मामलारू परमाइटर बनाम कप्लैंड 1840, 6 एम एंड डब्ल्यू 105 दावेदार विनचेस्टर का मेयर था। एक अखबार, हैम्पशायर एडवरटाइजर ने बयानों की एक श्रृंखला छापी, जिसमें आरोप लगाया गया कि मेयर भ्रष्ट था, और मेयर के रूप में अपने कर्तव्यों की अनदेखी कर रहा था। 108 में पार्कर बी द्वारा मानहानि का वर्णन इस प्रकार किया गया है, ''एक प्रकाशन, बिना किसी औचित्य या वैध बहाने के, जो दूसरे की प्रतिष्ठा को नुकसान पहुंचाने, उन्हें घृणा, अवमानना या उपहास करने के लिए तैयार किया जाता है''।

2–मानहानिकारक कथन में वादी के प्रति निर्दिष्ट हो (The statement must refer to the plaintiff)–

यदि वह व्यक्ति जिसके लिए बयान प्रकाशित किया गया था उचित रूप से अनुमान लगा सकता है कि कथन वादी को संदर्भित किया गया है, प्रतिवादी फिर भी उत्तरदायी है।न्यूस्टेड बनाम लंदन एक्सप्रेस न्यूजपेपर्स लिमिटेड में, प्रतिवादियों ने एक लेख प्रकाशित किया जिसमें कहा गया कि 'हेरोल्ड न्यूस्टेड, एक कैम्बरवेल व्यक्ति' द्विविवाह का दोषी ठहराया गया था. यह कहानी कैम्बरवेल नामक हेरोल्ड न्यूस्टेड की सच्ची थी बर्मन. मानहानि की कार्रवाई एक अन्य हेरोल्ड न्यूस्टेड द्वारा की गई थी नाई. चूँकि शब्दों को वादी के सन्दर्भ में समझा जाता था, इसलिए प्रतिवादी उत्तरदायी थे.दिल्ली HC ने हर्ष मेंदीरत्ता बनाम महाराज सिंह[vii, में कहा कि एक कार्रवाई मानहानि केवल उस व्यक्ति द्वारा की जा सकती है जिसे बदनाम किया गया है, न कि उसके द्वारा दोस्त या रिश्तेदार।

3– मानहानि कथन का प्रकाशन होना चाहिए (Defamation must be published)– प्रकाशन का अर्थ है मानहानिकारक बात को अपने अलावा किसी अन्य व्यक्ति को बताना व्यक्ति की मानहानि की गई है और जब तक ऐसा नहीं किया जाता, मानहानि के लिए कोई नागरिक कार्रवाई नहीं की जा सकती। महेंद्र राम बनाम हरनंदन प्रसादख्अपपप,के मामले में यह कहा गया था जब ए वादी को मानहानिकारक पत्र उर्दू में लिखा गया है और वह उर्दू नहीं जानता है, वह पूछता है इसे पढ़ने वाला तीसरा व्यक्ति, यह तब तक मानहानि नहीं है जब तक कि यह उस समय साबित न हो जाए पत्र लिखने वाले प्रतिवादी को पता था कि वादी को उर्दू नहीं आती है।

<u>प्रश्न न0 4–</u> वादी क्षतिपूर्ति तभी प्राप्त कर सकता है जबकि अति दूरस्थ नहीं है। इस कथन की व्याख्या संगत निर्णीत वादों की सहायता से कीजिए।

<u>उत्तर–</u> क्षति की दूरदर्शिता– क्षति की दूरदर्शिता का सिद्धांत ऐसे मामलों के लिए प्रासंगिक है। कोई भी घटना जो गलत है, एक परिणाम से बनी हो सकती है या कई परिणामों से मिलकर बनी हो सकती है, यानी कृत्यों गलतियों

की श्रृंखला। क्षति निकटस्थ हो सकती है या दूरस्थ हो सकती है, या बहुत दूर तक हो सकती है। मामलों के कुछ विस्तार से शायद यह और अधिक स्पष्ट हो जाएगा।

स्कॉट बनाम शेफर्ड ए ने भीड़ में एक रोशनदान फेंका, वह एक्स पर गिरा। स्वयं को चोट से बचाने के लिए, ए को बी के प्रति उत्तरदायी ठहराया गया था। उसका कार्य क्षति का निकटतम कारण था, भले ही उसका कार्य क्षति से सबसे दूर था, जहां तक कि कार्य एक्स और वाई ने बीच में हस्तक्षेप किया था।

हेन्स बनाम हारवुड प्रतिवादी के नौकरों ने लापरवाही से एक हाउस वैन को भीड़ भरी सड़क पर लावारिस छोड़ दिया। एक बच्चे द्वारा घोड़ों पर पत्थर फेंकने से वे उछल पड़े और सड़क पर महिला और बच्चों को बचाने के उद्देश्य से उन्हें रोकने के प्रयास में एक पुलिसकर्मी घायल हो गया। प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत बचावों में से एक परिणाम की दूरदर्शिता थी अर्थात बच्चे की शरारत निकटतम कारण थी और नौकरों की लापरवाही एक दूरस्थ कारण थी।

निश्चित रूप से, परिणामी हानियों की पुनर्प्राप्ति–क्षमता पर रेखा कहां खींचनी है, इस प्रश्न का उत्तर गणितीय रूप से सटीक सूत्र द्वारा नहीं दिया जा सकता है। न्यायाधीशों ने समय–समय पर अपने विवेक का प्रयोग किया है और उस प्रक्रिया में दो सूत्रों पर प्रकाश डाला गया है:–

(1) युक्तियुक्त पूर्वानुमान का मापदण्ड (Test of Reasonable Foresight)– इस परीक्षण के अनुसार, यदि किसी गलत कार्य के परिणामों का पूर्वाभास एक उचित व्यक्ति द्वारा किया जा सकता है, तो वे बहुत दूर नहीं हैं।

पोलक दूरदर्शिता के इस परीक्षण के समर्थक थे। उन्होंने **रिग्बी बनाम हेविट और ग्रीनलैंड बनाम चौपलिन के मामलों** में कहा कि ''प्रतिवादी का उत्तरदायित्व केवल उन परिणामों के लिए है जिनकी भविष्यवाणी गलत काम करने वाले की परिस्थितियों में रखे गए एक उचित व्यक्ति द्वारा की जा सकती थी।''

लेकिन यहां हमें ध्यान देना चाहिए कि यह कहना अपने आप में पर्याप्त बचाव नहीं होगा कि प्रतिवादी ने परिणामों की भविष्यवाणी नहीं की थी। इसके बजाय, यह न्यायालय पर निर्भर करेगा कि वह तर्कसंगतता के मानकों के आधार पर यह तय करे कि प्रतिवादी को परिणाम का पूर्वाभास होना चाहिए था या नहीं।

उचित दूरदर्शिता की इस परीक्षा ने प्रत्यक्षता की परीक्षा के आगे अपनी लोकप्रियता खो दी। लेकिन, जैसा कि हम बाद में देखेंगे, यह न्यायविदों के बीच फिर से लोकप्रियता हासिल करने में कामयाब रहा।

(2) प्रत्यक्षता का मापदण्ड (The Test of Directness)– प्रत्यक्षता की कसौटी के अनुसार, एक व्यक्ति अपने कार्य के सभी प्रत्यक्ष परिणामों के लिए उत्तरदायी होता है, चाहे वह उनका पूर्वाभास कर सका हो या नहींय क्योंकि गलत कार्य के सीधे परिणाम बहुत दूर नहीं होते। इसके अलावा, इस परीक्षण के अनुसार, यदि प्रतिवादी किसी भी क्षति का पूर्वाभास कर सकता है, तो वह अपने गलत कार्य के सभी प्रत्यक्ष परिणामों के लिए उत्तरदायी होगा। दूरदर्शिता के इस विशेष परीक्षण को बेहतर ढंग से समझने के लिए, रे पोलेमिस केस को देखना पर्याप्त होगा।

रे पोलेमिस एंड फर्नेस, विल्थी एंड कंपनी। यह मामला, जिसे आम तौर पर रे पोलेमिस केस के नाम से जाना जाता है, प्रत्यक्षता की कसौटी पर ऐतिहासिक मामला था। अपील की अदालतों ने उचित दूरदर्शिता के परीक्षण को प्रासंगिक परीक्षण माना जबकि बाद में प्रिवी काउंसिल ने प्रत्यक्षता के परीक्षण को बरकरार रखा।

मामले के प्रासंगिक तथ्य यह हैं कि प्रतिवादियों ने माल ले जाने के लिए एक जहाज किराए पर लिया था। कार्गो में टिन में पेट्रोल औरध्या बेंजीन की मात्रा शामिल थी। डिब्बों में रिसाव हो गया था और कुछ तेल जहाज के एक होल्ड में एकत्र हो गया था। अब, प्रतिवादी के नौकरों की लापरवाही के कारण, एक तख्ता गिर गया और परिणामस्वरूप चिंगारी उत्पन्न हुई। उन चिंगारियों के परिणामस्वरूप, जहाज आग से पूरी तरह नष्ट हो गया।

इस मामले में, प्रिवी काउंसिल ने जहाज के मालिकों को नुकसान की भरपाई करने का हकदार माना, हालांकि इस तरह के नुकसान की प्रतिवादियों ने पहले से कल्पना नहीं की थी। यह माना गया कि चूंकि आग (और उसके बाद जहाज का विनाश) प्रतिवादी की लापरवाही का प्रत्यक्ष परिणाम था, इसलिए यह महत्वहीन था कि प्रतिवादी ने इसका यथोचित पूर्वानुमान लगाया होगा या नहीं। **स्क्रूटन, एल.जे. के अनुसार–** ''एक बार जब कोई कार्य लापरवाहीपूर्ण हो जाता है, तो यह तथ्य कि इसके सटीक संचालन की भविष्यवाणी नहीं की गई थी, महत्वहीन है।''

वैगन माउंड केसरू उचित दूरदर्शिता के परीक्षण की पुनः पुष्टि रे पोलेमिस मामले में प्रत्यक्षता के जिस परीक्षण को बरकरार रखा गया था, उसे गलत माना गया और प्रिवी काउंसिल ने 40 साल बाद ओवरसीज टैंकशिप (यूके) लिमिटेड बनाम मोर्ट्स डॉक एंड इंजीनियरिंग के मामले में इसे खारिज कर दिया। कंपनी लिमिटेड, जिसे वैगन माउंड केस के नाम से भी जाना जाता है।

इस मामले के तथ्य इस प्रकार हैं– वैगन माउंड एक जहाज था जिसे अपीलकर्ताओं **(ओवरसीज टैंकशिप लिमिटेड)** द्वारा किराए पर लिया गया था। यह प्रतिवादी के घाट से लगभग 180 मीटर की दूरी पर सिडनी बंदरगाह पर ईंधन ले रहा था। घाट पर कुछ वेल्डिंग कार्य चल रहा था। अपीलकर्ता के नौकरों की लापरवाही के कारण, समुद्र में बड़ी मात्रा में तेल फैल गया जो प्रतिवादी के घाट तक भी पहुंच गया। वहां चल रहे वेल्डिंग कार्यों के कारण, पिघला हुआ धातु (प्रतिवादी के घाट से) गिर गया, जिससे ईंधन तेल में आग लग गई और आग लग गई। आग से प्रतिवादी के घाट और उपकरणों को बहुत नुकसान हुआ। इस मामले में, ट्रायल कोर्ट और सुप्रीम कोर्ट ने रे पोलेमिस के फैसले के आधार पर अपीलकर्ताओं को उत्तरदाताओं को हुए नुकसान के लिए उत्तरदायी ठहराया। लेकिन जब मामला प्रिवी काउंसिल में पहुंचा तो यह माना गया कि रे पोलेमिस को आगे से अच्छा कानून नहीं माना

जा सकता और इस तरह सुप्रीम कोर्ट का फैसला पलट दिया गया। यह माना गया कि अपीलकर्ता प्रतिवादी को होने वाली क्षति का उचित अनुमान नहीं लगा सके और इसलिए वे क्षति के लिए उत्तरदायी नहीं थे।

मामले में लॉर्ड विस्काउंड सिमंड्स ने कहा– ''यह न्याय या नैतिकता के वर्तमान विचारों के अनुरूप नहीं लगता है कि, लापरवाही के कार्य के लिए, अभिनेता को सभी परिणामों के लिए उत्तरदायी होना चाहिए, चाहे वे कितने भी अप्रत्याशित क्यों न हों।'' उन्होंने यह भी कहा कि ''नागरिक दायित्व के सिद्धांतों के अनुसार, एक व्यक्ति को केवल उसके कार्य के संभावित परिणामों के लिए जिम्मेदार माना जाना चाहिए''। और इसलिए इस मामले में, उचित दूरदर्शिता के परीक्षण ने क्षति की दूरदर्शिता और उसके बाद अपकृत्य के मामलों में किसी व्यक्ति के कारण हुए नुकसान के लिए उसके दायित्व को निर्धारित करने का अपना अधिकार पुनः प्राप्त कर लिया। वैगन माउंड रूलिंग का बाद के मामलों में पालन किया गया

ह्यूजेस बनाम लॉर्ड एडवोकेट इस मामले में, डाकघर द्वारा नियोजित कर्मचारियों ने सड़क पर एक मैनहोल को लावारिस छोड़ दिया। साइट छोड़ने से पहले, उन्होंने मैनहोल के प्रवेश द्वार को तिरपाल से ढक दिया और उसके चारों ओर कई पैराफिन लैंप रख दिए। 8 वर्षीय वादी, लैंप से आकर्षित होकर, एक अन्य बच्चे के साथ मैनहोल के आसपास खेल रही थी। उनमें से एक लैंप टूट गया, जिससे मैनहोल में विस्फोट हो गया। विस्फोट के परिणामस्वरूप वादी को क्षति हुई। इस मामले में, न्यायालय ने माना कि भले ही डाकघर के कर्मचारियों द्वारा विस्फोट का अनुमान नहीं लगाया गया था, क्षति (जलन) का प्रकार था। इसलिए, प्रतिवादियों को उत्तरदायी ठहराया गया। **डौटी बनाम टर्नर मैन्युफैक्चरिंग कंपनी लिमिटेड इस मामले में,** वादी को प्रतिवादी द्वारा नियोजित किया गया था। प्रतिवादी द्वारा नियोजित अन्य श्रमिकों की लापरवाही के कारण, एक एस्बेस्टस ढक्कन पिघले हुए गर्म तरल के कड़ाही में फिसल गया। परिणामस्वरूप हुए विस्फोट से वादी घायल हो गया, जो पास में खड़ा था। यह माना गया कि विस्फोट के परिणामस्वरूप हुई क्षति ऐसी नहीं थी जिसका प्रतिवादी द्वारा उचित अनुमान लगाया जा सकता था, और इसलिए प्रतिवादी की लापरवाही अनुमानित नहीं थी।

<u>प्रश्न न0 5–</u> उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 के उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।

<u>उत्तर–</u> उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 उपभोक्ता शिकायतों के निवारण के लिए सरल और त्वरित पहुंच प्रदान करने के लिए अधिनियमित किया गया था। अधिनियम ने पहली बार 'उपभोक्ता' की अवधारणा पेश की और उसे अतिरिक्त अधिकार प्रदान किए। यह ध्यान रखना दिलचस्प है कि अधिनियम शब्द के शाब्दिक अर्थ के भीतर प्रत्येक उपभोक्ता की रक्षा करने का प्रयास नहीं करता है। सुरक्षा उस व्यक्ति के लिए है जो अधिनियम द्वारा दी गई 'उपभोक्ता' की परिभाषा में फिट बैठता है।

कुमार, विनीत (12 सितंबर 2016)। ''भारत में उपभोक्ता संरक्षण कानूनों का विश्लेषण'' A iPleaders. 10 दिसंबर 2016 को लिया गया।

अधिनियम के उद्देश्य एवं महत्व–

उपभोक्ताओं के अधिकारों को बेहतर सुरक्षा प्रदान करने के लिए उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम लागू किया गया। इस अधिनियम के लागू होने से पहले, उपभोक्ताओं की सुरक्षा के लिए कोई विशेष अधिनियम नहीं था और उपभोक्ताओं के लिए उपलब्ध एकमात्र उपाय टॉर्ट्स कानून के तहत था यानी दुकानदार या सेवा प्रदाता के खिलाफ क्षति के लिए नागरिक मुकदमा दायर करना। यह अधिनियम कैविएट एम्प्टर के सिद्धांत पर आधारित है जिसका अर्थ है कि सामान में दोषों की पहचान करना खरीदार की जिम्मेदारी है।

ऐसे कई उद्देश्य हैं जिन्हें उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम के तहत संरक्षित करने की मांग की गई है जैसे–

(1) उपभोक्ताओं के सभी छह अधिकारों को बढ़ावा देना और उनकी रक्षा करना, जिस पर बाद में चर्चा की जाएगी।

(2) उपभोक्ता विवादों के निवारण के लिए अर्ध–न्यायिक मशीनरी प्रदान करके मामलों का सरल और त्वरित निपटान प्रदान करना।

(3) इस अधिनियम का उद्देश्य उपभोक्ता के मुद्दों का सस्ता समाधान प्रदान करना भी है।

(4) देश के सभी राज्यों में प्रत्येक उपभोक्ता के विवादों को निपटाने के लिए राज्य आयोग नामक एक उपभोक्ता विवाद निवारण मंच की स्थापना की गई है।

उपभोक्ता कौन है?

अधिनियम की धारा–2(1)(डी) के अनुसार, उपभोक्ता वह व्यक्ति है जो कोई सामान या सेवाएँ खरीदता है या किसी व्यक्ति की सेवाओं को अपने निजी उपयोग के लिए किराए पर लेता है या लेता है, न कि उस सामान के निर्माण या पुनर्विक्रय के लिए। उदाहरण के लिए, अपने निजी उपयोग के लिए गेहूं का आटा खरीदने वाला व्यक्ति उपभोक्ता है, लेकिन रोटी पकाने के लिए गेहूं का आटा खरीदने वाला व्यक्ति, जिसे वह अपनी बेकरी में बेचने जा रहा है, उपभोक्ता नहीं है।

विभिन्न उपभोक्ता संगठन–

उपभोक्ताओं की जागरूकता बढ़ाने के लिए, कई उपभोक्ता संगठन और गैर सरकारी संगठन स्थापित किए गए हैं। कंज्यूमर गाइडेंस सोसाइटी ऑफ इंडिया (सीजीएसआई) 1966 में भारत में स्थापित पहला उपभोक्ता संगठन थाय इसका अनुसरण कई अन्य लोगों ने किया जैसे– उपभोक्ता शिक्षा एवं अनुसंधान केंद्र (गुजरात), भारतीय मानक ब्यूरो

तमिलनाडु में, उपभोक्ता संगठन संघ मुंबई, ग्राहक पंचायत उपभोक्ता आवाज (नई दिल्ली), कानूनी सहायता सोसायटी (कोलकाता), अखिल भारतीय ग्राहक पंचायत उपभोक्ताओं की नजर भारत पर है। यूनाइटेड इंडिया कंज्यूमर एसोसिएशन। उपभोक्ता विवाद निवारण एजेंसियां मुख्य लेख– उपभोक्ता न्यायालय जिला उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग (DCDRC): इसे 'जला आयोग' के रूप में भी जाना जाता है, इसकी स्थापना राज्य सरकार द्वारा राज्य के प्रत्येक जिले में की जाती है। राज्य सरकारें एक जिले में एक से अधिक जिला फोरम स्थापित कर सकती हैं। यह एक जिला–स्तरीय अदालत है जो ₹10 मिलियन (US$130,000) तक के मामलों की सुनवाई करती ळें राज्य उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग (एससीडीआरसी): राज्य में राज्य सरकार द्वारा स्थापित 'राज्य आयोग' के रूप में भी जाना जाता है। यह एक राज्य–स्तरीय अदालत है जो ₹100 मिलियन (US$130,000 मिलियन) से कम मूल्य के मामलों की सुनवाई करती है। राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग (एनसीडीआरसी)रू केंद्र सरकार द्वारा स्थापित। यह ₹100 मिलियन से अधिक के मामलों से संबंधित है।

''उपभोक्ता संरक्षण और राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग''। एनसीडीआरसी. 21 जुलाई 2011 को मूल से संग्रहीत। 18 दिसंबर 2012 को लिया गया।

केंद्रीय परिषद के उद्देश्य– केंद्रीय परिषद का उद्देश्य उपभोक्ताओं के अधिकारों को बढ़ावा देना और उनकी रक्षा करना है जैसेः– जीवन और संपत्ति के लिए खतरनाक वस्तुओं और सेवाओं के विपणन के खिलाफ सुरक्षा का अधिकार। उपभोक्ता को अनुचित व्यापार प्रथाओं से बचाने के लिए, जैसा भी मामला हो, वस्तुओं या सेवाओं की गुणवत्ता, मात्रा, क्षमता, शुद्धता, मानक और कीमत के बारे में सूचित होने का अधिकारय

जहां भी संभव हो, प्रतिस्पर्धी कीमतों पर विभिन्न प्रकार की वस्तुओं और सेवाओं तक पहुंच सुनिश्चित करने का अधिकार; सुने जाने और आश्वस्त होने का अधिकार कि उपभोक्ता के हितों पर उचित मंचों पर उचित विचार किया जाएगा; अनुचित व्यापार प्रथाओं या प्रतिबंधात्मक व्यापार प्रथाओं या उपभोक्ताओं के बेईमान शोषण के खिलाफ निवारण मांगने का अधिकार उपभोक्ता शिक्षा का अधिकार काउंसिल न्यायालयों का क्षेत्राधिकार/त्रिस्तरीय प्रणाली जिला फोरम का क्षेत्राधिकार इस अधिनियम के अन्य प्रावधानों के अधीन, जिला फोरम के पास उन शिकायतों पर विचार करने का अधिकार क्षेत्र होगा जहां वस्तुओं या सेवाओं का मूल्य और दावा किया गया मुआवजा, यदि कोई हो, एक करोड़ रुपये से अधिक नहीं है। जिला उपभोक्ता फोरम अब जिला आयोग हैय ₹1 करोड़ तक के मूल्य के मामलों की सुनवाई करेगा। हिंदुस्तान टाइम्स। 16 सितंबर 2020। 1 जुलाई 2022 को लिया गया।

एक शिकायत जिला फोरम में स्थापित की जाएगी जिसके अधिकार क्षेत्र की स्थानीय सीमा के भीतरः –

(1) विपरीत पक्ष या प्रत्येक विपरीत पक्ष, जहां एक से अधिक हैं, शिकायत दर्ज होने के समय, वास्तव में और स्वेच्छा से निवास करता है या व्यवसाय करता है या उसका एक शाखा कार्यालय है या व्यक्तिगत रूप से लाभ के लिए काम करता है, या

(2) कोई भी विरोधी पक्ष, जहां शिकायत दर्ज होने के समय एक से अधिक हों, वास्तव में और स्वेच्छा से निवास करता है, या व्यवसाय करता है या उसका एक शाखा कार्यालय है, या व्यक्तिगत रूप से लाभ के लिए काम करता है, बशर्ते कि ऐसे मामले में या तो जिला फोरम की अनुमति दी जाती है, या विरोधी पक्ष जो निवास नहीं करते हैं, या व्यवसाय नहीं करते हैं या शाखा कार्यालय रखते हैं, या व्यक्तिगत रूप से लाभ के लिए काम करते हैं, जैसा भी मामला हो, ऐसी संस्था में शामिल हो जाते हैंय या

(3) कार्य का कारण, पूर्णतः या आंशिक रूप से, उत्पन्न होता है।

उपभोक्ता अदालतों के पास उन मामलों पर अधिकार क्षेत्र नहीं है जहां सेवाएं या सामान व्यावसायिक उद्देश्य के लिए खरीदे गए थे।

राज्य आयोग का क्षेत्राधिकार– इस अधिनियम के अन्य प्रावधानों के अधीन, राज्य आयोग का अधिकार क्षेत्र होगाः–

(1) मनोरंजन के लिए

(2) ऐसी शिकायतें जहां वस्तुओं या सेवाओं का मूल्य और मुआवजा, यदि कोई हो, दावा किया गया एक करोड़ रुपये से अधिक है लेकिन दस करोड़ रुपये से अधिक नहीं हैय और

(3) राज्य के भीतर किसी भी जिला फोरम के आदेशों के खिलाफ अपीलय और

(4) किसी भी उपभोक्ता विवाद में रिकॉर्ड मंगाना और उचित आदेश पारित करना

राष्ट्रीय आयोग का क्षेत्राधिकार–

(1) मनोरंजन के लिए–

(2) ऐसी शिकायतें जहां वस्तुओं या सेवाओं का मूल्य और मुआवजा, यदि कोई हो, का दावा दस करोड़ रुपये से अधिक है; और

(3) किसी राज्य के मेयर के आदेश के विरुद्ध अपील; और

(4) किसी भी उपभोक्ता विवाद में रिकॉर्ड मंगाना और उचित आदेश पारित करना जो किसी राज्य आयोग के समक्ष लंबित है या जिस पर निर्णय लिया गया है। हालाँकि, भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के तहत राष्ट्रीय आयोग का अधिकार क्षेत्र बहुत सीमित है और इसका प्रयोग केवल तभी किया जा

सकता है जब राज्य आयोग अपने अधिकार क्षेत्र से आगे बढ़ता है, अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने में विफल रहता है या राज्य आयोग द्वारा पारित आदेश में भौतिक अवैधता होती है।

प्रश्न न0 6–संपरिवर्तन से आप क्या समझते है? इसके आवश्यक तत्वों एवं रीतियों का वर्णन कीजिए।

उत्तर– संपरिवर्तन का तात्पर्य है किसी की वस्तुओं को अनुचित रूप से परिवर्तित कर लेना जैसे धन को भूमि या भूमि को धन के रूप में जिससे कि कोई व्यक्ति उनमें स्वामित्व में वंचित हो जाय।

सामण्ड के अनुसार ''सपरिवर्तन जानबूझकर किया जाता है जिसके फलस्वरूप वह व्यक्ति उस वस्तु के कब्जे का उपयोग करने से वंचित हो जाये''।

पोलक के अनुसार '' वास्तविक स्वामी की शक्तियो तथा अधिकारों का अप्राधिकृत रूप से ग्रहण कर लेने को संपरिवर्तन कहते है और व्यक्ति ऐसा करता है। वह संपरिवर्तन के अपकृत्य को दोषी होता है।

प्रो0 विनफील्ड के अनुसार संपरिवर्तन को किसी व्यक्ति के मान के सम्बन्ध में ऐसे कृत्य के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो माल पर उस व्यक्ति के हक या स्वत्व को अनुचित से नकारता है।

सपरिवर्तन के आवश्यक तत्व **(Essential elements of Conversion)**–संपरिवर्तन के मामलों में वादी द्वारा निम्नलिखित तत्वों का प्रमाण किया जाना आवश्यक होता है–

(1) माल पर आधिपत्य– संपरिवर्तन के लिए पहला आवश्यक तत्व यह है कि वादी को माल पर तुरन्त आधिपत्य पाने का अधिकार होना चाहिए। संपरिवर्तन की कार्यवाही करने के लिए माल पर स्वामित्व होना आवश्यक नहीं है। माल कब्जा होना या माल पर कब्जा प्राप्त करने का तात्कालिक अधिकार पर्याप्त होता है। उदाहरण के लिए उपनिहिती का माल पर केवल कब्जा होता है स्वामित्व नहीं फिर भी वह तीसरे पक्षकार के विरूद्ध संपरिवर्तन की कार्यवाही कर सकता है। इसी प्रकार एक खरीददार, जिससे वस्तु का मूल्य का भुगतान दिया है। विक्रेता अथवा किसी अपरिचित व्यक्ति के विरूद्ध संपरिवर्तन के सम्बन्ध में वाद संस्थित कर सकता है। **आरमारी बनाम डेलमीरी(1721)** के वाद में चिमनी साफ करने वाले मेहतर के लड़के को सफाई करते समय एक कीमती आभूषण मिला। वह उस आभूषण की जाँच करवाने के लिए एक सुनार के पास ले गया। सुनार के बच्चे को नादान समझकर कहा कि आभूषण बेकार है और आभूषण के एवज में बच्चे को बहुत ही कम मूल्य का भुगतान करना चाहा। बच्चे ने वह मूल्य लेने से इन्कार कर दिया और अपना आभूषण मांगा। सोनार ने आभूषण को वापस करने से इन्कार कर दिया। तत्पश्चात् बच्चे द्वारा सुनार के विरूद्ध संपरिवर्तन का वाद संस्थित किये जाने पर न्यायालय ने अधिनिर्धारित किया कि वह संपरिवर्तन का दोषी है। न्यायालय ने आगे मत व्यक्त किया कि किसी सम्पत्ति को पाने वाला व्यक्ति मात्र वास्तविक स्वामी को छोड़कर समस्त संसार के विरूद्ध उस सम्पत्ति पर सर्वोत्तम अधिकार रखता है।

(2) वादी को माल के आधिपत्य से वंचित करना– किसी को किसी भी समय के लिए उसके सामान के उपयोग से वंचित करना रूपांतरण माना जाता है। धर्मांतरण एक प्रकार का आर्थिक अत्याचार है जिसमें जानबूझकर किसी अन्य व्यक्ति की संपत्ति में हस्तक्षेप करना शामिल है। **फाउन्ड्स बनाम विलोबी(1841)** दो घोड़ों का मालिक बीरकेनहेड से लिवरपूल के लिए एक नौका पर सवार होकर आया था। नाविक ने घोड़ों को ले जाने से इनकार कर दिया। मालिक ने उन्हें किनारे पर वापस ले जाने से इनकार कर दिया, और इसलिए नाव वाले ने मालिक से लगाम लेकर उतरते समय घोड़ों को ढीला कर दिया। मालिक नाव पर ही बैठा रहा और उसने घोड़ों को वापस लाने की कोशिश नहीं की। उन्होंने फेरीवाले पर धर्म परिवर्तन का मुकदमा कर दिया। मुकदमे में न्यायाधीश ने जूरी को बताया कि प्रतिवादी नाविक, वादी से घोड़ों को लेकर और उन्हें जहाज से बाहर निकालकर, धर्मांतरण का दोषी था। नाविक ने अपील की।

संपरिवर्तन की रीतियाँ **(Modes of Conversion)**– संपरिवर्तन का अपकृत्य निम्नलिखित रीतियों में से किसी प्रकार से किया जा सकता है।

(1) ग्रहण द्वारा संपरिवर्तन (Conversion by Taking)– यदि कोई व्यक्ति उचित अधिकार के बिना किसी अन्य व्यक्ति के सामान पर प्रभुत्व जमाने के एकमात्र इरादे से कब्जा कर लेता है, तो वह धर्मांतरण का दोषी है। इसका कारण यह है कि अधिनियम प्रभुत्व के सामान्य अधिकार के संबंध में असंगत होगा जो संपत्ति के मालिक के पास है, जो हर समय और सभी स्थानों पर इसका उपयोग करने का हकदार है। ऐसा कार्य जो सामान लेकर लेकिन स्थायी या अस्थायी प्रभुत्व कायम करने के इरादे के बिना किया जाता है, उसे अतिचार कहा जा सकता है, लेकिन रूपांतरण नहीं। यदि कोई गलत तरीके से लिया गया है, भले ही ऐसा कार्य कानूनी रूप से हकदार होने की गलत लेकिन ईमानदार धारणा के तहत किया गया हो, या सच्चे मालिक को लाभ पहुंचाने के इरादे से किया गया हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। **मिल्सन बनाम ब्रूकर (1919)** प्रतिवादी ने अपने पड़ोसी के बगीचे के ऊपर लगे पेड़ की शाखाओं से कुछ सेब तोड़े और उन्हें बेच दिया। यह माना गया कि पड़ोसी को लटकती शाखाओं को काटने का अधिकार था, लेकिन कटी हुई शाखाओं या उन पर उगने वाले सेबों पर उसका कोई स्वामित्व नहीं था। काउंटी अदालत के न्यायाधीश ने पेड़ के मालिक को फैसला सुनाया। प्रतिवादी शाखाओं को हटाने का हकदार था लेकिन हटाई गई शाखाओं (या फल) का उपयोग अपने उपयोग के लिए नहीं कर सकता था। प्रतिवादी ने अपील की लेकिन इसे खारिज कर दिया गया। अपील के दौरान यह भी कहा गया कि फल पेड़ के मालिक की संपत्ति बने रहेंगे, चाहे वे लटकती हुई शाखाओं द्वारा लाए गए हों या हवा से उड़ाए गए हों।

(2) निषेध द्वारा संपरिवर्तन (Conversion by detention)– यह तब किया गया माना जाता है जब यह मालिक या अन्य ऐसे व्यक्तियों के प्रतिकूल हो जो कब्जे के हकदार हैं। इससे पता चलता है कि हस्तक्षेप करने वाले व्यक्ति ने वादी की अवज्ञा में बात को रखने का इरादा दिखाया होगा। इसका मतलब यह है कि स्वामित्व के बिना केवल संपत्ति पर कब्जा करना कोई रूपांतरण नहीं है और इसलिए इसमें कोई अपकृत्य नहीं है। यहां यह ध्यान रखना आवश्यक है कि यदि कोई जमानतदार उस अवधि की समाप्ति के बाद ही संपत्ति को अपने पास रखता है जिसके लिए उसे जमानत दी गई थी, जो कि जमानत की शर्तों के पूरी तरह से प्रतिकूल तरीके से कार्य करने से अलग है, तो वह इसके लिए उत्तरदायी हो सकता है। अनुबंध का उल्लंघन लेकिन यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि जरूरी नहीं कि वह रूपांतरण का दोषी हो। इसलिए हम उपरोक्त कथन से यह अनुमान लगा सकते हैं कि यदि किसी व्यक्ति को खोई हुई संपत्ति मिल जाती है, तो उस पर रूपांतरण का मुकदमा नहीं चलाया जा सकता है, भले ही वह इसे लंबे समय तक अपने पास रखता हो, जब तक कि इसे छोड़ने से इनकार नहीं किया जाता है या किसी अन्य तरीके से वह कोई इरादा नहीं दिखाता है। मालिक को इसका प्रतिकूल विवरण देना। यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि कब्जे से इनकार हमेशा एक अनुबंध नहीं रह जाता क्योंकि इसके साथ किसी प्रकार का बहाना (जैसे ट्रेड यूनियन कठिनाइयाँ आदि) जुड़ा होता है।

(3) नष्ट द्वारा संपरिवर्तन (Conversion by Destruction)– किसी दूसरे की संपत्ति को नष्ट करना रूपांतरण का एक कार्य है, क्योंकि इसका प्रभाव उसके मालिक को पूरी तरह से वंचित करना होता है। यदि वस्तु को नष्ट कर दिया गया है, उदाहरण के लिए उसे जलाकर, तो यह एक तरह से वादी को उसकी संपत्ति से वंचित करना होगा, भले ही प्रतिवादी ने अपने उपयोग के लिए सामान नहीं लिया हो या लेने पर विचार नहीं किया हो। यदि कोई कार्य मालिक के अधिकार के बिना किया जाता है, यानी, शराब को पानी से बदलना पूरी शराब का रूपांतरण है और इसी तरह कपास को सूत में बदलना या मकई को आटे में पीसना है। **रिचर्डसन बनाम ऐटकिनसन्(1723)** प्रतिवादी ने वादी के पीपे से कुछ शराब निकाली और कमी को पूरा करने के लिए अनुस्मारक के साथ पानी मिलाया। उसे पूरे पीपे के रूपांतरण के लिए उत्तरदायी ठहराया गया था क्योंकि उसने कुछ सामग्री को हटाकर और शेष हिस्से को उनकी पहचान नष्ट करके परिवर्तित कर दिया था।

(4) विक्रय द्वारा संपरिवर्तन (Conversion by Sale)– एक व्यक्ति, जो भले ही निर्दोष रूप से कुछ वस्तुओं का कब्जा प्राप्त कर लेता है और उनका निपटान करता है, चाहे वह अपने फायदे के लिए हो या किसी और के लिए, वह रूपांतरण का दोषी होगा यदि ये सामान किसी अन्य व्यक्ति का था जिसने धोखे से उनसे वंचित कर दिया है। . नीलामीकर्ता वास्तविक मालिक के प्रति उत्तरदायी होता है जब उसे बिक्री के उद्देश्य से उसके द्वारा बेचने के लिए भेजी गई वस्तुओं पर कब्जा मिल जाता है और परिणामस्वरूप वह उन्हें बेच देता है। लॉर्ड डेनिंग ने इस अवधारणा को इस प्रकार समझाया, जब माल की बिक्री नीलामीकर्ता की भागीदारी के माध्यम से की जाती है, तो वह मालिक के प्रति रूपांतरण के लिए उत्तरदायी होता है यदि सामान अनंतिम बोली के परिणामस्वरूप या हथौड़ा के तहत बेचा जाता है, जहां विक्रेता होता है उन विशेष वस्तुओं का कोई शीर्षक नहीं था। यद्यपि एक प्रयास किया गया स्वभाव, उदाहरण के लिए, कब्जे के हस्तांतरण के बिना एक मात्र सौदेबाजी और बिक्री, यानी, डिलीवरी को रूपांतरण के रूप में नहीं माना जाएगा। इस प्रकार, जब नीलामीकर्ता वादी के स्वामित्व की सूचना के बिना अच्छे विश्वास में सामान वापस उस व्यक्ति को लौटाता है जहां से उसने उन्हें बिना बेचे प्राप्त किया था, तो वह रूपांतरण के लिए उत्तरदायी नहीं है।

(5) परिदान द्वारा संपरिवर्तन (Conversion by Delivery)– इस मामले में कानूनी औचित्य का प्रश्न सामने है और इस सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक ऐसा व्यक्ति धर्मांतरण का दोषी है जो बिना कानूनी औचित्य के किसी व्यक्ति को उसके सामान से वंचित कर उसे किसी और को सौंप देता है, ताकि कब्जा बदल सके। इस संबंध में हॉलिन्स बनाम फाउलर का मामला महत्वपूर्ण है।

संपरिवर्तन के प्रतिवाद– संपरिवर्तन के मामलों के प्रतिवादी अपने बचाव में निम्नलिखित प्रतिवाद प्रस्तुत कर सकता है–

(1) ग्रहणाधिकार (Lien)– यह सामान्य और विशेष (विशेष) दोनों मामलों से संबंधित है। इस मामले में यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण हो जाता है कि मांग और इनकार रूपांतरण का सबूत नहीं है जहां पार्टी के पास संपत्ति पर ग्रहणाधिकार है। इसका मतलब यह है कि केवल जमानतदार से संपत्ति की मांग करना और जमानतदार की ओर से इनकार करने पर यह कार्य रूपांतरण का कार्य नहीं माना जाएगा।

(2) माल को मार्ग में रोकने का अधिकार (Right to stop the Goods in Transit)–प्रतिवादी यह बचाव तब करता है जब माल की बिक्री का मुद्दा शामिल होता है यानी जब कोई सामान किसी व्यक्ति द्वारा इस तरह से बेचा जाता है कि उस सामान के मूल मालिक को नुकसान होता है जिससे वह उस संपत्ति का आनंद लेने के अपने अधिकार का प्रयोग करने में असमर्थ हो जाता है। यहां प्रतिवादी यह तर्क दे सकते हैं कि माल पारगमन में अंतिम कार्य के लिए प्रतिबद्ध है, अर्थात जिसके लिए किसी व्यक्ति को रखा जा रहा है, वह उस संपत्ति का अंतिम धारक नहीं है, बल्कि एक बड़ी श्रृंखला का एक माध्यम या एकल इकाई मात्र है या कि वह प्रतिबद्ध होने का अंतिम लाभार्थी नहीं है।

(3) वादी के अधिकार की अस्वीकृति (Denial of Plaintiff is Rights)–इस विशेष बचाव में, प्रतिवादी का तर्क है कि विचाराधीन संपत्ति उसकी है और वादी का उस पर कोई अधिकार नहीं है। इसका मतलब यह है कि इस मामले में प्रतिवादियों द्वारा संपत्ति पर कब्जा करने से इनकार कर दिया गया है। इस संबंध में जस टर्टी की संस्था महत्वपूर्ण हो जाती है। यह तब लागू होता है जब वादी के पास संपत्ति का कब्जा नहीं था, बल्कि उसके पास केवल कब्जा करने का अधिकार था और इसका उपयोग प्रतिवादी द्वारा खुद को बचाने के लिए किया जाता है। ऐसे मामले में जहां रूपांतरण के समय वादी के पास माल था, प्रतिवादी न्याय तृतीयक के लिए दावा दायर नहीं कर सकता है।

(4) अभिहरण (Distress)–यह एक और बचाव है जहां माल को संकट के तहत या निष्पादन के तहत लिया जाता है। इसका मतलब यह है कि यदि सामान छीन लिया गया या दूसरे की संपत्ति के आनंद में हस्तक्षेप किया गया, तो यह जानबूझकर नहीं किया गया था, बल्कि सामान्य अर्थों में वास्तव में अधिक महत्वपूर्ण किसी चीज के कारण ऐसा किया गया था। यह भी कहा जा सकता है कि कानून प्रतिवादी की ओर से रूपांतरण के नकारात्मक कार्य की तुलना में अन्य कार्य को अधिक महत्व दे सकता है। इसलिए, कानून की नजर में यह एक मजबूत बचाव है।

प्रश्न न0 7–मोटरयान अधिनियम, 1988 के अन्तर्गत दावा अधिकरण के गठन, क्षेत्राधिकार एवं प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।

उत्तर– **मोटरयान अधिनियम के अन्तर्गत दावा अधिकरण का गठन–** मोटर वाहन अधिनियम के विभिन्न प्रावधानों के तहत दावा किए गए मुआवजे के आवेदन पर विचार करने के लिए मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण, पाला की स्थापना 1994 में एमवी अधिनियम, 1988 के तहत की गई थी। ट्रिब्यूनल की अध्यक्षता जिला न्यायाधीश स्तर के एक न्यायिक अधिकारी द्वारा की जाती है। न्यायालय ने अतिरिक्त के रूप में भी नामित किया है। कुछ मामलों में प्रतिपूरक लागत का पुरस्कार. – (1) इस अधिनियम के तहत मुआवजे के किसी भी दावे पर निर्णय देने वाला कोई भी दावा न्यायाधिकरण, किसी भी मामले में जहां वह लिखित रूप में दर्ज किए जाने वाले कारणों से संतुष्ट है। मोटर वाहन अधिनियम 1988 (एमवी अधिनियम) मोटर वाहन दुर्घटनाओं से संबंधित विवादों को हल करने के लिए दावा न्यायाधिकरण की स्थापना करता है। इन न्यायाधिकरणों को अध्याय ग्प्, धारा 165 में परिभाषित किया गया है, जो राज्य सरकार को निम्नलिखित से उत्पन्न होने वाले मुआवजे के दावों पर निर्णय लेने के लिए दावा न्यायाधिकरण बनाने की शक्ति देता हैः मोटर वाहन दुर्घटनाएं, मृत्यु, व्यक्तियों को शारीरिक चोट, और तीसरे पक्ष की संपत्ति को नुकसान।

दावा अधिकरण की स्थापना (Setting up of the Tribunal)– भारत में प्रत्येक राज्य की सरकार को विशेष अदालतें बनाने का अधिकार है, जिन्हें मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण कहा जाता है। ये न्यायाधिकरण मोटर वाहन दुर्घटनाओं में घायल या मारे गए लोगों के लिए मुआवजे और इन वाहनों के कारण संपत्ति को हुए नुकसान के लिए मुआवजे पर निर्णय लेने के लिए जिम्मेदार हैं। जिन विशिष्ट क्षेत्रों में ये न्यायाधिकरण संचालित होते हैं, उनकी घोषणा एक सार्वजनिक सरकारी दस्तावेज में की जाएगी। स्पष्टीकरण– स्पष्ट होने के लिए, जब हम मोटर वाहनों के कारण होने वाली दुर्घटनाओं के लिए मुआवजे की बात करते हैं जिसके परिणामस्वरूप चोट या मृत्यु होती है, तो इसमें वह मुआवजा भी शामिल होता है जो इस कानून की धारा 164 में उल्लिखित है। कंपनी अधिनियम की धारा 140(5) – अधिनियम की धारा 140(5) ट्रिब्यूनल (एनसीएलटी) को या तो स्वप्रेरणा से या केंद्र सरकार या किसी संबंधित व्यक्ति द्वारा आवेदन पर कार्रवाई का अधिकार दिया गया है। वह इंजीनियर जिसने कपटपूर्ण तरीके से काम किया है या किसी कंपनी के प्रबंधन के साथ धोखाधड़ी में सहयोग या दोस्ती कर रहा है। यदि किसी जांच में ट्रिब्यूनल को यह पता चलता है कि किसी कंपनी के इंजीनियर ने, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से, कपटपूर्ण तरीके से काम किया है या कंपनी या उसके निदेशकों के संबंध में किसी भी तरह का धोखा दिया है। अधिकारियों, यह आदेश कंपनी द्वारा अपने ऑडिट परीक्षकों को नियुक्त करने का निर्देश दिया जा सकता है।

दावा अधिकरण का गठन सदस्यों की अर्हता– धारा 165(2) के अनुसार दावा अधिकरण उतने सदस्यों से मिलकर बनेगा। जितने राज्य सरकार करना ठीक समझे। जहाँ वह दो या अधिक सदस्यों से मिलकर बनता है। वहाँ उसमें से उसका अध्यक्ष नियुक्त किया जायेगा वही व्यक्ति दावा अधिकरण सदस्य के रूप में नियुक्ति के लिए अर्ह होगा जो– (क) उच्च न्यायालय का न्यायधीश हो या रहा हो या (ख) जिला न्यायाधीश हो या न रहा हो या।

(ग) उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्ति के लिए अर्ह हो।

धारा 165(4) के अनुसार जहाँ किसी क्षेत्र के लिए या दो अधिक दावा अधिकरण गठित किए गए है। वहाँ राज्य सरकार साधारण या विशेष आदेश द्वारा उनमें काम–काज के निवारण का विनिमय कर सकेगी। सत्य है कि जैसे दावा अधिकरण स्थापित किया जाता है। सिविल न्यायालय की अधिकारिता समाप्त हो जाती है। मोटर यान अधिनियम 1939 की धारा 110 के अन्तर्गत विनिर्दिष्ट शीर्षकों के अन्तर्गत प्रतिकर प्राप्त करने का दावा उन मामलों में किया जा सकता था जहाँ मोटर अधिनियम 1988 की धारा 165, 1939 में अधिनियम की धारा 110 के तत्समान है। **अनिरूद्ध प्रसाद अम्बास्ता बनाम बिहार राज्य** 'अनिरुद्ध प्रसाद अंबस्ता और अन्य। बनाम बिहार राज्य और अन्य' एक मामला है जिसका फैसला 5 अक्टूबर 1989 को उच्च न्यायालय पटना (रांची बेंच) द्वारा किया गया था। केस नंबर सिविल रिट जूर्न है। केस नंबर 1152 ऑफ 1989(आर). मामले में यह आरोप शामिल है कि अपीलकर्ताओं ने अनुबंध की शर्तों के विपरीत राशि का दुरुपयोग किया या बेईमानी से इस्तेमाल किया। अदालत ने माना कि विवाद

दीवानी प्रकृति का है और यह कोई आपराधिक अपराध नहीं है। इस मामले को 'अनिरुद्ध प्रसाद अंबस्ता और अन्य बनाम के नाम से भी जाना जाता है। बिहार राज्य और अन्य'।

दावा अधिकरणों की प्रक्रिया और शक्तियाँ– दावा अधिकरणों की प्रक्रिया एवं शक्तियों का उल्लेख मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 169 में है। यह निम्नलिखित है–

(1) जाँच करने के लिए संक्षिप्त प्रक्रिया– मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 169 में कहा गया है कि दावा न्यायाधिकरण धारा 168 के तहत पूछताछ करने के लिए किसी भी सारांश प्रक्रिया का पालन कर सकते हैं जो उन्हें सबसे अच्छा लगता है, इस संबंध में बनाए गए किसी भी नियम के अधीन। इस धारा में यह भी कहा गया है कि दावा न्यायाधिकरण मुआवजे के किसी भी दावे पर निर्णय लेने के उद्देश्य से जांच करने में सहायता के लिए एक या अधिक लोगों को चुन सकता है जिनके पास प्रासंगिक मामले का विशेष ज्ञान है।

(2) साक्ष्य देने, शपश लेने या गवाहों की उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिये आदि में न्यायालय की शक्ति– मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 169 (2) दावा न्यायाधिकरण को शपथ पर साक्ष्य लेने, गवाहों की उपस्थिति को लागू करने और दस्तावेजों और भौतिक वस्तुओं की खोज और उत्पादन के लिए बाध्य करने की शक्ति देती है। दावा न्यायाधिकरण के पास जांच में सहायता के लिए एक या अधिक लोगों को चुनने की भी शक्ति है जिनके पास जांच से संबंधित मामले का विशेष ज्ञान है।

(3) विशेष जान रखने वाले व्यक्तियों की सहायता लेना– ऐसे किन्हीं नियमों के अधीन रहते हुए जो इस निमित्त बनाये जाये, दावा अधिकरण किसी दावे का अधिनिर्णय करने के प्रयोजन के लिए जाँच करने के उसे सहायता देने के लिए जाँच से सुसंगत किसी विषय का विशेष सान रखते वाले एक या अधिक व्यक्तियों को चुन सकेगा।

प्रश्न न0 8–आरम्भ से ही अतिचार से आप क्या समझते हो? भूमि अतिचार के प्रतिवाद तथा उपचार का वर्णन कीजिए।

उत्तर– आरम्भ से ही अतिचार– अतिचार एब इनिटियो एक प्रकार का अतिचार है जो तब होता है जब कोई कानूनी अधिकार के साथ भूमि में प्रवेश करता हैए लेकिन फिर उस अधिकार का दुरुपयोग करता है। शब्द 'ट्रेसपास एब इनिटियो लैटिन में 'आरंभ से अतिचार के लिए है। उदाहरण के लिए, कोई व्यक्ति किसी अपराधी को गिरफ्तार करने या चोरी के सामान की खोज करने के लिए भूमि में प्रवेश कर सकता है, लेकिन फिर ऐसा कार्य कर सकता है जो उनके अधिकार का दुरुपयोग करता है। फिर प्राधिकरण को पूर्वव्यापी रूप से रद्द कर दिया जाता है, और प्रवेश को शुरू से ही अतिचार माना जाता है।

यहां कुछ शर्तें दी गई हैं जो आरंभ में अतिचार का गठन करती हैं–

(1) जिस अधिकार का दुरुपयोग किया गया है वह कानून द्वारा प्रदत्त अधिकार होना चाहिए न कि किसी व्यक्ति द्वारा। (2) कदाचार का कोई सकारात्मक कार्य होना चाहिए, न कि केवल कर्तव्य की चूक या उपेक्षा।

कानून उस व्यक्ति को शुरू से ही अतिक्रमणकारी मानता है और मानता है कि वे उस गलत उद्देश्य को ध्यान में रखकर वहां गए थे।

सिक्स कारपेंटर्स केस 1 जनवरी 1616 को इंग्लैंड और वेल्स में किंग्स बेंच की अदालत में सुना गया एक अतिक्रमण मामला था। इस मामले में छह बढ़ई शामिल थे जो एक सराय में प्रवेश करते थे, उन्हें शराब और ब्रेड परोसी जाती थी और इसके लिए भुगतान किया जाता था। फिर उन्होंने अधिक शराब और ब्रेड का अनुरोध किया, लेकिन इसके लिए भुगतान करने से इनकार कर दिया। जॉन वॉक्स ने छह बढ़ईयों के खिलाफ अतिचार की कार्रवाई की। मामला तब सुलझ गया जब यह तय हो गया कि कोई अतिक्रमण नहीं हुआ है।

मामले में निम्नलिखित बिंदुओं का समाधान हुआः–

(1) जब किसी को कानून द्वारा प्रवेश, अधिकार, या लाइसेंस दिया जाता है और वे इसका दुरुपयोग करते हैं, तो वे शुरू से ही अतिक्रमणकारी होते हैं। (2) मामला केवल गैर–भुगतान का था, यह गैर–भुगतान का मामला था और दुराचार का मामला नहीं था। **एलियास बनाम पासमोर 1934 ,2 के.बी. 164,** जहां पुलिस अधिकारी एक व्यक्ति को गिरफ्तार करना चाहते थे और ऐसा करने के लिए उन्होंने कानूनी रूप से दावेदार की भूमि में प्रवेश किया था। जमीन पर रहते हुए उन्होंने कई चीजें जब्त कीं, कुछ वैध तरीके से और कुछ गैरकानूनी तरीके से। यह माना गया कि उन्होंने केवल गैरकानूनी ढंग से हटाए गए दस्तावेजों के संबंध में अतिचार किया थाय उनके गलत कृत्य ने प्रवेश के मुख्य उद्देश्य को परेशान नहीं किया, जो कि कानूनी गिरफ्तारी करना था। **चिक फैशन (वेस्ट वेल्स) लिमिटेड जोन्स ख1968, 2 क्यूबी 299,** जहां अपील की अदालत ने सिद्धांत के अस्तित्व की आलोचना करते हुए कहा कि यह इस सिद्धांत के विपरीत है कि यदि कोई कार्य वैध था, तो बाद की घटनाएं नहीं हो सकतीं इसे गैरकानूनी बनाओ. इस मामले में पुलिस चोरी के सामान के लिए दावेदार के परिसर की तलाशी ले रही थी, और उस सामान को जब्त कर लिया जिसे उन्होंने गलती से चोरी का समझ लिया था। जब्ती को वैध माना गया, क्योंकि वारंट के साथ परिसर में प्रवेश करने वाली पुलिस के पास ऐसी किसी भी चीज को हटाने का अधिकार है जिसके बारे में उन्हें लगता है कि वह चोरी हो गई है।

अतिचार के प्रतिवाद(Defences of Trespass)– भूमि के प्रति अतिचार के मामलों में प्रतिवादी अपने पक्ष में निम्नलिखित प्रतिवादों के आधार पर दायित्वों से उन्मुक्ति प्राप्त कर सकता है–

(1) चिरभोगाधिकार(Prescription)– चिरभोगाधिकार उस संपत्ति के प्रतिकूल उपयोग के माध्यम से, किसी अन्य की संपत्ति पर सुखभोग का अधिग्रहण है। उदाहरण के लिए, एक पड़ोसी जिसने पिछले 10 वर्षों से अपने पिछवाड़े में जाने के लिए आपकी भूमि का उपयोग किया है, उसे आपकी संपत्ति पर सुखभोग प्राप्त हो सकता है।

(2) अनुमति एवं अनुज्ञाप्ति (Leave and Licence)– अनुमति और अनुज्ञाप्ति यह अतिचार की कार्रवाई के लिए एक अच्छा बचाव है। एक लाइसेंस केवल एक बनाता है वैध कार्य करें, जो इसके बिना, गैरकानूनी होगा। एक लाइसेंस हो सकता है या तो व्यक्त करें, जैसे कि घर में अतिथि के मामले में, या नियोजित, के रूप में ग्राहक के दुकान में प्रवेश करने की स्थिति में हैं।

(3) पुनः प्रवेश (Re-entry)–यदि किसी व्यक्ति को अवैध ढंग से अपनी भूमि के कब्जे से हटा दिया गया है तो उस भूमि पर कब्जा करने के लिए, शान्तिपूर्वक पुनः प्रवेश कर सकता है। ऐसे प्रवेश के लिए उसके विरूद्ध अतिचार की कार्यवाही नहीं की जा सकती है। यदि उसने बलपूर्वक पुनः प्रवेश किया है तो भी वह अतिचार के लिए उत्तरदायी नहीं होगा, यद्यपि वह आपराधिक विधि के अन्तर्गत शान्तिभंग के लिए दोषी हो सकता है।

(4) चल सम्पत्ति की पुनः प्राप्ति (Recaption of Goods)– यदि कोई व्यक्ति अपनी दी हुई भूमि पर दूसरे का माल छीन लेता है। उनमें से मालिक को एक नियोजित लाइसेंस के प्रयोजन के लिए प्रवेश करना होगा। पुर्नकथन. इसी तरह यदि माल किसी दूसरे की जमीन पर है। किसी घोर अपराध का अनुसरण करना (इसमें शामिल होना, होना या इसकी प्रकृति होना)। अपराध) किसी तीसरे व्यक्ति का कृत्य, प्रवेश उचित होगा।

(5) उपताप का उपशमन (Abatement of Nuisance)– भूमि पर कब्जा करने वाला पूर्व सूचना के साथ दूसरे पर कब्जा कर सकता है। उस पर उपताप को दूर करने के उद्देश्य से निकटवर्ती भूमि।

(6) आवश्यकता (Necessity)– आवश्यकता बचाव जानबूझकर अपकृत्य दायित्व का बचाव है। इसमें यह तर्क शामिल है कि अधिक नुकसान से बचने के लिए अतिचार आवश्यक था। बचाव की आवश्यकता पर विचार करते समय, अदालतें प्रतिवादी के कार्यों के समाज के लिए मूल्य पर विचार करती हैं, न कि उनकी मानसिक स्थिति पर।

एक जीवन बचाना– एक बच्चे को बचाने के लिए एक पड़ोसी ने संपत्ति पर अतिक्रमण कर लिया। संपत्ति को होने वाले नुकसान की तुलना में अतिक्रमण का सामाजिक महत्व अधिक है। **सुरक्षित रहो**– बर्फीले तूफान के दौरान सुरक्षित रहने के लिए एक यात्री खलिहान में घुस गया। पदयात्री का तर्क है कि खलिहान में घुसना उनकी जान बचाने के लिए आवश्यक था, और खलिहान को हुआ नुकसान उनके द्वारा झेले गए नुकसान से कम था।

अपराध से बचना– एक व्यक्ति संभावित डकैती या अन्य आपराधिक अपराध से भागते समय अतिचार करता है।

(7) विधिक प्रक्रिया का निस्पाद (Execution of Legal Process)– विधिक प्रक्रिया के निष्पादन हेतु वादी की भूमि पर प्रवेश किया जाना अनाधिकार प्रवेश की कोटि में नहीं आता है। उदाहरण के लिए वारण्ट के अन्तर्गत किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करने, उसकी संपत्ति कुर्क करने या उसके मकान की तालाशी लेने के लिए मकान में प्रवेश करना विधि सम्मत होता है। किन्तु इस प्रतिवाद का तभी लाभ उठाया जा सकता हैं जबकि वारण्ट वैध हो तथा वारण्ट के निष्पादन में विधि द्वारा वर्णित प्रक्रिया को अपनाया गया हो।

अतिचार के लिए उपचार (Remedies for Trespass)– वादी अपनी भूमि पर किये गये अतिचार के लिये अग्रलिखित उपचार प्राप्त करने का अधिकारी होता है।

(1) पुनः प्रवेश (Re-entry)– कब्जे का हकदार व्यक्ति परिसर में प्रवेश या पुनः प्रवेश कर सकता है। उसे आम कानून के अधीन शांतिपूर्ण तरीके से ऐसा करना चाहिए। किसी अतिक्रमी को बाहर निकालने का अधिकार।

हेम्मिगंस बनाम पोग्स क्लब (1920) 1के.बी. 720 एक गोल्फ क्लब के कर्मचारी हेमिंग्स को उसकी नौकरी के हिस्से के रूप में गोल्फ क्लब की भूमि पर एक झोपड़ी दी गई थी। फिर उन्हें कोठी सहित नौकरी छोड़ने के लिए कहा गया। जब उन्होंने वहां से जाने से इनकार कर दिया तो गोल्फ क्लब के अधिकारियों ने जबरदस्ती परिसर में प्रवेश किया और उन्हें और उनके परिवार को उनकी संपत्ति सहित बाहर निकाल दिया। अदालत ने इसे एक अतिक्रमी को हटाने या पुनः प्रवेश के अधिकार को लागू करने का कार्य माना।

(2) निष्कासन के लिए कार्यवाही (Action of ejecment)– यह उस व्यक्ति के लिए एक त्वरित उपाय है जिसे कानून का पालन किए बिना ष्अचल संपत्तिष् से निकाला गया है। विशिष्ट राहत अधिनियम 1963 की धारा 6 इस उपाय को निर्दिष्ट करती है। यहां तक कि जिस व्यक्ति के पास उच्च उपाधि है, उसे भी कानून की उचित प्रक्रिया का पालन किए बिना किसी अन्य व्यक्ति को निपटाने का कोई अधिकार नहीं है। यदि वह कानून अपने हाथ में लेता है तो निपटाए गए व्यक्ति को उसकी संपत्ति वापस कर दी जाएगी। वादी को यह साबित करना होगा कि संपत्ति पर उसका 'वैध कब्जा' था और कानूनी प्रक्रिया का पालन किए बिना उसे हटा दिया गया है। पुनर्ग्रहण के लिए मुकदमा निपटारे के 6 महीने के भीतर लाया जाना चाहिए। कोई अतिचारी इस उपाय तक नहीं पहुँच सकता है।

उदाहरण– जब ए दो दिनों के लिए बाहर रहता है तो ए, बी की संपत्ति में रहता है। वापस लौटने पर बी ने ए को संपत्ति से बेदखल कर दिया। इस मामले में बी को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है और ए उपचार की मांग नहीं कर सकता क्योंकि वह महज एक अतिचारी था, जिसका भूमि पर कब्जा नहीं था।

(3) मध्यवर्ती लाभ (Mesne Profits)– उनका शब्द 'मेस्ने प्रॉफिट' उस मुआवजे या क्षति को संदर्भित करता है जिसे उस व्यक्ति से वसूल किया जा सकता है जिसने भूमि पर 'गैरकानूनी कब्जा' कर रखा है। जब किसी व्यक्ति से किसी अचल संपत्ति को गलत तरीके से खाली करा लिया गया हो, तो संपत्ति वापस पाने के साथ–साथ वह संपत्ति

के निपटान के दौरान हुए नुकसान के लिए मुआवजे का भी दावा कर सकता है। कोई एक ही मुकदमे में बेदखली और मेस्ने प्रॉफिट के लिए मुकदमा कर सकता है। सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 2(12) में मेस्ने लाभ का प्रावधान बताया गया है।

(4) क्षतिकारक वस्तु का अभिहरण (Distress Damage Feasant)– कृषक संकट क्षति का यह उपाय भूमि पर कब्जा करने वाले व्यक्ति को ष्अतिक्रमण करने वाले मवेशियों या अन्य संपत्तिष को जब्त करने का अधिकार देता है। वह उन्हें तब तक अपने पास रख सकता है जब तक कि मवेशियों के मालिक द्वारा क्षति के लिए मुआवजे का भुगतान नहीं कर दिया जाता। यह ष्संपत्तिष के मालिक को अपने मवेशियों के बदले मुआवजा देने के लिए मजबूर करता है। जब्त की गई वस्तु मवेशी, गेंद, बल्ला, जानवर आदि कुछ भी हो सकती है, हालांकि, यह अधिकार केवल तभी लागू किया जा सकता है जब वस्तु भूमि पर ष्गैरकानूनी रूप से मौजूद हो, अतिक्रमण किया गया हो या क्षति पहुंचाई गई होष। इसके अलावा, किसी संपत्ति के मालिक को सख्त सलाह दी जाती है कि एक बार जब वह वस्तु उसकी जमीन छोड़ दे या वास्तविक मालिक उस वस्तु को ले जाए तो उसका पीछा न करें।

प्रश्न न0 9–चल सम्पत्ति के प्रति किये गये अपकृत्य का वर्णन कीजिए तथा माल के प्रति अतिचार के आवश्यक तत्व की व्याख्या कीजिए।

उत्तर– सामान्यतया चल के सम्पति के प्रति निम्नलिखित प्रकार के अपकृत्य किये जा सकते हैं–

(1) माल के प्रति अतिचार (Trespass to Goods)– सामान में अतिचार का कार्य तब होता है जब व्यक्ति की वस्तु को वास्तविक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष क्षति होती है या उसकी सहमति के बिना सही मालिक से कोई वस्तु गलत तरीके से छीन ली जाती है। दूसरे शब्दों में, माल के अतिचार के कार्य का अर्थ है माल के कब्जे में गैरकानूनी और जानबूझकर गड़बड़ी करना, इसे सही मालिक से गलत तरीके से छीनना। उदाहरण, यदि B का कोई मित्र है, तो B मोटरसाइकिल शोरूम का मालिक है। एक दिन A, B के घर से बाहर आने का इंतजार कर रहा है। ए ने बी की सहमति के बिना बी की मोटरसाइकिल में से एक का टायर हटा दिया। इस प्रकार A, B के माल पर अतिचार का कार्य करता है। **कर्क बनाम ग्रेगरी (1876)** इस मामले में, एक व्यक्ति की मृत्यु पर, उसकी भाभी ने उसके शव से कुछ आभूषण निकाले और उसे इस उचित विश्वास के साथ दूसरे कमरे में रख दिया कि आभूषण होंगे दूसरे कमरे में अधिक सुरक्षित रहें क्योंकि लोग मृतक को श्रद्धांजलि देने आएंगे।

माल के प्रति अतिचार के आवश्यक तत्व (Essential Elements of Trespass to Goods)– माल के प्रति अतिचार नामक अपकृत्य वे गठन हेतु निम्नलिखित तत्व आवश्यक होते है।

(1) माल पर वादी का आधिपत्य– इसके अलावा यह आवश्यक है कि अतिचार के समय वादी के पास वास्तविक या रचनात्मक माल का कब्जा होना चाहिए या तत्काल कब्जे का कानूनी अधिकार होना चाहिए। माल का अतिक्रमण स्वयं भी कार्रवाई योग्य है, यानी वास्तविक क्षति के किसी सबूत के बिना।

(क) माल पर काबिज न होते हुए भी न्यासधारी अपने कब्जे वे तुरन्त अधिकार के आधार पर तीसरे पक्षकार के विरूद्ध अतिचार के लिए वाद संस्थित कर सकता है।

(ख) विशेषाधिकार का स्वामी वस्तु पर वास्तविक कब्जा प्राप्त करने के पूर्व वस्तु के प्रति अतिचार के लिए दायर कर सकता है।

(ग) मृतक ने निस्पादन या प्राशासक मृतक के माल के प्रति किये अतिचार के लिए प्रोबेट अथवा प्रशासन–पत्र के अनुदान के पूर्व कार्यवाही कर सकते है।

(घ) इच्छा पर उपनिधान के मामलों के उपनिधाता उपनिहित वस्तुओं के प्रति अन्य व्यक्तियों द्वारा किये गये अतिचार के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है किन्तु वह उपनिहिती के विरूद्ध अतिचार की कार्यवाही नहीं कर सकता हैं।

विंकफील्ड और मैक्सिकन, दो जहाज दक्षिण अफ्रीका के तट पर टकरा गए। टक्कर के कारण दोनों जहाज क्षतिग्रस्त हो गए और मैक्सिकन डूब गया। चालक दल, यात्रियों और कुछ मेल और सामान को बचा लिया गया, लेकिन मैक्सिकन के माल पर शेष माल खो गया। इसके बाद, विंकफील्ड के मालिकों ने स्वीकार किया कि वे टक्कर के लिए जिम्मेदार थे। पोस्टमास्टर–जनरल ने खोई हुई मेल के मूल्य की मांग करते हुए एक दावा दायर किया जिसके लिए कोई अन्य दावा नहीं किया गया था। अदालत ने इस आधार पर दावा खारिज कर दिया कि पोस्टमास्टर–जनरल की खोई हुई मेल में रुचि रखने वाले किसी भी व्यक्ति के प्रति जिम्मेदारी नहीं है। इसलिए, पोस्टमास्टर–जनरल इसके मूल्य का दावा नहीं कर सके। पोस्टमास्टर–जनरल ने अपील की।

(2) कब्जे के प्रत्यक्ष हस्तक्षेप– भूमि पर अतिक्रमण भूमि के साथ गैरकानूनी, प्रत्यक्ष और जानबूझकर हस्तक्षेप है। इसमें भूमि की सतह, भूमि से स्थायी रूप से जुड़ी कोई भी चीज, नीचे की उप–मृदा और ऊपर उचित ऊंचाई और गहराई तक का हवाई क्षेत्र शामिल है। **विल्सन बनाम लोमबैंक लिमिटेड (1963) 1 डब्लू0आर0आर0** गैराज और विल्सन के बीच पिछले लेन–देन पर विचार करने पर, विल्सन और गैराज के बीच एक निहित शब्द पाया गया लेकिन कोई ग्रहणाधिकार नहीं था। विल्सन के पास कार का कब्जा था, उन्होंने किसी भी स्तर पर कार का कब्जा नहीं खोया था और उनके पास तत्काल कब्जे का अधिकार था। चूंकि विल्सन किसी भी समय कार तक पहुंच की मांग कर सकता था, इसलिए जब भी उसने चाहा, उसके पास वाहन का कब्जा था। यह भी प्रासंगिक था कि जब प्रतिनिधि ने वाहन एकत्र किया तो गैरेज ने किसी भी जिम्मेदारी को माफ कर दिया था, जो यह प्रदर्शित करने के लिए गया था कि ऋण की रेखा स्वामित्व को प्रभावित नहीं करती है। वाहन को गलती से ले जाने के

परिणामस्वरूप, विल्सन मरम्मत की कुल राशि और वाहन के मूल्य के लिए क्षतिपूर्ति का हकदार था। लोम्बैंक का वाहन पर गलत कब्जा विल्सन की संपत्ति का अतिक्रमण था।

(3) बिना किसी विधिक औचित्य के हस्तक्षेप– यह तब होता है जब कोई कानूनी औचित्य के बिना भूमि के कब्जे में हस्तक्षेप करता है। ऐसा भूमि में प्रवेश करके या ऐसा करने के लिए किसी वस्तु का उपयोग करके किया जा सकता है। **नेशनल कोल बोर्ड बनाम इवान्स (1951) 2 के0बी0 861** राष्ट्रीय कोयला बोर्ड (एनसीबी) या उसके पूर्ववर्तियों द्वारा, जहां तक स्थापित किया जा सकता है, परिषद की जानकारी के बिना, विद्युत केबल को काउंटी परिषद की भूमि के नीचे रखा गया था। परिषद ने भूमि पर खाई खोदने के लिए जेई इवांस एंड कंपनी (इवांस) को अनुबंधित किया। इवांस को कोई ज्ञान या संकेत नहीं था कि कोई केबल थी। जमीन की खुदाई करते समय केबल टूटकर क्षतिग्रस्त हो गई। एनसीबी ने अतिचार के लिए कार्रवाई का कारण बताया।

(2) अवरोध (Detinue)– वह कार्य जिसमें कोई व्यक्ति दूसरे की चल संपत्ति पर गलत तरीके से कब्जा कर लेता है। अंग्रेजी कानून द्वारा प्रदान किया गया उपाय हिरासत में ली गई कार्रवाई है, यानी व्यक्ति के कब्जे से हिरासत में ली गई चल संपत्ति की विशिष्ट वसूली। जिस व्यक्ति ने चल संपत्ति को गलत तरीके से हिरासत में लिया, उसे गलत तरीके से हिरासत में लेने वाले के रूप में जाना जाता है। हिरासत में ली गई चल संपत्ति की वसूली के उद्देश्य से वादी को यह साबित करना होगा–

(1) कि उसके पास चल संपत्ति रखने का वैध अधिकार हैं। (2) प्रतिवादी ने गलत तरीके से चल संपत्ति पर कब्जा कर लिया।

उदाहरण– यदि A अपना प्रेशर कुकर मरम्मत के लिए B को देता है। बाद में A,B को सेवा के लिए भुगतान करता है, लेकिन भुगतान प्राप्त करने के बाद भी B ने A को कुकर देने से इनकार कर दिया। B का यह कार्य हिरासत में लेने का कार्य है।

ध्यान सिंह शोभासिंह बनाम भारतीय संघ ए0आई0आर0 1958 एस0सी0 274 प्रत्येक व्यक्ति धर्मांतरण का दोषी है, जो बिना कानूनी औचित्य के किसी व्यक्ति को उसका सामान किसी और को सौंपकर उससे वंचित कर देता है ताकि कब्जा बदल सके। टॉर्ट्स (वस्तुओं में हस्तक्षेप) अधिनियम 1977 (टीआईजीए 1977) एक कानून है जो माल को प्रभावित करने वाले टॉर्ट्स, जैसे रूपांतरण, के संबंध में इंग्लैंड, वेल्स और उत्तरी आयरलैंड में कानून में संशोधन करता है। अधिनियम माल के साथ गलत हस्तक्षेप को इस प्रकार परिभाषित करता हैरू माल का रूपांतरण, माल में अतिचार, लापरवाही जिसके परिणामस्वरूप माल को नुकसान होता है, और कोई अन्य अपकृत्य जिसके परिणामस्वरूप माल को नुकसान होता है। अधिनियम गलत हस्तक्षेप की कार्यवाही में निम्नलिखित राहत भी प्रदान करता है– माल की डिलीवरी और किसी भी परिणामी क्षति के भुगतान के लिए एक आदेश TIGA 1977 ने बंदी को भी समाप्त कर दिया, जो एक मकान मालिक को पैसे बकाया होने पर सामान रखने की अनुमति देता था। किरायेदारों द्वारा छोड़े गए किसी भी सामान का निपटान करते समय मकान मालिकों को ज्ळ। 1977 के अनुसार कार्य करना चाहिए। कोई भी मकान मालिक जो TIGA 1977 द्वारा निर्धारित सही प्रक्रिया का पालन किए बिना किरायेदार द्वारा छोड़े गए सामान का निपटान या बिक्री करता है, वह खुद को नुकसान के लिए उत्तरदायी पा सकता है। TIGA 1977 1 जून 1978 को लागू हुआ।

(3) संपरिवर्तन (Conversion)– मूल रूप से रूपांतरण की अवधारणा का उपयोग अदालत द्वारा एक उपाय के रूप में किया जाता था, जिसका उद्देश्य चल संपत्ति के कब्जे को सही व्यक्ति में परिवर्तित करना था, अर्थात यदि कोई व्यक्ति जिसने दूसरे की संपत्ति पाई और उसे सही मालिक को वापस देने से इनकार कर दिया, तो रूपांतरण द्वारा। अदालत वादी को उपाय प्रदान करती है। लेकिन जैसे–जैसे समय बदलता है, रूपांतरण का उपयोग दूसरे की संपत्ति को गलत तरीके से लेने या उपयोग करने के लिए किया जाता है और जो उपाय वादी को उपलब्ध होता है उसे रूपांतरण की कार्रवाई के रूप में जाना जाता है। रूपांतरण की कार्रवाई को बनाए रखने के लिए, वादी को साबित करना होगा–(1) कि उसके पास चल संपत्ति रखने का वैध अधिकार है। (2) कि प्रतिवादी गलत तरीके से चल संपत्ति का कब्जा बदल लेता है।

प्रश्न न0 10–निम्न में से किन्हीं दो पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए–

(1) व्यादेश (Injuction)– कानून में व्यादेश की परिभाषा सिविल कार्यवाही में अदालत द्वारा लगाया गया एक कानूनी उपाय है। सरल शब्दों में, निषेधाज्ञा की परिभाषा तब होती है जब किसी निश्चित कार्रवाई के लिए पार्टियों में से किसी एक को या तो कुछ करना चाहिए या कुछ करने से बचना चाहिए। व्यादेश के अर्थ में व्यादेश की शर्तों का पालन करने में विफल रहने पर मौद्रिक दंड या कानूनी प्रभाव, जैसे जेल समय भी शामिल है। व्यादेश कानून का अनुपालन न करना किसी को न्यायालय की अवमानना में डालता है। व्यादेश बाध्यकारी है, जिसका अर्थ है कि अदालत में हुए समझौते या फैसले का पालन किया जाना चाहिए या उसका पालन किया जाना चाहिए।

सैकड़ों वर्षों से व्यादेश दायर की जाती रही है। उदाहरण के लिए, 14वीं शताब्दी में, इंग्लैंड में चांसरी कोर्ट आम कानून अदालतों द्वारा लिए गए निर्णयों के कानूनी उपाय के रूप में व्यादेश दे रहा था। चांसरी का न्यायालय एक इक्विटी कोर्ट था जो ऐसे उपचार और समाधान प्रदान करने की मांग करता था जो सामान्य कानून अदालतों द्वारा नहीं दिए गए थे। इक्विटी अदालतें व्यादेश और रिट जैसे गैर–मौद्रिक उपाय प्रदान कर सकती हैं। हालाँकि, 1873

में, सामान्य कानून न्यायालय और चांसरी न्यायालय का विलय हो गया और व्यादेश देना और अन्याय करने वाले पक्षों को हर्जाना देना शुरू कर दिया।

व्यादेश मामले में प्रतिवादी होने का अर्थ है स्वयं के विरुद्ध व्यादेश दायर करना। व्यादेश दायर करने वाले वादी ने प्रतिवादी को कार्रवाई शुरू करने या रोकने के लिए अदालत से राहत मांगी है। उदाहरण के लिए, यदि कोई नई कंपनी किसी पुराने कब्रिस्तान के ऊपर निर्माण करना चाहती है, तो भूमि का मालिक कंपनी के खिलाफ व्यादेश दायर कर सकता है। जमीन मालिक वादी होगा और निर्माण करने की कोशिश करने वाली कंपनी प्रतिवादी होगी। इस मामले में व्यादेश उचित होगी क्योंकि यह अपूरणीय क्षति को रोकती है। यदि भूमि मालिक को मामले की सुनवाई के लिए इंतजार करना होता, तो बहुत देर हो चुकी होती और कंपनी पहले ही कब्रों पर निर्माण कर चुकी होती। इस मामले में, व्यादेश दायर करने का अर्थ अदालतों को यह आदेश देने का प्रयास करना है कि कोई व्यक्ति अपूरणीय क्षति या क्षति होने से पहले कुछ करना बंद कर देय स्वयं के विरुद्ध व्यादेश दायर करने का अर्थ अदालतों द्वारा यह कहा जाना है कि कुछ भी करने से बचें या कानूनी परिणाम या जुर्माना भुगतने के लिए तैयार रहें।

व्यादेश के प्रकार (kinds of Injuction)– व्यादेश निम्नलिखित दो प्रकार के होते है।

(1) अस्थायी तथा स्थायी (Temporary and Perptual)– अंतिम निर्णय के समय, यानी आवेदक को अंतिम राहत देते हुए, एक स्थायी या शाश्वत व्यादेश जारी की जाती है। फैसले में, अदालत यह कह सकती है कि मामले के लंबित रहने के दौरान दी गई अस्थायी व्यादेश जारी रहेगी और मामले के निपटारे के बाद भी प्रभावी रहेगी। ऐसा व्यादेश एक स्थायी व्यादेश है जो मामले के निपटारे के बाद भी दूसरे पक्ष को आवेदक के अधिकारों के विपरीत कोई कार्य करने या अधिकार का दावा करने से रोकता है या प्रतिबंधित करता है।

(2) निषेधात्मक तथा आदेशात्मक (Probability and Mandatory)– किसी व्यक्ति या संस्था को कोई कार्य या कार्रवाई करने से रोकने के लिए निवारक व्यादेश दी जाती है। यह खतरे वाली चोट या चल रहे गलत कार्य को जारी रखने से रोकता है जिससे आवेदक को नुकसान होगा या आवेदक के अधिकारों का उल्लंघन होगा। व्यादेश जारी होने से पहले ही हो चुके किसी गलत कार्य को सुधारने के लिए अनिवार्य व्यादेश दी जाती है। अनिवार्य व्यादेश का उद्देश्य चीजों की गलत स्थिति को सही क्रम में बहाल करना है। उदाहरण के लिएरू यह किसी संपत्ति का कब्जा उसके असली मालिक तक पहुंचाने के लिए दूसरे पक्ष के खिलाफ जारी किया जाता है।

(2) न्यायिक उपचार (Judicial Remedies)– न्यायिक उपचार वे उपचार है जो अपकृत्य से उपहत व्यक्ति को विधिक कार्यवाही के परिणामस्वरूप न्यायालय द्वारा प्रदान किये जाते हैं इस प्रकार न्यायिक उपचार पाने के लिए वाद दायर किया जाना आवश्यक होता है। सुगमता की दृष्टि से न्यायिक उपचारों को निम्नलिखित कोटियों में विभाजित किया जा सकता है–

क्षतिपूर्ति (Damages)– क्षतिपूर्ति, या कानूनी हर्जाना वह धनराशि है जो पीड़ित पक्ष को उस स्थिति में वापस लाने के लिए दी जाती है जिसमें वे अपकृत्य घटित होने से पहले थे। उन्हें वादी को हुए नुकसान की भरपाई में मदद करने के लिए भुगतान किया जाता है। अपकार के लिए कार्रवाई के कारण में क्षति प्राथमिक उपाय है। 'क्षति' शब्द को 'क्षति' शब्द के बहुवचन के साथ भ्रमित नहीं किया जाना चाहिए, जिसका आम तौर पर अर्थ ''नुकसान'' या ''चोट'' होता है।

क्षतिपूर्ति के प्रकार(Kinds of damages)– अपकृत्य की कार्यवाही के मुख्य रूप से जिस क्षतिपूर्ति की माँग की जाती है और न्यायालय द्वारा स्वीकृत की जाती है उसके प्रकारों का वर्णन निम्नवत् है–

(क) सामान्य और विशिष्ट क्षतिपूर्ति (General and Special damages)– जब प्रतिवादी के गलत कृत्य और वादी को हुई हानि के बीच सीधा संबंध हो। उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति ।, अपनी लापरवाही के कारण, अपनी कार को एक व्यक्ति ठ से टकरा देता है, जिसे हड्डी की एक दुर्लभ बीमारी है। इस मामले में, वादी को हुई वास्तविक क्षति की भरपाई की जाएगी, वादी की दुर्लभ हड्डी की स्थिति को ध्यान में रखे बिना। वादी को हुई वास्तविक हानि की मात्रा की गणना करके सामान्य क्षति का पता लगाया जाता है। उदाहरण के लिए, शारीरिक दर्द और उसके कारण होने वाली हानि, या यदि वादी के जीवन की गुणवत्ता कम हो जाती है। विशेष हानि सिद्ध करके विशेष हर्जाना दिया जाता है। वास्तविक राशि प्राप्त करने के लिए कोई स्ट्रेटजैकेट फॉर्मूला नहीं है। वादी को सिर्फ यह साबित करना होगा कि उसे कितना नुकसान हुआ है। उदाहरण के लिए, चिकित्सा व्यय, वेतन की हानि (संभावित), खोए या क्षतिग्रस्त सामान संपत्ति की मरम्मत या प्रतिस्थापन। **वैगन माउंड केस (ओवरसीज टैंकशिप लिमिटेड बनाम मोर्ट्स डॉक्स एंड इंजीनियरिंग कंपनी)** इस मामले में, प्रतिवादियों के पास एक जहाज (द वैगन माउंड नंबर 1) था। वादी मोर्ट्स डॉक नामक गोदी के मालिक थे। प्रतिवादी की लापरवाही के कारण एक चिंगारी भड़क उठी जिससे पास में तैरते कुछ कपास के कचरे में आग लग गई, जिसके कारण वादी के घाट और उनके जहाज, वैगन माउंड क्षतिग्रस्त हो गए।

(ख) दण्डात्मक या उदाहरण नुकसानी – दंडात्मक क्षति, जिसे अनुकरणीय क्षति के रूप में भी जाना जाता है, वादी को उनके द्वारा किए गए वास्तविक नुकसान के अलावा अतिरिक्त क्षति दी जाती है। उनका उद्देश्य प्रतिवादी को दंडित करना और दूसरों को समान कृत्य करने से रोकना है।

अदालतें आम तौर पर केवल दंडात्मक हर्जाना देती हैं यदि वादी यह साबित कर सके कि प्रतिवादी ने जानबूझकर कार्य किया या प्रचंड और जानबूझकर कदाचार में लिप्त रहा।

(2) सम्पत्ति का विशिष्ट पुनः स्थापन– सम्पति का विशिष्ट पुनः स्थापन न्यायिक उपचार तीसरा रूप है। इस उपचार अन्तर्गत यदि कोई व्यक्ति अपनी चल अथवा अचल सम्पत्ति के कब्जे से अवैध ढंग से हटा दिया गया है अथवा बेदखल कर दिया गया है तो उसे उस विशिष्ट सम्पत्ति को पुनः वापस जाने का अधिकार होता है। अचल सम्पत्ति के मामलों में वादी को सदैव अचल सम्पत्ति पर पुनः कब्जा दिया जाता है। किन्तु चल सम्पत्ति के सम्बन्ध में सम्पत्ति का स्वामी या तो सम्मत्ति को पुनर्प्राप्ति करता है या उसके लिए प्रतिकर के रूप में क्षतिपूर्ति प्राप्त करता है। इस उपचार का उद्देश्य वादी को दोषपूर्ण कृत्य किये जाने के पूर्व की स्थिति प्राप्त कराना है। इस सन्दर्भ में चल वस्तु को प्रनः प्राप्त करने के लिए निरोध मुक्ति की कार्यवाही तथा अचल सम्पत्तिपर पुनः कब्जा पाने के लिए बेदखली की कार्यवाही की जाती है।

(3) मिथ्या नाम से व्यापार करना (Passing off)– जब कोई व्यक्ति किसी ऐसे नाम निशान या ट्रेडमार्क के अन्तर्गत कोई चीज बेचता है या बनाता है या उसका कारोबार करता है जिससे जनता को यह धोखा हो कि उक्त वस्तु किसी अन्य व्यक्ति द्वारा बनाई है–जो वह मिथ्या नाम से व्यापार का अपकृत्य करता है। यह सामान्य नियम है कि कोई व्यक्ति अपनी वस्तुओं को दूसरों वस्तु के रूप में नहीं निरूपित कर सकता है। यदि वह ऐसा करता है तो उसे ''पासिंग ऑफ'' अर्थात मिथ्या नाम से व्यापार करना कहा जाता है। वह क्षतिकारी झूठ की ही एक विशेष किस्म है। इस प्रकार के अपकृत्य में वादी की वस्तुओं को कोई निन्दा नहीं हैं, बल्कि प्रतिवादी केवल यह प्रदर्शित करने कस प्रयास करता है कि वस्तुएँ वादी की वस्तुओं जैसे ही हैं।

''पॉसिंग ऑफ ट्रेडमार्क विधि का पूरक है। यदि किसी वस्तु के लिए ट्रेडमार्क, पंजीकृत है तो पॉसिंग ऑफ से पंजीकरण के अधिकार का उल्लंघन होता है और ऐसे मामलों के पॉसिंग ऑफ और ट्रेडमार्क के उल्लंघन से दो अपकृत्य साथ–साथ होते है।

व्हाइस्ट हडसन एण्ड कम्पनी लि. बनाम एशियन ऑर्गनाइजेशन लि. (1964) 1 डब्लू.एल.आर 1466 इस मामले की सुनवाई 16 नवंबर, 1964 को प्रिवी काउंसिल द्वारा की गई। मामले में, प्रतिवादी ने वादी के समान लाल सिलोफन रैपर में मिठाइयाँ बेचीं। इसके कारण कई उपभोक्ताओं ने प्रतिवादी की मिठाइयाँ यह सोचकर खरीद लीं कि वे वादी की लोकप्रिय खाँसी मिठाइयाँ हैं। मामले में वादी ने लाल सिलोफन रैपर में औषधीय खांसी की मिठाइयाँ बेचीं। प्रतिवादी की मिठाइयों के कारण कई उपभोक्ता यह सोचकर उन्हें खरीदने लगे कि वे वादी की लोकप्रिय खांसी की मिठाइयाँ हैं।

हीरालाल प्रभुदास बनाम गनेश ट्रेडिंग कम्पनी ए.आई.आर. 1985 बम्बई यह ट्रेड एंड मर्चेंडाइज मार्क्स एक्ट, 1958 की धारा 56 के तहत एक आवेदन है। याचिकाकर्ता बानिक रबर इंडस्ट्रीज एक ट्रेड मार्क को रद्द करने की मांग कर रहा है, जिसे ट्रेड मार्क्स रजिस्ट्रार द्वारा कक्षा 25 में पंजीकरण संख्या 377580 के तहत पंजीकृत किया गया है। ट्रेड मार्क्स रजिस्टर में. याचिकाकर्ता प्रतिवादी नंबर 1, श्री के.बी. रबर इंडस्ट्रीज के पक्ष में, ट्रेड मार्क के रजिस्टर से उपरोक्त प्रविष्टि को हटाकर, ट्रेड मार्क के रजिस्टर में सुधार की भी मांग कर रहा है।

B.A. LL.B.-6th Sem. Paper-VI Labour Law and Industrial Law-II

प्रश्न न0 1– कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 के अन्तर्गत दी गयी परिभाष में कर्मकार की समीक्षा कीजिए।

उत्तर– कर्मकार– कर्मकार अधिनियम की धारा 2(1) (ढ) में कर्मकार की परिभाषा उपबन्धित की गई है। इस परिभाषा के अनुसार कर्मकार अभिप्राय निम्न व्यक्ति से है–जिसकी नियुक्ति आकस्मिक प्रकृति की नहीं है और जिसकी नियुक्ति नियोजक के व्यवसाय या कारबार के प्रयोजन के लिए होने से अन्यथा से नहीं है। कर्मकार की परिभाषा में निम्नलिखित व्यक्ति सम्मिलित है–

(1) रेलवे अधिनियम, 1989 की धारा 2(34) के अनुसार, रेलवे सेवक का अर्थ है ष्रेलवे प्रशासन द्वारा रेलवे की सेवा के संबंध में नियोजित कोई भी व्यक्ति।ष धारा 2(डीडी) के तहत कर्मचारी की परिभाषा के अनुसार, रेलवे सेवक एक कर्मचारी है यदिः वह रेलवे के किसी प्रशासनिक, जिला या उप–मंडल कार्यालय में श्स्थायी रूप सेश कार्यरत नहीं है; तथा वह अधिनियम की अनुसूची प्प में निर्दिष्ट किसी भी क्षमता में नियोजित नहीं है।

(2) किसी जहाज का मास्टर, नाविक या चालक दल का अन्य सदस्यय किसी वायुयान का कप्तान या चालक दल का अन्य सदस्यय किसी मोटर वाहन के संबंध में चालक, सहायक, मैकेनिक, क्लीनर या किसी अन्य क्षमता में भर्ती किया गया व्यक्तिय किसी कंपनी द्वारा विदेश में काम के लिए भर्ती किया गया व्यक्तिय और जो अनुसूची प्प में निर्दिष्ट किसी ऐसी क्षमता में भारत के बाहर नियोजित है और जहाज, वायुयान या मोटर वाहन या कंपनी, जैसा भी मामला हो, भारत में पंजीकृत है; या

(3) अनुसूची 2 में विनिर्दिष्ट किसी ऐसी हैसियत में नियोजित, चाहे नियोजन संविदा इस अधिनियम के पारित होने के पूर्व की गई हो या उसके बाद की गई हो और चाहे ऐसी संविदा अभिव्यक्त या विवक्षित, मौखिक या लिखित होय किन्तु इसके अंतर्गत संघ के सशस्त्र बलों के सदस्य की हैसियत में कार्यरत कोई व्यक्ति नहीं हैय और ऐसे किसी कर्मचारी के प्रति संदर्भ में, जो घायल हो गया हो, जहां कर्मचारी की मृत्यु हो गई हो, उसके आश्रितों या उनमें से किसी के प्रति संदर्भ सम्मिलित होगा।

लेकिन निम्नलिखित व्यक्तियों को कर्मकार की परिभाषा में सम्मिलित नहीं किया जा सकता है–

(1) यदि किसी व्यक्ति को नियोजन आकस्मिक प्रकृति का है और नियोजन के व्यापार अथवा व्यवसाय के प्रयोजनों के सिवाय किसी काम के निमित्त नियोजित किया गया है।

केरल बालग्राम पंजीकृत सोसायटी वीकेएम कोचुमन– इस मामले में यह माना गया है कि, काटे गए धान को छानने के उद्देश्य से नियोजित व्यक्ति को ईसीए, 1923 की धारा 2 (डीडी) के तहत कर्मचारी की परिभाषा के अंतर्गत 'कर्मचारी' माना गया है।

(2) ऐसा कोई व्यक्ति जो भारत के संघ सशस्त्र बल के सदस्य की हैसियत से काम कर रहा है। उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट परिलिक्षित होता है कि यह ज्ञात करने के लिए रेलवे कर्मचारी के अतिरिक्त कौन कर्मकार है, निम्न तीन मूलभूत बातें जानना जरूरी है–

(1) अनुसूची 2 में विनिर्दिष्ट पद;

(2) कर्मकार की मासिक मजदूरी;

(3) नियोजन की प्रकृति

आकस्मिक प्रकृति का नियोजन–जिस कर्मकार की नियुक्ति आकस्मिक प्रकृति की है तथा जिसका नियोजक के व्यवसाय के अतिरिक्त अन्य प्रयोजन के लिए हुआ उसे कर्मकार की परिभाषा में सम्मिलित नहीं किया जा सकता। यहाँ दो बातें स्पष्ट करना आवश्यक है– पहली बात यह है कि नियोजित व्यक्ति कर्मकार है– यह सिद्ध करने का दायित्व नियोजक पर है। दूसरी आवश्यक बात यह है कि नियोजित व्यक्ति को कर्मकार की परिभाषा से बाहर रखने के लिए बातें सिद्ध करनी होगी–(1) कर्मकार की नियुक्ति की प्रकृति आकस्मिक प्रकार की थी; (2) उसे नियोजक के व्यवसाय अथवा कारबार के प्रयोजन के अतिरिक्त किसी अन्य प्रयोजन के लिए नियुक्ति किया गया था।

टी0एन0 सीताराम रेड्डियर बनाम ए. अय्यास्वामी गोण्डर ए.आई.आर. 1956 मद्रास 212 के विनिश्चिय में मद्रास उच्च नयायालय ने यह अवधारणा अभिव्यक्त की है कि आकस्मिक रोजगार वह रोजगार है जो संयोगवश परिस्थितियों के कारण आवश्यक हो जाता है। इस अभिव्यक्ति का प्रयोग 'स्थायी या निरंतर' रोजगार के विपरीत नहीं किया जाता है। ''एजेंट की ओर से बिना किसी योजना के, या महज संयोग के रूप में घटित होनाय अनिश्चित समय पर या बिना नियमितता के घटित होनाय किसी मजदूर या कारीगर का केवल अनियमित रूप से नियोजित होना''

मदन मोहन वर्मा बनाम मोहन लाल (1983) 11 एल.एल.जे. 322 इलाहाबाद मोहन लाल ने कर्मचारी प्रतिकर अधिनियम, 1923 की धारा 3 के अंतर्गत एक आवेदन दायर किया , जिसमें प्रतिवादी मदन मोहन वर्मा से निम्नलिखित आरोपों के आधार पर प्रतिपूर्ति का दावा किया गया। मोहन लाल को मदन मोहन वर्मा ने रु. 15/– की दैनिक मजदूरी पर कपास ओटने की मशीन और चॉफ कटिंग मशीन लगाने के लिए मैकेनिकध्कर्मचारी के रूप में

नियुक्त किया था। 8 अक्टूबर, 1973 को जब मोहन लाल चॉफ कटिंग मशीन का ट्रायल ले रहा था, उसका दाहिना हाथ मशीन के गियर रोलर के दांतों में फंस गया और उसके दाहिने हाथ की सभी उंगलियां और अंगूठा कट गया, जिसके परिणामस्वरूप वह स्थायी रूप से पूर्ण विकलांगता का शिकार हो गया, जिससे उसके भविष्य की कमाई करने की क्षमता भी प्रभावित हुई। उसने अपने नियोक्ता मदन मोहन वर्मा से मुआवजे का दावा किया, लेकिन बाद वाले ने कोई भी मुआवजा देने से इनकार कर दिया। इस पर मोहन लाल ने कर्मचारी प्रतिकर अधिनियम की धारा 3 के अंतर्गत आवेदन दायर किया उनका मामला यह था कि मोहन लाल को अपने द्वारा स्थापित मशीन में अपने चारे को टुकड़ों में काटने की प्रक्रिया के दौरान चोटें आईं थीं। परिस्थितियों के अनुसार, नियोक्ता को मुआवजा देने के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता था। इसके अलावा, चोटें मोहन लाल की लापरवाही के कारण आई थीं। इस बात से भी इनकार किया गया कि मोहन लाल एक कामगार था।

महमूद बनाम बलवन्त सिंह (1980) (इलाहाबाद) के विनिश्चिय में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने यह अवधारित किया है कि गेहूँ माँड़ने के लिये किये गये व्यक्ति के स्थायी आंशिक निर्योग्यता का दावा प्रस्तुत किया जा सकता है। किसी व्यक्ति को कर्मकार की श्रेणी में सम्मिलित किया जा सकेगा, यदि उसका नियोजन किसी व्यवसाय या कारबार में किया गया है चाहे नियोजन की प्रकृति आकस्मिक ही क्यों न हो।

प्रश्न न0 2– भारतीय मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 की मुख्य विशेषताओं की विवेचना कीजिए।

उत्तर– मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 एक ऐसा कानून है जो मातृत्व के समय महिलाओं के रोजगार की रक्षा करता है। यह महिला कर्मचारियों को 'मातृत्व लाभ' का अधिकार देता है, जिसमें काम से अनुपस्थिति के दौरान और अपने बच्चे की देखभाल के लिए पूरी तरह से भुगतान किया गया वेतन शामिल है। यह अधिनियम 10 या उससे अधिक कर्मचारियों को नियुक्त करने वाले प्रतिष्ठानों पर लागू होता है। मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 को मातृत्व (संशोधन) विधेयक 2017 के माध्यम से संशोधित किया गया है, जिसे 09 मार्च, 2017 को लोकसभा में पारित किया गया था। इसके बाद, उक्त विधेयक को 11 अगस्त, 2016 को राज्यसभा में पारित किया गया था। इसके अलावा, इसे 27 मार्च, 2017 को भारत के राष्ट्रपति से स्वीकृति प्राप्त हुई। मातृत्व लाभ (संशोधन) अधिनियम, 2017 ('संशोधन अधिनियम') के प्रावधान 1 अप्रैल, 2017 को प्रभावी हुए और क्रेच सुविधा (धारा 111 ए) के संबंध में प्रावधान 1 जुलाई, 2017 से प्रभावी हुए।

मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 का अवलोकन

देश की स्वतंत्रता के बाद 12 दिसंबर, 1961 को भारत संघ द्वारा मातृत्व लाभ अधिनियम 1961 पारित किया गया था। इस कानून में गर्भावस्था, प्रसव और उनसे संबंधित जटिलताओं के लिए सशर्त लाभ शामिल थे, जो तत्कालीन अंतरराष्ट्रीय मानकों के अनुरूप थे। इस अधिनियम ने बहुत से क्षेत्रों को सावधानीपूर्वक सटीकता के साथ कवर किया और मातृत्व लाभों को प्रभावित करने वाले विचारों के कई आयामों पर ध्यान दिया गया, इस तथ्य के बावजूद कि भारत अभी भी एक विकासशील राष्ट्र था और अपनी स्वतंत्रता के 14वें वर्ष में था। मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 भारत में मातृत्व लाभों को नियंत्रित करता है। दस (10) या अधिक कर्मचारियों वाला प्रत्येक संगठन अधिनियम के अधीन है। अधिनियम के अनुसार, मातृत्व लाभ किसी भी महिला को उपलब्ध है जिसने कम से कम अस्सी (80) दिनों तक किसी संगठन के लिए काम किया हो।मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 का उद्देश्य कामकाजी महिला को सम्मानजनक तरीके से सभी सुविधाएं प्रदान करना है, ताकि वह ष्मातृत्व की स्थिति को सम्मानपूर्वक, शांतिपूर्वक, पूर्व या प्रसवोत्तर अवधि के दौरान जबरन अनुपस्थिति के लिए पीड़ित होने के डर से विचलित हुए बिनाष पार कर सके, जैसा कि सुप्रीम कोर्ट ने नगर निगम ऑफ दिल्ली बनाम महिला श्रमिक (मस्टर रोल) (2000) के मामले में देखा था। मातृत्व लाभ अधिनियम 1961 के अनुसार, यदि प्रसव पूर्व प्रसव और कोई भुगतान प्रसवोत्तर देखभाल नहीं है, तो नियोक्ता को लाभार्थी को 1,000 रुपये तक का मेडिकल बोनस देना चाहिए। केंद्र सरकार ने मेडिकल बोनस को बढ़ाकर 25,000 रुपये कर दिया है। यदि महिला को गर्भपात या गर्भावस्था से संबंधित किसी अन्य जटिलता का अनुभव होता है, तो वह भुगतान वाली छुट्टी की हकदार है। काम पर वापस लौटने के बाद, माँ को छुट्टी की पात्रता होती है और उसे बच्चे को 15 महीने की उम्र तक दूध पिलाने के लिए दो बार छुट्टी दी जाती है। पचास या उससे अधिक महिला कर्मचारियों वाली हर फर्म में सुविधाजनक स्थानों पर "क्रेच की सुविधा" उपलब्ध कराना भी अनिवार्य किया गया है। महिलाओं को उनके ट्यूबेक्टोमी ऑपरेशन के लिए दिए गए प्रमाण के आधार पर वेतन के साथ छुट्टी लेने की अनुमति होगी। अधिनियम के अनुसार, नियोक्ता द्वारा गर्भवती महिला को उसके अनुपस्थित रहने के दौरान या गर्भावस्था के कारण नौकरी से निकालना या बर्खास्त करना, या उस दिन बर्खास्तगी का नोटिस देना, जब नोटिस की अवधि समाप्त हो जाएगी, जबकि वह अनुपस्थित है, या उसके रोजगार की शर्तों में से किसी को भी अपने नुकसान के लिए बदलना कानून के विरुद्ध है। कानून के अनुसार, गर्भवती महिलाओं को आवंटित हल्का काम और बच्चे को दूध पिलाने के लिए अवकाश वेतन कटौती का आधार नहीं है।

यह कानून सभी व्यवसायों पर लागू होता है, जिसमें सरकार से जुड़े व्यवसाय और वे व्यवसाय शामिल हैं जो कारखानों, खदानों और बागानों में प्रदर्शन के लिए घुड़सवारी, कलाबाजी और अन्य करतब दिखाने के लिए लोगों को नियुक्त करते हैं। इसके अतिरिक्त, यह दस या उससे अधिक कर्मचारियों वाले किसी भी स्टोर या व्यवसाय पर लागू होता है। औद्योगिक, कृषि और वाणिज्यिक प्रतिष्ठानों के लिए प्रावधानों को शामिल करने से यह अधिनियम 1928 के अल्पविकसित अधिनियम की तुलना में एक महत्वपूर्ण सुधार के रूप में चिह्नित हुआ। अधिनियम निम्नलिखित धाराओं में सभी मातृत्व लाभों को कवर करता है–

धारा 4: कुछ निश्चित अवधियों के दौरान महिलाओं का रोजगार या काम करना प्रतिबंधित है।

धारा 5: मातृत्व लाभ के भुगतान का अधिकार।

धारा 7: महिला की मृत्यु की स्थिति में मातृत्व लाभ का भुगतान।

धारा 8: चिकित्सा बोनस का भुगतान।

धारा 9: गर्भपात आदि के लिए छुट्टी।

धारा 10: गर्भावस्था, प्रसव, बच्चे का समय से पहले जन्म, गर्भपात, गर्भावस्था की चिकित्सा समाप्ति या नसबंदी ऑपरेशन से उत्पन्न बीमारी के लिए छुट्टी।

धारा 11: नर्सिंग ब्रेक.

धारा 12: गर्भावस्था की अनुपस्थिति के दौरान बर्खास्तगी।

धारा 13: कुछ मामलों में मजदूरी की कटौती नहीं की जाएगी।

धारा 18: मातृत्व लाभ की जब्ती।

महिलाओं को अधिक समावेशी मातृत्व लाभ देने के लिए भारत सरकार द्वारा 2017 में अधिनियम में संशोधन किया गया था। अन्य संशोधनों के अलावा, अधिनियम में एक नया खंड, धारा 5(5) जोड़ा गया, जिसके तहत मातृत्व अवकाश का अनुरोध करने वाली महिलाओं को घर से काम करने का लाभ मिल सकता है। अधिनियम की धारा 5(5) के अनुसार , नियोक्ता नर्सिंग माताओं को घर से काम करने के लिए अधिकृत कर सकता है, यदि उन्हें दिए गए काम की प्रकृति इसकी अनुमति देती है, पारस्परिक रूप से सहमत शर्तों के तहत।

मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 की विशेषताएं

छुट्टी की अवधि– अधिनियम के अनुसार एक महिला को बारह सप्ताह का मातृत्व अवकाश मिलता है, जिसमें से अधिकतम छह सप्ताह प्रसव की तिथि से पहले हो सकते हैं। उस समय प्स्व् के दिशा–निर्देशों में इस बात को ध्यान में रखा गया था।

नौकरी की सुरक्षा– 1961 के अधिनियम के दिशा–निर्देशों के अनुसार, नियोक्ता द्वारा किसी महिला को उसकी अनुपस्थिति के दौरान या उसके कारण किसी भी समय नौकरी से निकालना या जाने देना गैरकानूनी माना गया है। हालाँकि, अगर बर्खास्तगी या बर्खास्तगी गंभीर गलत कामों का नतीजा है, तो नियोक्ता कर्मचारी को लिखित रूप से सूचित कर सकता है।

छुट्टी के दौरान पारिश्रमिक– जो महिलाएं कानून में उल्लिखित मातृत्व अवकाश की आवश्यकताओं को पूरा करती हैं, वे उस समय के लिए औसत दैनिक वेतन की दर से मातृत्व लाभ पाने की हकदार हैं, जब वे वास्तव में काम से अनुपस्थित रहती हैं।

वित्तीय लाभ– इस कानून के अनुसार, हर महिला मातृत्व लाभ पाने की हकदार है और नियोक्ता से मेडिकल बोनस पाने का विकल्प भी है, अगर नियोक्ता द्वारा कर्मचारी को बिना किसी खर्च के प्रसवपूर्व या प्रसवोत्तर देखभाल प्रदान नहीं की जाती है। नियोक्ता महिला की मृत्यु की स्थिति में उसके नामिती या कानूनी प्रतिनिधि को मातृत्व लाभ सहित सभी ऋणों का भुगतान करने के लिए जिम्मेदार है।

मातृत्व लाभ अधिनियम 1961 के अंतर्गत कवर किए गए लाभ

अधिनियम के अनुसार कर्मचारी को प्रसव, गर्भपात या गर्भावस्था की चिकित्सा समाप्ति के दिन से तुरंत बाद छह सप्ताह तक किसी भी स्थान पर किसी भी ज्ञात महिला को काम पर रखने से बचना चाहिए। प्रसव या गर्भपात के दिन से तुरंत बाद छह सप्ताह के दौरान, कोई भी महिला किसी भी कंपनी में काम नहीं करेगी। नियोक्ता ऐसी महिलाओं से तब तक कोई काम नहीं करवाएगा जब तक कि नियोजित महिला द्वारा ऐसा करने के लिए अनुरोध न किया जाए।

(1) जो उसकी गर्भावस्था या भ्रूण के सामान्य विकास पर नकारात्मक प्रभाव डालता है,

(2) ऐसा कोई भी कार्य जिससे उसका गर्भपात हो सकता हो या उसके स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता हो।

प्रत्येक महिला को मातृत्व लाभ पाने का अधिकार है, और उसके नियोक्ता की जिम्मेदारी है कि वह उसे उस समय के लिए औसत दैनिक आय के बराबर भुगतान करे, जब वह वास्तव में काम से दूर थी, अर्थात–

(1) उसके प्रसव के दिन तक का समय।

(2) जिस दिन उसने बच्चे को जन्म दिया और उसके तुरंत बाद की अवधि के लिए।

भौतिक लाभ में संशोधन की मुख्य विशेषताएं

मातृत्व लाभ (संशोधन) विधेयक, 2017 को 11 अगस्त, 2016 को राज्य सभा और लोकसभा द्वारा अनुमोदित किया गया था, और भारत के राष्ट्रपति ने 27 मार्च, 2017 को अपनी स्वीकृति दी थी। मातृत्व लाभ (संशोधन) अधिनियम 2017 के प्रावधान भारत में 1 अप्रैल, 2017 को लागू हुए। हालाँकि, चाइल्डकैअर सुविधा (धारा 11) से संबंधित खंड 1 जुलाई, 2017 को लागू हुए। परिवर्तन के बाद भी अधिनियम अपने मूल सिद्धांतों का पालन करता है, लेकिन बेहतर लाभ प्रदान करता है और बेहतर बाल देखभाल को बढ़ावा देता है। हमारी जाँच के अनुसार, इस कानून के चार स्तरों में निम्नलिखित परिवर्तन हुए हैं–

छुट्टी की अवधि– संशोधन में 26 सप्ताह का मातृत्व अवकाश प्रदान किया गया है, जो अनुमानित नियत तिथि से 8 सप्ताह पहले से अधिक नहीं होना चाहिए, जब तक कि उनके दो या अधिक जीवित बच्चे न हों। पिछले अधिनियम के बाद से मातृत्व अवकाश की कुल अवधि में 117ः की वृद्धि हुई है। इसके अतिरिक्त, यह ILO के 18 सप्ताह या उससे अधिक के सुझाव का अनुपालन करता है। यह संशोधन माताओं को आत्म–चिकित्सा के लिए पर्याप्त समय प्रदान करने और बाल देखभाल में सुधार करने के लिए पारित किया गया था, जिससे शिशु मृत्यु दर में कमी आएगी। गोद लेना इस नियम का अपवाद है। एक कमीशनिंग माँ या एक महिला जो तीन महीने से कम उम्र के बच्चे को गोद लेती है, वह बारह सप्ताह के मातृत्व अवकाश के लिए पात्र है।

नौकरी की सुरक्षा– मूल अधिनियम का निष्कासन और बर्खास्तगी खंड अपरिवर्तित रहेगा।

वित्तीय लाभ– कोई भी तत्काल वित्तीय लाभ व्यवहार में नहीं लाया गया है। हालाँकि, संशोधन में यह प्रावधान है कि एक महिला को घर से काम करने का अधिकार है, बशर्ते कि उसका नियोक्ता और वह दोनों इस पर परस्पर सहमत हों। 50 या उससे अधिक कर्मचारियों वाले प्रत्येक व्यवसाय में स्वतंत्र रूप से या सामान्य क्षेत्रों के हिस्से के रूप में एक क्रेच सुविधा शामिल होनी चाहिए। यह एक और लाभ है। नियोक्ता महिला को चाइल्डकेयर प्रदाता के पास चार बार जाने की अनुमति देगा। सबसे महत्वपूर्ण संशोधन मातृत्व अवकाश को 12 से बढ़ाकर 26 सप्ताह करना है। डब्ल्यूएचओ के अनुसार , मृत्यु जोखिम को कम करने के लिए जन्म के बाद बच्चे को 24 सप्ताह तक स्तनपान कराया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त, अपर्याप्त मातृत्व अवकाश के परिणामस्वरूप नौकरी छोड़ने वाली महिलाओं की संख्या को कम करना चाहिए। इसके अतिरिक्त, लंबी छुट्टी अवधि मातृत्व लाभ सम्मेलन के सुझाव (सं. 183) के अनुसार है । कमीशनिंग और गोद लेने वाली महिलाओं के लिए मातृत्व अवकाश को जोड़ना एक महत्वपूर्ण कदम है जो उन्हें अपने और अपने बच्चों की देखभाल करने के साथ–साथ अपने पितृत्व का सम्मान करने की अनुमति देता है। इन परिवर्तनों के कारण, भारत अब महिलाओं को उपलब्ध मातृत्व लाभों की संख्या के मामले में कनाडा और नॉर्वे के बाद तीसरे स्थान पर है।

मातृत्व लाभ (संशोधन) अधिनियम, 2017 का रोजगार पर प्रभाव मातृत्व लाभ (संशोधन) अधिनियम, 2017 के रोजगारपरकता पर प्रभाव नीचे सूचीबद्ध किए गए हैं–

(1) निजी कंपनियों में कई नियोक्ता ऐसी महिलाओं को काम पर रखने से परहेज कर सकते हैं जो गर्भवती होने वाली हों, क्योंकि उन्हें उस समय (26 सप्ताह तक) के लिए मातृत्व अवकाश और मुआवजा देना आवश्यक है। संशोधन के बाद से, कई फर्म महिलाओं को काम पर रखने को एक कठिनाई के रूप में देखते हैं। नियोक्ता का आवंटित समय के दौरान सभी वेतन का पूरा भुगतान करने का विशेष दायित्व नियोक्ताओं के लिए उत्पादन लागत बढ़ाता है।

(2) उत्पादन लागत में वृद्धि इसलिए होती है क्योंकि नियोक्ता का आवंटित समय के दौरान सभी मजदूरी का पूरा भुगतान करने का अनन्य दायित्व होता है, जिससे नियोक्ता की लागत बढ़ जाती है।

(3) इस प्रावधान से नियोक्ताओं को उनकी वित्तीय स्थिरता के बारे में चिंता होती है, जिसके कारण वे महिलाओं की अपेक्षा पुरुषों को नौकरी पर रखने के प्रति अधिक इच्छुक हो सकते हैं।

(4) विस्तारित मातृत्व अवकाश के कारण होने वाला घाटा, जो उन व्यवसायों के लिए लाभकारी है जो सामान्यतः महिला कर्मचारियों को नियुक्त करते हैं।

(5) इससे महिला कर्मचारियों के लिए रोजगार की संभावनाएं कम हो जाती हैं, क्योंकि कंपनियां या तो उन्हें काम पर रखने में अनिच्छुक होती हैं या फिर आगे की देनदारी से बचने के लिए उन्हें बच्चे के जन्म से ठीक पहले नौकरी छोड़ने के लिए कह देती हैं।

प्रयोज्यता

मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 ('अधिनियम') की धारा 3 (ई) के साथ धारा 2 को पढ़ने पर , यह सुरक्षित रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अधिनियम कारखानों, (ष्कारखानाष् जैसा कि कारखाना अधिनियम, 1948 में परिभाषित किया गया है), खानों ('खान' जैसा कि खान अधिनियम, 1952 में परिभाषित किया गया है) और बागानों ('बागान' का अर्थ बागान श्रम अधिनियम, 1951 में परिभाषित बागान है) जैसे प्रतिष्ठानों पर लागू होता है।

मातृत्व लाभ अधिनियम सरकारी प्रतिष्ठानों और उन प्रतिष्ठानों पर भी लागू होता है, जिनमें धारा 2(बी) के अनुसार घुड़सवारी, कलाबाजी और अन्य प्रदर्शन के प्रदर्शन के लिए व्यक्तियों को नियुक्त किया जाता है। उक्त अधिनियम कानून के तहत परिभाषित प्रत्येक दुकान या प्रतिष्ठान पर भी लागू होता है, जिसमें पिछले बारह महीनों के दौरान एक दिन में दस या अधिक व्यक्ति कार्यरत हैं और जो किसी विशेष राज्य में दुकानों और प्रतिष्ठानों के संबंध में लागू होता है।

इस प्रकार, उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, दिल्ली में यह अधिनियम सभी "प्रतिष्ठानों" और "वाणिज्यिक प्रतिष्ठानों" पर लागू होता है, जो दिल्ली दुकानें और प्रतिष्ठान अधिनियम, 1954 की धारा 2(9) और 2(5) के दायरे में आते हैं ।

इसके अलावा, मातृत्व लाभ अधिनियम की धारा 2 के प्रावधान के अनुसार, राज्य सरकार, केन्द्र सरकार से अनुमोदन प्राप्त करने के अधीन, यह घोषित कर सकती है कि अधिनियम के प्रावधान किसी अन्य प्रतिष्ठान या प्रतिष्ठानों के वर्ग पर लागू होंगे जो औद्योगिक, वाणिज्यिक या कृषि गतिविधियां या अन्यथा कोई अन्य गतिविधि कर रहे हैं। यह ध्यान देने योग्य है कि इस अधिनियम में निहित प्रावधान, धारा 5ए और 5बी में अन्यथा दिए गए

प्रावधानों को छोड़कर, किसी भी कारखाने या अन्य प्रतिष्ठानों पर लागू नहीं होंगे, जो अधिनियम की धारा 2(2) के अनुसार कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 के प्रावधानों के अंतर्गत आते हैं। इसके अलावा, अधिनियम की धारा 26 के अनुसार , उपयुक्त सरकार के पास धारा 26 में निर्धारित शर्तों के अधीन, अधिसूचना के माध्यम से किसी प्रतिष्ठान को अधिनियम के दायरे से छूट देने की शक्ति है।

मातृत्व लाभ प्रदान करने की अवधि– मातृत्व लाभ (संशोधन) अधिनियम 2017 द्वारा संशोधित धारा 5 (3) के अनुसार, एक महिला को मातृत्व लाभ मिलने का अधिकतम समय छब्बीस सप्ताह है, जिसमें उसके अनुमानित प्रसव की नियत तारीख से पहले के आठ सप्ताह शामिल नहीं हैं। इसके अलावा, इस घटना में कि इस समय के भीतर किसी महिला की मृत्यु हो जाती है, मातृत्व लाभ का भुगतान केवल उसकी मृत्यु के दिन से पहले के दिनों के लिए किया जाएगा। धारा 5 की उपधारा (4) के अनुसार, एक महिला जो कानूनी रूप से तीन महीने से कम उम्र के बच्चे को गोद लेती है या एक मां जो गोद लेने का आदेश देती है, वह उस दिन से शुरू होने वाले बारह सप्ताह की अवधि के लिए मातृत्व लाभ के लिए पात्र होगी, जिस दिन बच्चा गोद लेने वाली मां या कमीशन देने वाली मां को दिया जाता है, जैसा भी लागू हो। धारा 5 की उपधारा (5) के अनुसार, यदि किसी महिला की नौकरी के लिए उसे घर से काम करने की आवश्यकता होती है।

मातृत्व लाभ का दावा करने की शर्तें– वह मातृत्व लाभ प्राप्त करने के लिए तभी पात्र होती है जब कोई महिला वास्तव में उस नियोक्ता के लिए काम करती है जिससे वह मातृत्व लाभ का दावा करती है, अपने अनुमानित प्रसव की तारीख से ठीक पहले के बारह महीनों में कम से कम अस्सी दिनों की अवधि के लिए।

मातृत्व लाभ का दावा करने के तरीके– मातृत्व लाभ के अधिकार का प्रयोग करने की इच्छा रखने वाली किसी भी महिला को अपने नियोक्ता को उस तरीके से और उस फॉर्म पर नोटिस प्रस्तुत करना होगा जो उस व्यवसाय द्वारा अपेक्षित है जिसमें वह कार्यरत है ताकि वह 1961 अधिनियम द्वारा प्रदान किए गए मातृत्व लाभ का दावा करने के योग्य हो सके। इस जानकारी को नोटिस में शामिल किया जाना चाहिए–

(1) मातृत्व लाभ और कोई भी अतिरिक्त निधि जिसकी वह इस अधिनियम के अनुसार हकदार हो सकती है।
(2) उस व्यक्ति का नाम जिसे ऐसे भुगतान प्राप्त होने चाहिए।
(3) एक बयान में कहा गया है कि वह मातृत्व लाभ प्राप्त करते समय कंपनी में काम नहीं करेंगी।
(4) वह दिन जब आधिकारिक तौर पर उनकी काम से अनुपस्थिति शुरू हुई।

महिला द्वारा अपनी गर्भावस्था को प्रमाणित करने वाले दस्तावेज प्रस्तुत करने के बाद, नियोक्ता को महिला को मातृत्व लाभ का अग्रिम भुगतान करना आवश्यक होता है।

यदि मातृत्व अवकाश की अवधि के दौरान महिला की मृत्यु हो जाती है तो क्या होगा?

मातृत्व लाभ जो किसी महिला पर लागू होता है, वह केवल उसकी मृत्यु की तिथि तक ही रहता है, यदि वह मातृत्व अवकाश की उपर्युक्त अवधि के भीतर मर जाती है। यदि माँ बच्चे को जन्म देने के तुरंत बाद मर जाती है, जिसके परिणामस्वरूप बच्चा जीवित रहता है, तो उसे पूरा मातृत्व लाभ देय होगा। यदि बच्चे की मृत्यु हो जाती है, जबकि माँ अभी भी इसके लिए पात्र है, तो नियोक्ता को बच्चे की मृत्यु की तिथि तक प्रभावी मातृत्व लाभ का भुगतान करना आवश्यक है। जब एक महिला की मृत्यु हो जाती है, तो ये भुगतान उस व्यक्ति को किया जाना चाहिए जिसे उसने अधिनियम की धारा 6 (1) के तहत दी गई अधिसूचना में निर्दिष्ट किया था, या यदि उसने किसी को नामित नहीं किया है, तो उसके कानूनी प्रतिनिधि को।

मातृत्व लाभ अधिनियम 1961 के अंतर्गत शिकायत दर्ज करना– यदि किसी महिला को मातृत्व लाभ या चिकित्सा लाभ से वंचित किया जाता है, उसे नौकरी से निकाल दिया जाता है, या मातृत्व अवकाश पर रहते हुए उसे निकाल दिया जाता है, तो उसके पास निर्णय के विरुद्ध अपील करने के लिए साठ दिन होते हैं। वह मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 द्वारा नामित निरीक्षक से संपर्क करके ऐसा कर सकती है। यदि वह निरीक्षक के अनुरोधों से असहमत होती है, तो उसके पास सुझाए गए विशेषज्ञ को प्रति–प्रस्ताव देने के लिए तीस दिन होते हैं। यदि वह निरीक्षक के अनुरोधों से असहमत होती है या यदि कोई अधिक महत्वपूर्ण कानूनी मुद्दा उठाया जाता है, तो वह एक वर्ष के भीतर मुकदमा भी दायर कर सकती है।

<u>प्रश्न न0 3–</u> मजदूरी क्या है? मजदूरी के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिए।

<u>उत्तर–</u> न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 की धारा 2(एच) के अनुसार मजदूरी शब्द का अर्थ धन के रूप में व्यक्त किया जा सकने वाला समस्त पारिश्रमिक है जो यदि रोजगार अनुबंध की व्यक्त या निहित शर्तों को पूरा किया गया हो तो किसी व्यक्ति को उसके रोजगार के संबंध में या ऐसे रोजगार में किए गए कार्य के लिए देय होगा और इसमें मकान किराया भत्ता शामिल है लेकिन इसमें शामिल नहीं है–

(1) का मूल्य –
(2) किसी भी घर की रहने की जगह, प्रकाश पानी की आपूर्ति, चिकित्सा देखभाल या
(3) किसी अन्य सुविधा या किसी सेवा को उपयुक्त सरकार के सामान्य या विशेष आदेश द्वारा बहिष्कृत किया गया;–
(4) नियोक्ता द्वारा किसी व्यक्ति निधि या भविष्य निधि या सामाजिक बीमा की किसी योजना के अंतर्गत दिया गया कोई अंशदान;
(5) कोई यात्रा भत्ता या किसी यात्रा रियायत का मूल्य;

(6) नियोजित व्यक्ति को उसके रोजगार की प्रकृति के कारण उस पर पड़ने वाले विशेष व्ययों को पूरा करने के लिए दी गई कोई राशिय या

(7) सेवामुक्ति पर देय कोई उपदान;

मजदूरी के प्रकार– वर्तमान में मजदूरी के सम्बन्ध में निम्न चार अवधारणाएँ प्रचलित हैं–

(1) न्यूनतम मजदूरी– न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 के तहत, वर्गीकरण कृषि और गैर–कृषि कार्य पर आधारित था। हालाँकि, मजदूरी संहिता के तहत, कौशल स्तर के आधार पर वर्गीकरण किया गया है, और रोजगार को अत्यधिक कुशल, अर्ध–कुशल और अकुशल में विभाजित किया गया है । कुछ रोजगारों में नियोक्ता द्वारा कर्मचारियों को भुगतान की जाने वाली न्यूनतम मजदूरी को निर्धारित और संशोधित करना। जनता के हित में सभी कर्मचारियों के लिए पर्याप्त न्यूनतम वेतन निर्धारित करना। रोजगार के प्रकार के अनुसार किसी कर्मचारी के दैनिक कार्य घंटे तय करना। श्रमिकों का शोषण रोकने के लिए। मजदूरी का भुगतान न किए जाने या कम भुगतान से संबंधित किसी भी मुद्दे को हल करना। निरीक्षकों की शक्तियों और कर्तव्यों को स्थापित करना और प्रदान करना। श्रम आयुक्तों और अन्य महत्वपूर्ण श्रम अधिकारियों की शक्तियों और कर्तव्यों को स्थापित करना और प्रदान करना। उपयुक्त सरकार को नियम बनाने की शक्तियां प्रदान करना। अधिनियम की धारा 2(डी) जीवन–यापन सूचकांक संख्या को एक सूचकांक संख्या के रूप में परिभाषित करती है, जिसे कर्मचारियों के संबंध में आधिकारिक राजपत्र में उपयुक्त सरकार द्वारा निर्धारित किया जाता है। अधिनियम के तहत, उपयुक्त सरकार अनुसूचित रोजगार का निर्धारण करती है, जिसके संबंध में वह नियोक्ता द्वारा कर्मचारियों को भुगतान की जाने वाली न्यूनतम मजदूरी को अधिसूचित करती है। न्यूनतम मजदूरी जीवन–यापन सूचकांक संख्या के आधार पर निर्धारित की जाती है। जीवन–यापन सूचकांक संख्या लगातार बदलते जीवन स्तर की लागत को दर्शाती है। अधिनियम की धारा 2(एच) मजदूरी की एक समावेशी परिभाषा प्रदान करती है, जिसमें वह सभी पारिश्रमिक शामिल हैं जिन्हें पैसे के रूप में व्यक्त किया जा सकता है जो नियोक्ता रोजगार के दौरान कर्मचारी को देता है। इसमें मकान किराया भत्ता भी शामिल है। हालांकि, इसमें कोई आवास, बिजली, पानी की आपूर्ति, चिकित्सा सेवा या कोई अन्य सुविधा शामिल नहीं है जिसे उपयुक्त सरकार उचित समझेय पेंशन फंड या भविष्य निधि में नियोक्ता का कोई योगदानय यात्रा भत्ताय भुगतान किया गया विशेष व्ययय और कर्मचारी की सेवामुक्ति पर देय कोई ग्रेच्युटी। अधिनियम की धारा 2(i) के अनुसार कर्मचारी वह व्यक्ति है जो किसी कुशल या अकुशल, मैनुअल या लिपिकीय कार्य को करने के लिए नियुक्त किया जाता है, जिसके लिए न्यूनतम मजदूरी दरें तय की गई हैं। यह अधिनियम के तहत एक महत्वपूर्ण परिभाषा है क्योंकि यह इसके आवेदन के दायरे को परिभाषित करती है। सभी नियोक्ता–कर्मचारी संबंध न्यूनतम मजदूरी अधिनियम द्वारा शासित नहीं होते हैं। इसके अलावा, सभी प्रकार के कर्मचारी उचित सरकार द्वारा निर्धारित न्यूनतम मजदूरी के लाभों का दावा करने के दायरे में नहीं आते हैं।

वर्कमैन रिप्रेजेंटेड बाय सेक्रेटरी बनाम रेप्टाकोस ब्रेट एंड कंपनी लिमिटेड एंड अन्य (1992) में , माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने 1957 के भारतीय श्रम सम्मेलन की त्रिपक्षीय समिति को ध्यान में रखा। समिति की रिपोर्ट में कहा गया है कि न्यूनतम मजदूरी नीति की संरचना निर्वाह स्तर से अधिक कुछ नहीं होनी चाहिए।

दिल्ली नगर निगम बनाम गणेश रजक (1995) मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि अधिनियम के तहत न्यूनतम मजदूरी की पात्रता, श्रमिक का विद्यमान अधिकार है और इसके लिए श्रम न्यायालय के अलावा किसी अन्य निर्णय की आवश्यकता नहीं है।

एनएम वाडिया चौरिटेबल अस्पताल एवं अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य (1986) इस मामले में , महाराष्ट्र राज्य ने अस्पताल कर्मचारियों को देय न्यूनतम वेतन में संशोधन के मामले पर सलाह देने के लिए एक समिति नियुक्त की। हालाँकि, सरकार ने अपनी रिपोर्ट में समिति द्वारा अनुशंसित वेतन दरों को नहीं अपनाया, बल्कि न्यूनतम वेतन की उच्च दर को अपनाया। याचिकाकर्ताओं ने इस आधार पर अधिसूचना को चुनौती दी कि सरकार ने इस पर कोई विचार नहीं किया।

न्यायालय ने माना कि विभिन्न इलाकों के लिए न्यूनतम मजदूरी की अलग–अलग दरें तय करना अधिनियम के तहत स्वीकार्य है और यह संविधान के किसी भी प्रावधान का उल्लंघन नहीं करता है।

भिक्षुसा यमसा क्षत्रिय बनाम संगमनेर अकोला तालुका बीड़ी कामगार यूनियन (1958) इस मामले में , न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 की वैधता को माननीय बॉम्बे उच्च न्यायालय के समक्ष फिर से चुनौती दी गई। बॉम्बे राज्य के कुछ जिलों में मजदूरी की न्यूनतम दरों की प्रयोज्यता पर अधिनियम की धारा 20 के तहत विभिन्न दावे थे। अन्य बातों के अलावा , नियोक्ताओं ने इस आधार पर अधिनियम की वैधता को चुनौती दी कि यह संविधान के अनुच्छेद 14 और अनुच्छेद 19(1)(जी) का उल्लंघन करता है और बॉम्बे राज्य ने मजदूरी की न्यूनतम दरें निर्धारित करने के लिए अपेक्षित प्रक्रिया का पालन नहीं किया है।

नियोक्ताओं की दलीलों को खारिज करते हुए न्यायालय ने माना कि याचिकाकर्ता यह साबित करने में विफल रहे कि न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण और संशोधन करते समय बॉम्बे राज्य द्वारा अपेक्षित प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया था और अधिनियम के प्रावधान संविधान के अनुच्छेद 14 या अनुच्छेद 19(1)(जी) का उल्लंघन करते हैं।

(2) उचित मजदूरी– उचित मजदूरी का मतलब है जो न्यूनतम मजदूरी से कुछ ज्यादा है। यह न्यूनतम मजदूरी और जीवनयापन मजदूरी के बीच का मतलब है। इसलिए, उचित मजदूरी की निचली सीमा निश्चित रूप से न्यूनतम मजदूरी होनी चाहिए जबकि ऊपरी सीमा उचित मजदूरी है जो उद्योग की भुगतान करने की क्षमता है और निश्चित

रूप से अन्य व्यवसायों या ट्रेडों में समान कार्य के औसत भुगतान के साथ तुलना की जाती है जिसके लिए समान क्षमता की आवश्यकता होती है। मूल रूप से, यह आर्थिक स्थिति और इसकी भविष्य की संभावनाएं हैं जिन पर उचित मजदूरी निर्भर करती है। इसके अलावा, कुछ कारक हैं जैसे न्यूनतम मजदूरी, उद्योग की भुगतान करने की क्षमता, राष्ट्रीय आय का स्तर और उसका वितरण, श्रम की उत्पादकता, देश की अर्थव्यवस्था में उद्योग का स्थान और समान या पड़ोसी इलाकों में समान या समान व्यवसायों में प्रचलित मजदूरी दरें जिन पर उचित मजदूरी निर्भर करती है। उचित मजदूरी से तात्पर्य उस पारिश्रमिक से है जो श्रमिकों को समान दक्षता, कठिनाई और कष्ट की आवश्यकता वाले कार्यों के लिए दिया जाता है।

शिव फाइन आर्टस लीथो वर्क्स बनाम औद्योगिक न्यायालय (1978) एलएल.जे. 532 एस.सी. के विनिश्चय में उच्च न्यायालय ने उचित मजदूरी के सम्बन्ध में निम्न अवधारणा प्रस्तुत की है–''उचित मजदूरी जीवन–निर्वाह मजदूरी तथा न्यूनतम मजदूरी के बीच की मजदूरी ळें मजदूरी उचित होनी चाहिए।

(3) जीवन–निर्वाह मजदूरी– ंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO) जीवन निर्वाह मजदूरी को इस प्रकार परिभाषित करता हैवह न्यूनतम आय जो किसी कर्मचारी को अपने और अपने परिवार के लिए एक सभ्य जीवन स्तर बनाए रखने के लिए आवश्यक हैयह आमतौर पर न्यूनतम वेतन से अधिक होता है, जो कि नियोक्ता द्वारा दिया जाने वाला सबसे कम कानूनी प्रति घंटा वेतन है। जीवन निर्वाह वेतन की गणना में निम्नलिखित कारकों पर विचार किया जाता है;
किराया या बंधक, किराने का सामान, उपयोगिताएँ, परिवहन, बच्चों की देखभाल, स्वास्थ्य, शिक्षा, मनोरंजन और सामाजिक आवश्यकताएँ। भारत के 1950 के संविधान के अनुच्छेद 43 में कहा गया है कि राज्य को यह सुनिश्चित करने के लिए काम करना चाहिए कि सभी श्रमिकों को जीवन–यापन के लिए उचित वेतन मिले, साथ ही अन्य शर्तें भी हों जो उन्हें एक सभ्य जीवन स्तर का आनंद लेने की अनुमति दें। भारत 2025 तक अपनी न्यूनतम मजदूरी प्रणाली को जीवन–यापन के लिए उचित वेतन से बदलने की योजना बना रहा है, जिसका लक्ष्य गरीबी को कम करना, श्रमिकों की भलाई में सुधार करना और श्रमिकों की चिंताओं को दूर करना है।

(4) निर्वाह मजदूरी– निर्वाह मजदूरी को उस मजदूरी के रूप में परिभाषित किया जाता है जो कर्मचारी को कुछ सुविधाएँ और कुछ बुनियादी जरूरतें प्रदान करने के लिए सुसंगत है। इसलिए, इसका मतलब है कि वह मजदूरी स्तर जो बुनियादी जरूरतों और ऐसी बारीकियों को प्रदान करने के लिए संतोषजनक है जो कर्मचारी के साथ–साथ उसके परिवार की बेहतरी के लिए उसकी सामाजिक स्थिति के अनुसार आवश्यक हैं।
इस प्रकार, निर्वाह आयु को इस प्रकार परिभाषित किया गया है–
निर्वाह मजदूरी से पुरुष कमाने वाले को अपने और अपने परिवार को न केवल भोजन, कपड़े और आश्रय की बुनियादी जरूरतें प्रदान करने में सक्षम होना चाहिए, बल्कि बच्चों की शिक्षा, अस्वस्थता से सुरक्षा, आवश्यक सामाजिक जरूरतों की पूर्ति और बुढ़ापे के खिलाफ बीमा के उपायों सहित मितव्ययी आराम का उपाय भी प्रदान करना चाहिए। भारत के संविधान के अनुच्छेद 43 में कहा गया है कि राज्य उपयुक्त कानून या आर्थिक संगठन या किसी अन्य तरीके से सभी श्रमिकों, कृषि, औद्योगिक या अन्यथा काम, एक निर्वाह मजदूरी, जीवन के सभ्य मानक और अवकाश और सामाजिक और सांस्कृतिक अवसरों का पूर्ण आनंद सुनिश्चित करने वाली कार्य स्थितियों को सुरक्षित करने का प्रयास करेगा। इसलिए, भारत सरकार ने निर्वाह मजदूरी सुनिश्चित करने के लिए राज्य नीति के सिद्धांतों में से एक के रूप में अपनाया है। निर्वाह मजदूरी वह मजदूरी है जो कारीगर के कौशल के अनुसार कामगार को भोजन, आश्रय, कपड़े, मितव्ययी आराम, बुरे दिनों के लिए प्रावधान आदि सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त है, अगर वह एक कारीगर है। इस प्रकार, निर्वाह मजदूरी का मतलब केवल कर्मचारी के जीवन की बुनियादी जरूरतों जैसे भोजन, आश्रय और कपड़े को पूरा करना नहीं है, बल्कि इसमें वर्तमान मानव मानकों द्वारा अनुमानित कुछ आराम, अवकाश और सुख–सुविधाएँ जैसे स्वास्थ्य, बच्चों की शिक्षा, यात्रा, बुढ़ापा, मनोरंजन और सामाजिक जरूरतें आदि भी शामिल हैं।

<u>प्रश्न न0 4–</u> न्यूनतम मजदूरी अधिनियम 1948 के उद्देश्य एवं क्षेत्र विस्तार समझाइए।

<u>उत्तर–</u> न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 भारत का एक श्रम कानून है. यह अधिनियम, रोजगार के संगठित और असंगठित दोनों क्षेत्रों में श्रमिकों की अलग–अलग श्रेणियों के लिए न्यूनतम मजदूरी दर तय करता है. इस अधिनियम का मकसद, श्रमिकों को उचित वेतन सुनिश्चित करना और नियोक्ताओं द्वारा न्यूनतम वेतन का पालन करवाना है. यह अधिनियम, केंद्र और राज्य सरकार दोनों को मजदूरी तय करने का अधिकार देता है। इस अधिनियम के मुताबिक, किसी संगठन को किसी खास कर्मचारी को किसी खास समय पर किसी खास काम के लिए एक न्यूनतम राशि देनी होती है. यह राशि, किसी अनुबंध या सामूहिक समझौते से कम नहीं हो सकती. न्यूनतम मजदूरी, चार सदस्यों वाले परिवार की बुनियादी जरूरतों को पूरा करने के लिए काफी होनी चाहिए. इसके लिए, समितियां समय–समय पर उद्योग की क्षमता की समीक्षा करती हैं और न्यूनतम मजदूरी तय करने के लिए बाध्य होती हैं। न्यूनतम मजदूरी अधिनियम को साल 1948 में केन्द्रीय विधानसभा ने पारित किया था और यह 15 मार्च, 1948 को लागू हुआ था. इस अधिनियम के लागू होने के बाद, ब्लू–कॉलर लोगों में समानता और न्याय की भावना आई।

न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 के उद्देश्य– न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं–
(1)कुछ रोजगारों में नियोक्ता द्वारा कर्मचारियों को भुगतान की जाने वाली न्यूनतम मजदूरी को निर्धारित और संशोधित करना;

(2) जनता के हित में सभी कर्मचारियों के लिए पर्याप्त न्यूनतम वेतन निर्धारित करना;
(3) रोजगार के प्रकार के अनुसार किसी कर्मचारी के दैनिक कार्य घंटे तय करना;
(4) श्रमिकों का शोषण रोकने के लिए;
(5) मजदूरी का भुगतान न किए जाने या कम भुगतान से संबंधित किसी भी मुद्दे को हल करना;
(6) निरीक्षकों की शक्तियों और कर्तव्यों को स्थापित करना और प्रदान करना;
(7) श्रम आयुक्तों और अन्य महत्वपूर्ण श्रम अधिकारियों की शक्तियों और कर्तव्यों को स्थापित करना और प्रदान करना;
(8) उपयुक्त सरकार को नियम बनाने की शक्तियां प्रदान करना।
अधिनियम की धारा 3 में समुचित सरकार द्वारा न्यूनतम मजदूरी की दरें तय करने का प्रावधान है। उप–धारा (1) में प्रावधान है कि समुचित सरकार अधिनियम की अनुसूची के भाग 1 या भाग 2 (अनुसूचित रोजगार) के अंतर्गत उल्लिखित रोजगार में कर्मचारियों को देय मजदूरी की न्यूनतम दर तय करेगी और पांच वर्ष की अवधि के लिए न्यूनतम मजदूरी की समीक्षा करेगी। उप–धारा (1ए) में प्रावधान है कि समुचित सरकार किसी भी अनुसूचित रोजगार के लिए न्यूनतम मजदूरी तय करने से परहेज कर सकती है, जहां पूरे राज्य में कर्मचारियों की संख्या एक हजार से कम है, जब तक कि यह संख्या एक हजार से कम न रह जाए।
उप–धारा (2) में प्रावधान है कि उपयुक्त सरकार निम्नलिखित निर्धारित कर सकती है–
(1) यूनतम समय दर;
(2) न्यूनतम टुकड़ा दर;
(3) एक गारंटीकृत समय दर; और
(4) ओवरटाइम दर.
उप–धारा (3) उपयुक्त सरकार को निम्नलिखित के लिए न्यूनतम मजदूरी की अलग–अलग दरें तय करने की शक्ति प्रदान करती है–
(1) विभिन्न अनुसूचित रोजगार;
(2) एक ही अनुसूचित रोजगार में विभिन्न प्रकार के कार्यय
(3) वयस्क, किशोर, बच्चे और प्रशिक्षु; और

विभिन्न इलाके

ये न्यूनतम मजदूरी प्रति घंटे, प्रति दिन, प्रति माह या उपयुक्त सरकार द्वारा निर्धारित किसी अन्य समयावधि के आधार पर तय की जा सकती है।
अधिनियम की धारा 4 में न्यूनतम मजदूरी दर का प्रावधान है। मजदूरी की न्यूनतम दर में निम्न शामिल होंगे–
"(i) मजदूरी की एक मूल दर और एक विशेष भत्ता, जिसे ऐसे अंतरालों पर और ऐसी रीति से समायोजित किया जाएगा, जैसा कि समुचित सरकार निर्देश दे, ताकि ऐसे श्रमिकों पर लागू जीवन–यापन सूचकांक संख्या में परिवर्तन के साथ यथासंभव निकटता से तालमेल बिठाया जा सके (जिसे इसके पश्चात "जीवन–यापन भत्ता" कहा जाएगा);या
(ii) जीवन निर्वाह भत्ते सहित या उसके बिना मजदूरी की मूल दर, तथा रियायती दरों पर आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति के संबंध में रियायतों का नकद मूल्य, जहां ऐसा प्राधिकृत हो; या
(iii) एक सर्व–समावेशी दर जिसमें मूल दर, जीवन–यापन भत्ता और रियायतों का नकद मूल्य, यदि कोई हो, शामिल हो।"
इसके अलावा, अधिनियम की धारा 5 में यह प्रावधान है कि उपयुक्त सरकार समितियों और उप–समितियों की नियुक्ति करके या ऐसे प्रस्तावों से प्रभावित होने वाले लोगों के लिए आधिकारिक राजपत्र में अपना प्रस्ताव प्रकाशित करके न्यूनतम मजदूरी तय या संशोधित कर सकती है।
एयरफ्रेट लिमिटेड बनाम कर्नाटक राज्य एवं अन्य (1999) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भी इसी तरह का दृष्टिकोण अपनाया है। न्यायालय ने माना कि ऐसे मामलों में जहां न्यूनतम मजदूरी जीवन–यापन सूचकांक की लागत से जुड़ी हुई है, महंगाई भत्ते के आधार पर भुगतान की गई राशि को एक स्वतंत्र घटक के रूप में नहीं लिया जाना चाहिए, बल्कि इसे न्यूनतम मजदूरी का अभिन्न अंग माना जाना चाहिए।

न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 के अंतर्गत सलाहकार बोर्ड

अधिनियम की धारा 7 सलाहकार बोर्ड की स्थापना करती है। उपयुक्त सरकार द्वारा नियुक्त सलाहकार बोर्ड का दायरा अधिनियम की धारा 5 के तहत स्थापित समितियों और उप–समितियों का समन्वय करना और अनुसूचित रोजगार के लिए न्यूनतम मजदूरी तय करने और संशोधित करने पर उपयुक्त सरकार को सलाह देना है। अधिनियम की धारा 8 के तहत एक केंद्रीय सलाहकार बोर्ड (सीएबी) की स्थापना की जाएगी। केंद्र सरकार सीएबी की स्थापना करेगी और इसके सदस्यों को नियुक्त करेगी। सदस्यों में केंद्र सरकार द्वारा नामित स्वतंत्र सदस्यों के साथ–साथ नियोक्ता और कर्मचारी दोनों के प्रतिनिधियों की समान संख्या होगी। सीएबी का अध्यक्ष एक स्वतंत्र सदस्य होगा। सीएबी के कार्यक्षेत्र का उद्देश्य अधिनियम के तहत सलाहकार बोर्ड और अन्य मामलों के साथ समन्वय सुनिश्चित करना है।

न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 के तहत मजदूरी के भुगतान का तरीका

अधिनियम की धारा 11 के तहत सभी मजदूरी का भुगतान केवल नकद में किया जाएगा। हालांकि, जहां मजदूरी का भुगतान पूरी तरह या आंशिक रूप से वस्तु के रूप में करने की प्रथा रही है, वहां उपयुक्त सरकार से प्राधिकरण आवश्यक है। इसमें आवश्यकतानुसार आवश्यक वस्तुओं पर रियायतें शामिल हैं।

अधिनियम की धारा 12 में कर्मचारियों को न्यूनतम मजदूरी का भुगतान करने का तरीका बताया गया है। प्रावधान में कहा गया है कि नियोक्ता अपने अधीन काम करने वाले प्रत्येक कर्मचारी को निर्धारित समय अवधि के भीतर न्यूनतम मजदूरी का भुगतान करेगा।

न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 के तहत सामान्य कार्य दिवस के लिए घंटे तय करना

अधिनियम की धारा 13 में प्रावधान है कि उपयुक्त सरकार निम्नलिखित तरीके से कार्य घंटे तय कर सकती है–

(1) एक या अधिक निर्दिष्ट अंतरालों सहित सामान्य दिन के कार्य घंटे निश्चित करें।

(2) सभी कर्मचारियों या कर्मचारियों के एक वर्ग को प्रत्येक सात दिन की अवधि में एक दिन का विश्राम प्रदान किया जाएगा तथा विश्राम के दिन कर्मचारियों को पर्याप्त पारिश्रमिक प्रदान किया जाएगा।

(3) कर्मचारियों को विश्राम के दिन भुगतान उपलब्ध कराया जाएगा, जो ओवरटाइम दर से कम नहीं होगा।

(4) अधिनियम की धारा 14 में प्रावधान है कि जहां कोई कर्मचारी सामान्य कार्य दिवस में निर्दिष्ट घंटों से अधिक काम करता है, तो वह अपने सामान्य कार्य घंटों के बाद प्रत्येक घंटे के लिए अधिनियम के तहत निर्धारित दर पर ओवरटाइम मजदूरी प्राप्त करने का हकदार होगा।

(5) यदि कोई कर्मचारी सामान्य कार्य दिवस में निर्धारित घंटों से कम काम करता है, तो भी उसे अधिनियम के तहत निर्धारित न्यूनतम मजदूरी मिलेगी। हालांकि, यह प्रावधान तभी लागू होगा जब काम के कम घंटे कर्मचारी की अनिच्छा के कारण न हों। यह प्रावधान अधिनियम की धारा 15 के तहत दिया गया है ।

प्रश्न न0 5– कारखाना अधिनियम, 1948 की प्रकृति, उद्देश्य एवं महत्व का वर्णन कीजिए।

उत्तर– ' उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में भारत में बड़े पैमाने पर कारखानेध्उद्योग का उदय हुआ। बंबई कपास विभाग के मुख्य निरीक्षक मेजर मूर ने 1872–73 में अपनी रिपोर्ट में सबसे पहले कारखानों में काम करने की स्थिति को विनियमित करने के लिए कानून के प्रावधान का सवाल उठायाय पहला कारखाना अधिनियम 1881 में लागू किया गया था। तब से इस अधिनियम में कई बार संशोधन किया गया है। कारखानों के संबंध में सभी पिछले कानूनों को प्रतिस्थापित करते हुए कारखाना अधिनियम 1934 पारित किया गया था। यह अधिनियम रॉयल कमीशन ऑन लेबर की सिफारिशों के आलोक में तैयार किया गया था। इस अधिनियम में समय–समय पर उचित संशोधन भी किए गए हैं। कारखाना अधिनियम, 1934 के कामकाज के अनुभव ने कई दोषों और कमजोरियों को उजागर किया था, जिन्होंने अधिनियम के प्रभावी प्रशासन में बाधा डाली थी, और बड़ी संख्या में छोटे औद्योगिक प्रतिष्ठानों के लिए इसके सुरक्षात्मक प्रावधानों को विस्तारित करने के लिए अधिनियम के बड़े पैमाने पर संशोधन की आवश्यकता महसूस की गई थी। अतःकारखानों में श्रम से संबंधित कानून को समेकित और संशोधित करने वाला कारखाना अधिनियम, 1948 संविधान सभा द्वारा 28 अगस्त, 1948 को पारित किया गया था। इस अधिनियम को 23 सितंबर 1948 को भारत के गवर्नर जनरल की स्वीकृति प्राप्त हुई और यह 1 अप्रैल, 1949 को लागू हुआ।

कारखानों और उद्योगों का विकास–

फैक्ट्री एक्ट का इतिहास एक सदी से भी ज्यादा पुराना है। यूनाइटेड किंगडम में शुरू होने के एक सदी बाद भारत में आधुनिक औद्योगीकरण की शुरुआत हुई। 1854 में बॉम्बे में पहली सूती कपड़ा फैक्ट्री स्थापित की गई थी। 1870 तक, बॉम्बे, नागपुर, कानपुर और मद्रास में बड़ी संख्या में उद्योग स्थापित हो चुके थे। बिहार में, 1873 में पहला लोहा और इस्पात कारखाना स्थापित किया गया था। 1855 के आसपास रिशरा में जूट कताई मिलों की स्थापना की गई थी। 1881 में, बंगाल में 5000 पावरलूम चल रहे थे। 1870 के दशक के दौरान, हुगली में बल्ली पेपर मिल बनाई गई और कानपुर में कई अन्य टैनिंग और चमड़े की फैक्ट्रियाँ स्थापित की गईं, जिसके परिणामस्वरूप भारत में फैक्ट्री प्रतिष्ठानों का विकास हुआ। महिलाओं और बच्चों का कम उम्र में काम करना, काम के घंटों की लंबाई और खतरनाक और अस्वास्थ्यकर काम करने की स्थिति ने भारत में समस्याएँ और संकट पैदा किए और इन परिदृश्यों के कारण, सभी कारखानों और उद्योगों के लिए कानून स्थापित किए गए। कामकाजी परिस्थितियों, खास तौर पर महिलाओं और बच्चों के लिए, से निपटने के लिए सुरक्षात्मक श्रम कानून की आवश्यकता को 1850 में ही पहचान लिया गया था, लेकिन ब्रिटिश सरकार ने बहुत कम किया। जूट मिल कर्मचारियों के कल्याण को बढ़ावा देने के लिए शशिपाद बनर्जी ने 1878 में बड़ा बाजार संगठन की स्थापना की थी। 1877 में नागपुर एम्प्रेस मिल में हड़तालें हुईं, जिनका रिकॉर्ड दर्ज है। 1760 और 1820 के बीच इंग्लैंड में हुई औद्योगिक क्रांति के दौरान उत्पादन के तरीके बदल गए। कई यांत्रिक नवाचारों का विकास शुरू हुआ, जैसे कि भाप इंजन, जिसने मनुष्यों को शक्तिशाली मशीनों को चलाने की क्षमता दी।

कारखाना अधिनियम, 1948 का उद्देश्य–

भारतीय कारखाना अधिनियम, 1948 के मुख्य उद्देश्य कारखानों में काम करने की स्थिति को विनियमित करना, स्वास्थ्य, सुरक्षा कल्याण और वार्षिक छुट्टी को विनियमित करना और कारखानों में काम करने वाले युवा व्यक्तियों, महिलाओं और बच्चों के संबंध में विशेष प्रावधान करना है।

1. कार्य के घंटे– वयस्कों के कार्य के घंटों के प्रावधान के अनुसार, किसी भी वयस्क श्रमिक को एक सप्ताह में 48 घंटे से अधिक कारखाने में काम करने की आवश्यकता नहीं होगी या अनुमति नहीं होगी। एक साप्ताहिक अवकाश होना चाहिए।

2. स्वास्थ्य– श्रमिकों के स्वास्थ्य की रक्षा के लिए, अधिनियम यह निर्धारित करता है कि प्रत्येक कारखाने को साफ रखा जाएगा और इस संबंध में सभी आवश्यक सावधानियां बरती जाएंगी। कारखानों में जल निकास की उचित व्यवस्था, पर्याप्त प्रकाश, वायु–संचार, तापमान आदि। होना चाहिए। पीने के पानी की पर्याप्त व्यवस्था होनी चाहिए। सुविधाजनक स्थानों पर पर्याप्त शौचालय और मूत्रालय उपलब्ध होने चाहिए। ये श्रमिकों के लिए आसानी से सुलभ होने चाहिए और उन्हें साफ रखा जाना चाहिए।

3. सुरक्षा– श्रमिकों को सुरक्षा प्रदान करने के लिए, अधिनियम में प्रावधान है कि मशीनों को बाड़ से घेरा जाना चाहिए, किसी भी खतरनाक मशीन पर कोई भी युवा व्यक्ति काम नहीं करेगा, सीमित स्थानों में पर्याप्त आकार के मैनहोल का प्रावधान होना चाहिए ताकि आपात स्थिति में श्रमिक बच सकें।

4. कल्याण– श्रमिकों के कल्याण के लिए, अधिनियम में प्रावधान है कि प्रत्येक कारखाने में श्रमिकों के उपयोग के लिए धुलाई की पर्याप्त और उपयुक्त सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिए और उनका रखरखाव किया जाना चाहिए। कपड़ों को रखने और सुखाने की सुविधा, बैठने की सुविधा, प्राथमिक उपचार के उपकरण, आश्रय, विश्राम कक्ष और भोजन कक्ष, क्रेच आदि होने चाहिए।

5. दंड– कारखाना अधिनियम, 1948 के प्रावधानों या अधिनियम के तहत बनाए गए किसी भी नियम या अधिनियम के तहत लिखित रूप में दिए गए किसी भी आदेश का उल्लंघन किया जाता है, तो इसे अपराध माना जाता है। निम्नलिखित दंड लगाए जा सकते हैं:–

(क) एक वर्ष तक की कैदय

(ख) एक लाख रुपये तक का जुर्मानाय या

(ग) जुर्माना और कारावास दोनों।

यदि कोई कर्मचारी श्रमिकों के कल्याण, सुरक्षा और स्वास्थ्य से संबंधित या अपने कर्तव्यों के निर्वहन से संबंधित किसी उपकरण का दुरुपयोग करता है, तो उस पर 500 रुपये का जुर्माना लगाया जा सकता है।

कारखाना अधिनियम, 1948 की धारा 92 – इस अधिनियम में अन्यथा स्पष्ट रूप से प्रदान की गई है और धारा 93 के प्रावधानों के अधीन रहते हुए, यदि किसी कारखाने में, या उसके संबंध में इस अधिनियम के प्रावधानों या इसके अधीन बनाए गए किसी नियम या इसके अधीन दिए गए किसी लिखित आदेश का कोई उल्लंघन होता है, तो कारखाने का अधिष्ठाता या प्रबंधक प्रत्येक अपराध का दोषी होगा और दो वर्ष तक की अवधि के कारावास या एक लाख रुपये तक के जुर्माने या दोनों से दंडनीय होगा, और यदि उल्लंघन दोषसिद्धि के बाद जारी रहता है, तो अतिरिक्त जुर्माने से, जो उल्लंघन जारी रहने वाले प्रत्येक दिन के लिए एक हजार रुपये तक हो सकता है।

बशर्ते कि जहां अध्याय IV या उसके अधीन बनाए गए किसी नियम या धारा 87 के अधीन किसी प्रावधान के उल्लंघन के परिणामस्वरूप मृत्यु या गंभीर शारीरिक चोट का कारण बनने वाली दुर्घटना हुई है, जुर्माना मृत्यु का कारण बनने वाली दुर्घटना के मामले में पच्चीस हजार रुपये से कम नहीं होगा, और गंभीर शारीरिक चोट का कारण बनने वाली दुर्घटना के मामले में पांच हजार रुपये से कम नहीं होगा।

स्पष्टीकरण – इस धारा में और धारा 94 में ष्गंभीर शारीरिक चोटष् का अर्थ है ऐसी चोट जिसमें किसी अंग के उपयोग की स्थायी हानि या स्थायी चोट या दृष्टि या श्रवण की स्थायी हानि या चोट या किसी हड्डी का फ्रैक्चर शामिल है या होने की पूरी संभावना है, लेकिन इसमें हाथ या पैर की हड्डी या जोड़ (एक से अधिक हड्डी या जोड़ का फ्रैक्चर नहीं) और पैर की अंगुलियों का फ्रैक्चर शामिल नहीं है।

जनरल मैनेजर, व्हील एंड ए.पी., बैंगलोर बनाम कर्नाटक राज्य (1996)। इस मामले में यह माना गया कि मुकदमा चलाने के लिए मंजूरी प्राप्त करने की आवश्यकता अनिवार्य है और मंजूरी के अभाव में अपराध का संज्ञान लेने की अनुमति नहीं दी जा सकती और इसे रद्द किया जाना चाहिए।

प्रांतीय सरकार बनाम गणपत, एआईआर १९४३ नाग २४३. इस मामले में यह माना गया कि जहां कारखाने का अधिभोगी या प्रबंधक अधिनियम की धारा ६२ के तहत अपराध स्वीकार करता है, लेकिन कारखाने के क्लर्क पर वास्तविक अपराधी होने का आरोप लगाता है, निर्दोषता साबित करने का भार ऐसे अधिभोगी या प्रबंधक पर है, जैसा भी मामला हो।

कारखाना अधिनियम, 1948 की मुख्य विशेषताएं–1948 अधिनियम की महत्वपूर्ण विशेषताएं इस प्रकार हैं–

(1) कारखाना (संशोधन) अधिनियम, 1976 द्वारा 'कारखाना' शब्द का विस्तार किया गया है, ताकि यह निर्धारित करते समय कि किसी कारखाने में अधिकतम 10 या 20 कर्मचारी हैं, इसमें ठेका श्रमिक को भी शामिल किया जा सके।

(2) इस अधिनियम ने कार्यस्थलों पर बच्चों के काम करने की न्यूनतम आयु 12 वर्ष से बढ़ाकर 14 वर्ष कर दी तथा उनके दैनिक कार्य घंटे 5 से घटाकर साढ़े 4 घंटे कर दिए।

(3) यह अधिनियम महिलाओं और बच्चों को शाम 7 बजे से सुबह 6 बजे तक कारखानों में काम करने से रोकता है अधिनियम द्वारा मौसमी और गैर–मौसमी कारखाने के बीच का अंतर समाप्त कर दिया गया है।

(4) इस अधिनियम में कारखाना पंजीकरण और लाइसेंसिंग का प्रावधान है।

(5) राज्य सरकार को यह सुनिश्चित करना होगा कि सभी फैक्ट्रियां पंजीकृत हों तथा उनके पास वैध लाइसेंस हों, जिनका समय–समय पर नवीनीकरण किया जाता रहे।
(6) यह अधिनियम राज्य सरकारों को कर्मचारियों के लाभ के लिए प्रबंधन और कर्मचारी संघ की सहायता से नियम और विनियम बनाने का अधिकार देता है।
(7) राज्य सरकार को किसी भी प्रतिष्ठान पर अधिनियम की आवश्यकताओं को लागू करने का अधिकार है, चाहे वहां कर्मचारियों की संख्या कितनी भी हो और चाहे वह प्रतिष्ठान विनिर्माण कार्यों में संलग्न हो या नहीं।
रवींद्र अग्रवाल बनाम झारखंड राज्य (2010) में , झारखंड उच्च न्यायालय ने माना कि कारखाना अधिनियम, विशेष कानून भारतीय दंड संहिता पर प्रबल होगा।
प्रश्न न0 6– कर्मचारी राज्य बीमा न्यायालय के गठन, कार्य तथा क्षेत्राधिकार की विवेचना कीजिए।
उत्तर– कर्मचारी राज्य बीमा निगम की स्थापना– ईएसआई अधिनियम धारा 3 के तहत स्थापित कर्मचारी राज्य बीमा निगम के माध्यम से अपना कार्य करता है, जो सामाजिक सुरक्षा बनाए रखने के लिए बनाया गया निकाय है। इसकी स्थापना 24 फरवरी, 1952 को हुई थी। निगम का काम चिकित्सा आपात स्थिति के मामले में कर्मचारियों को राहत प्रदान करना है।
निगम का गठन
ईएसआईसी की संरचना धारा 4 में परिभाषित की गई है , और यह इस प्रकार है–
(1) महानिदेशक.
(2)अध्यक्ष, केन्द्र सरकार द्वारा नियुक्त।
(3) केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त उपाध्यक्ष।
(4) केन्द्र सरकार द्वारा नामित 5 से अधिक व्यक्ति नहीं।
(5) प्रत्येक राज्य का प्रतिनिधित्व करने के लिए एक व्यक्ति।
(6) संघ राज्य क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करने वाला 1 व्यक्ति।
(7) नियोक्ताओं का प्रतिनिधित्व करने वाले 10 व्यक्ति।
(8) कर्मचारियों का प्रतिनिधित्व करने वाले 10 व्यक्ति।
(9) चिकित्सा पेशे का प्रतिनिधित्व करने वाले 2 व्यक्ति।
(10) संसद सदस्य (2: लोकसभा और 1: राज्यसभा)।
निगम के सदस्यों का कार्यकाल
धारा 5 के माध्यम से , निम्नलिखित सदस्यों को 4 वर्ष की अवधि तक के लिए नियुक्त किया जाता है–
(1) महानिदेशक।
(2) अध्यक्ष महोदय।
(3) उपाध्यक्ष।
(4) केन्द्र सरकार द्वारा नामित 5 लोग।
(5) प्रत्येक राज्य का प्रतिनिधित्व करने वाले सदस्य।
(6) प्रत्येक संघ राज्य क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करने वाले सदस्य।
कर्मचारी बीमा न्यायालय की शक्ति–कर्मचारी बीमा न्यायालय, सिविल न्यायालय के समान शक्तियों के साथ कार्य करेगा, जिसमें ईएसआई अधिनियम के प्रावधानों को लागू करने के लिए, वह गवाहों की उपस्थिति सुनिश्चित कर सकता है, दस्तावेज और भौतिक साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए बाध्य कर सकता है, शपथ दिला सकता है और साक्ष्य रिकॉर्ड कर सकता है। किसी कार्यवाही से पहले होने वाले सभी खर्च न्यायालय के विवेक और दायित्व के अधीन होते हैं।
अधिकार–(1) कॉर्पोरेशन अपनी बैठकें बला सकता है।
(2) फंड के प्रशासन का अधिकार कॉर्पोरेशन को प्राप्त है।
(3) कार्पोरेशन ग्रान्ट्स–दान और उपहार केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों से ग्रहण कर सकता है।
(4) स्थायी समिति द्वारा फंड के ऑपरेशन के लिये नियुक्ति के लिए अनुमोदन देने का अधिकार कॉर्पोरेशन को प्राप्त है।
(5) सम्पत्ति रखने का अधिकार है।
(6) कॉर्पोरेशन धारा 29(3) के अन्तर्गत कर्ज भी ले सकता है।
(7) कॉर्पोरेशन अपने स्टाफ या उनके किसी वर्ग के लिये फंड की व्यवस्था करने में सक्षम है।
(8) स्थापना के पूर्व अर्जित सम्पूर्ण सम्पति कॉर्पोरेशन में निहित होगी।
(9) सभी किये गये अंशदान कॉर्पोरेशन के पास जमा होगें।
(10) अंशदानों के अदाएगी की दर निश्चित करने का अधिकार।
(11) नियोजकों द्वारा रिटर्न प्राप्त करने का अधिकार और उसके प्रारूप आदि से सम्बन्ध में निर्देश देने का अधिकार।
अंशदान– इस अधिनियम के द्वारा देय अंशदान जो कि एक कर्मचारी के सम्बन्ध में है वह कर्मचारी के अंशदान के रूप में विदित होगा तथा नियोजक द्वारा देय अंशदान नियोजक का अंश कहलायेगा। उपर्युक्त दोनों प्रकार के अंशदानों को धारा 39 के तहत अंशदान कहा जायेगा।

अंशदान प्रथम अनुसूची में निर्धारित दर द्वारा भुगतान किया जायगा और ऐसे मामलों में जहाँ इस अधिनियम के उपबन्ध में किसी कार्मचारी या कर्मचारियों के किसी कर्मचारियों के किसी वर्ग पर जो किसी कारखाने का व्यवस्थापन अथवा किसी श्रेणी के कारखाने या व्यवस्थापन में काम करते है। इस रूप मे लागू है कि वे इस अधिनियम के अधीन कुछ लाभों से अपवर्जित है, तो उन्हें उस दर से अंशदान देना होगा जैसा निगम इसके प्रति निर्धारित करे। एक सप्ताह के सम्बन्ध में देय सभी भुगतान सप्ताह के अन्तिम दिवस पर देय होगें और जहाँ एक कर्मचारी सप्ताह के किसी भाग के लिए नियुक्त किया गया है अथवा एक ही सप्ताह के अन्दर वह दो या अधिक नियोजकों के यहाँ कार्य करता रहा है तो अंशदान उन दोनों को देय होगा जैसा कि विनियम में निर्धारित किया गया है।

मुख्य नियोजक प्रत्येक नियोजित के सम्बन्ध में चाहे वह सीधे उसके द्वारा नियुक्त हो अथवा किसी सक्षम नियोक्ता द्वारा या उसके माध्यम से नियुक्त हो, नियोजक तथा नियोजित दोनों का अंशदान भुगतान करेगा।

अंशदान भुगतान करने के सम्बन्ध में सामान्य उपबन्ध–(1) किसी नियोजित द्वारा या उसकी ओर से नियोजित का अंशदान देय न होगा।

(2) अंशदान (नियोजक और नियोजित दोनों का अंशदान) मुख्य नियोजक द्वारा प्रत्येक सप्ताह के लिए देय होगा जिसके पूर्ण या आंशिक भाग के लिये नियोजित को मजदूरी देय है तथा अन्य प्रकार से नही।

(3) जहाँ नियोजित को मजदूरी सप्ताह के किसी भाग के लिये देय है, तो नियोजक को नियोजक व नियोजित दोनों का सप्ताह का पूर्ण अंशदान देगा होगा किन्तु वह नियोजक का अंशदान नियोजित की मजदूरी से काटने का हकदार होगा।

अंशदान भुगतान करने की रीति– इस अधिनियम के उपबन्धों के प्रतिबन्ध के अन्तर्गत, निगम इस अधिनियम के अन्तर्गत देय अंशदान से सम्बन्धित किसी मामले के लिए या भुगतान और वसूली से सम्बन्धि तमामले के लिये विनियम बना सकते है जो सामान्यतया पहले वर्णन किये गये उसके अधिकारों के प्रतिकूल न होगा। ऐसे निनिमय उपबन्धित कर सकता है।

न्यायालय द्वारा निर्णीत होने वाले मामले– कर्मचारी राज्य विधि अधिनियम 1948 की धारा 75 के अनुसार इस प्रकार के न्यायालय द्वारा निम्नलिखित प्रकार के मामलों को निर्णीत किया जाता हैं–

(1) कोई व्यक्ति इस अधिनियम के तहत कर्मचारी है या नहीं या वह अंशदान देने के लिए उत्तरदायी है या नहीं।

(2) कोई व्यक्ति, जो किसी कर्मचारी की वावत प्रधान नियोजक है या था या नहीं।

(3) किसी प्रसुविधाओं के लिए किसी व्यक्ति का अधिकार उसकी राशि अथवा उसकी अवधि के सम्बन्ध में विवाद।

(4) आश्रितों के लाभ के किसी भुगतान के सम्बन्ध में पुनर्विचार पर धारा 45 के अन्तर्गत निगम द्वारा जारी किया गया निर्देशन सम्बन्धी विवाद।

(5) मुख्य नियोजक के अंशदान की वसूली के लिए दावा।

(6) किसी निकटतम नियोजन के अंशदान वसूल करने के लिए मुख्य नियोजक के द्वारा दावा।

(7) धारा 68 के तहत मुख्य नियोजक के विरूद्ध दावा।

(8) अवैध वसूली से प्राप्त लाभ को वापस लेने के लिए दावा।

(9) इस अधिनियम के अधीन वसूली हेतु दावा, आदि प्रकारों के दावों का निराकरण इन्ही न्यायालयों द्वारा किया जायेगा।

<u>प्रश्न न0 7</u>– कारखाना अधिनियम, 1948 में अबन्धित स्वास्थ सुरक्षा तथा कल्याण से सम्बन्धित प्रावधानों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

<u>उत्तर–</u> कारखाना अधिनियम, 1948 कारखानों से संबंधित सभी पहलुओं को शामिल करने वाला एक व्यापक कानून है, जिसमें कारखानों की स्वीकृति, लाइसेंसिंग और पंजीकरण, अधिनियम के तहत निरीक्षण अधिकारी, स्वास्थ्य, सुरक्षा, कल्याण, काम के घंटे, वयस्कों और छोटे बच्चों का रोजगार, वार्षिक छुट्टी और दंड शामिल हैं। धारा 2 (एम) में, एक कारखाने को किसी भी परिसर के रूप में परिभाषित किया गया है, जिसमें इसकी सीमाएँ शामिल हैं1. जहाँ दस या अधिक कर्मचारी काम कर रहे हैं, या पिछले बारह महीनों के किसी भी दिन काम कर रहे थे, और जिसके किसी भी हिस्से में बिजली की सहायता से विनिर्माण प्रक्रिया चल रही है, या आमतौर पर इस तरह से चल रही है, या 2. जहाँ बीस या अधिक कर्मचारी काम कर रहे हैं, या पिछले बारह महीनों के किसी भी दिन काम कर रहे थे, और जिसके किसी भी हिस्से में बिजली की सहायता के बिना विनिर्माण प्रक्रिया चल रही है, या आमतौर पर इस तरह से चल रही है। अधिनियम की धारा 85 के अन्तर्गत राज्य सरकार को यह अधिकार दिया गया है कि वह कुछ ऐसे परिसरों पर अधिनियम लागू कर सकती है, जिनमें

1. यदि विद्युत की सहायता से कार्य किया जा रहा हो तो वहां नियोजित व्यक्तियों की संख्या दस से कम हो तथा यदि विद्युत की सहायता के बिना कार्य किया जा रहा हो तो वहां कार्यरत व्यक्तियों की संख्या बीस से कम हो, अथवा

2. वहां कार्यरत व्यक्ति उसके स्वामी द्वारा नियोजित न हों, बल्कि ऐसे स्वामी की अनुमति से अथवा उसके साथ समझौते के अन्तर्गत कार्य कर रहे हों। तदनुसार, इसमें सम्मिलित खतरे की सम्भावना पर विचार करते हुए, इस प्रशासन ने वर्ष 1989 में सरकारी आदेश संख्या 35/89–लैबध्जी दिनांक 12 जून 1989 के अन्तर्गत कारखाना अधिनियम, 1948 के अन्तर्गत आने वाली 41 विनिर्माण प्रक्रियाओं को अधिसूचित किया है।

कारखाना अधिनियम, 1948 के महत्वपूर्ण प्रावधान

कारखानों का अनुमोदन, लाइसेंस और पंजीकरण प्राप्त करना (धारा 6)– (1) राज्य सरकार ऐसे नियम बनाएगी जिसके तहत किसी भी श्रेणी या विवरण के कारखानों की योजनाओं को औपचारिक रूप से प्रस्तुत करना आवश्यक होगा, साथ ही निर्माण या विस्तार के लिए जिस स्थान पर कारखाना स्थित है, उसकी जानकारी मुख्य निरीक्षक या राज्य सरकार को प्रस्तुत करनी होगी।

(2) इस धारा के अंतर्गत कारखानों के पंजीकरण और लाइसेंसिंग के साथ–साथ ऐसे पंजीकरण और लाइसेंसिंग के लिए शुल्क का भुगतान और लाइसेंसों का नवीनीकरण भी आवश्यक है।

(3) जब तक अधिभोगी मुख्य निरीक्षक को सूचना नहीं देता, तब तक कोई लाइसेंस जारी या नवीनीकृत नहीं किया जाता।

(4) यदि राज्य सरकार किसी कारखाने के निर्माण या स्थल के लिए अनुमति देने से इनकार करती है, तो इनकार के 30 दिनों के भीतर आवेदक केंद्र सरकार से अपील कर सकता है।

श्रम और कल्याण– 'श्रम कल्याण' शब्द का तात्पर्य फैक्ट्री के अंदर और बाहर कर्मचारियों को दी जाने वाली सेवाओं से है, जैसे कैंटीन, शौचालय, मनोरंजन क्षेत्र, आवास और अन्य कोई भी सुविधा जो कर्मचारी की भलाई का समर्थन करती है। कल्याणकारी उपाय करने वाले राज्य अपने कर्मचारियों की समग्र भलाई और उत्पादकता की परवाह करते हैं। औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया के आरंभ में, विनिर्माण श्रमिकों के लिए सामाजिक कार्यक्रमों को पर्याप्त प्राथमिकता नहीं मिली। अतीत में, भारत में औद्योगिक श्रम की स्थिति बहुत खराब थी। इक्कीसवीं सदी के उत्तरार्ध में औद्योगिक गतिविधि में वृद्धि के कारण, रॉयल कमीशन की सिफारिशों के माध्यम से कर्मचारियों की कार्य स्थितियों में सुधार के लिए कई प्रयास किए गए। पिछले अधिनियम की कमियों और सीमाओं के बारे में जानकारी प्राप्त करने के बाद, 1948 के कारखाना अधिनियम में संशोधन किया गया। श्कारखानाश की परिभाषा का विस्तार करके इसमें 10 या उससे अधिक लोगों को रोजगार देने वाली कोई भी औद्योगिक सुविधा शामिल कर दी गई, जो बिजली का उपयोग करती है या 20 से अधिक लोगों को रोजगार देने वाली कोई भी औद्योगिक स्थापना जो बिजली का उपयोग नहीं करती, जो एक महत्वपूर्ण विकास था।

अन्य महत्वपूर्ण संशोधनों में शामिल हैं–

(1) काम करने योग्य बच्चों की न्यूनतम आयु 12 से बढ़ाकर 14 वर्ष करना।

(2) बच्चों के काम करने के घंटों की संख्या पांच से घटाकर साढ़े चार करना।

(3) बच्चों को शाम 7 बजे से सुबह 6 बजे के बीच काम करने से रोकना।

सभी प्रकार के कर्मचारियों के स्वास्थ्य, सुरक्षा और कल्याण पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

कल्याणकारी उपाय

कल्याणकारी उपायों के तीन मुख्य घटक हैं व्यावसायिक स्वास्थ्य देखभाल, उचित कार्य घंटे और उचित पारिश्रमिक। यह किसी व्यक्ति के संपूर्ण स्वास्थ्य की बात करता है, जिसमें उसकी शारीरिक, मानसिक, नैतिक और भावनात्मक स्थिति शामिल है। कल्याणकारी उपायों का लक्ष्य कार्यबल की सामाजिक–मनोवैज्ञानिक मांगों, विशेष तकनीकी आवश्यकताओं, संगठनात्मक संरचना और प्रक्रियाओं और वर्तमान सामाजिक–सांस्कृतिक वातावरण को एकीकृत करना है। यह उद्यमों और समाज में काम के प्रति समर्पण की संस्कृति को बढ़ावा देता है, जिससे कर्मचारियों की खुशी और उत्पादकता में वृद्धि सुनिश्चित होती है।

धुलाई सुविधाएं (धारा 42)– (1) सभी कारखानों को कर्मचारियों के उपयोग के लिए पर्याप्त उपयुक्त धुलाई सुविधाएं उपलब्ध करानी चाहिए तथा उनका रखरखाव करना चाहिए।

(2) पुरुष और महिला कर्मचारियों के लिए अलग–अलग, अच्छी तरह से जांची गई सुविधाएं उपलब्ध कराई जानी चाहिएय साथ ही ये सुविधाएं आसानी से उपलब्ध होनी चाहिए और साफ–सुथरी होनी चाहिए।

धुलाई के लिए उचित एवं उपयुक्त सुविधाओं के मानक राज्य सरकार द्वारा निर्धारित किए जाने चाहिए।

कपड़ों के भंडारण और सुखाने की सुविधाएं (धारा 43)– राज्य सरकार के पास एक विशिष्ट अधिकार है। इसमें कहा गया है कि राज्य सरकार के पास निर्माताओं को यह निर्देश देने का अधिकार है कि वे श्रमिकों के कपड़ों को कहां स्टोर करें। वे उन्हें यह भी बता सकते हैं कि कामगारों के कपड़े कैसे सुखाए जाएं । यह उस परिस्थिति को संदर्भित करता है जिसमें कामगार काम के लिए तैयार नहीं होते हैं।

बैठने की सुविधाएं (धारा 44)–सभी कारखानों को उन सभी श्रमिकों के लिए उपयुक्त स्थानों पर बैठने की व्यवस्था उपलब्ध करानी चाहिए , जिन्हें खड़े होकर काम करना पड़ता है, ताकि काम के दौरान उत्पन्न होने वाले आराम के अवसरों का लाभ उठाया जा सके।

मुख्य निरीक्षक के अनुसार, किसी भी कारखाने में किसी विशेष विनिर्माण प्रक्रिया में शामिल या किसी विशिष्ट कमरे में काम करने वाले श्रमिक बैठे–बैठे ही अपना काम प्रभावी ढंग से करने में सक्षम होते हैं।

प्राथमिक चिकित्सा उपकरण (धारा 45) सभी कारखानों में सभी कार्य घंटों के दौरान आवश्यक आपूर्तियों से भरे प्राथमिक चिकित्सा किट , उपकरण या अलमारियाँ होनी चाहिए, और उन्हें सभी विनिर्माण कर्मचारियों के लिए आसानी से सुलभ होना चाहिए। तदनुसार, प्रत्येक 150 औद्योगिक कर्मचारियों के लिए एक के सामान्य अनुपात से अधिक प्राथमिक चिकित्सा बक्से या अलमारियाँ होनी चाहिए, जो उससे कम होनी चाहिए।

प्राथमिक चिकित्सा बॉक्स या अलमारी में केवल अनुशंसित सामान ही होना चाहिए।

कारखाने के संचालन समय के दौरान, प्रत्येक प्राथमिक चिकित्सा बॉक्स या अलमारी को एक विशिष्ट व्यक्ति की देखरेख में रखा जाना चाहिए, जो इसके लिए अलग से जवाबदेह हो तथा कारखाने के कार्य समय के दौरान हर समय उपलब्ध रहना चाहिए।

कैंटीन (धारा 46)– राज्य सरकार द्वारा निर्धारित नियमों के अनुसार, किसी भी निर्दिष्ट कारखाने में, जहां सामान्यतः 250 से अधिक लोग कार्यरत हों, श्रमिकों के लाभ के लिए अधिष्ठाता द्वारा कैंटीन उपलब्ध कराई जानी चाहिए तथा उसका रखरखाव किया जाना चाहिए । भोजन परोसा जाना चाहिए और उसके मूल्य निर्धारित किये जाने चाहिए।

आश्रय स्थल, शौचालय और भोजन कक्ष (धारा 47)–150 से ज्यादा कर्मचारियों वाली हर फैक्ट्री में उचित और उपयुक्त शौचालय या शेल्टर और पीने के पानी के साथ एक लंच रूम होना चाहिए जहाँ कर्मचारी अपने साथ लाया हुआ खाना खा सकें और जो उनके इस्तेमाल के लिए रखा गया हो। अगर लंच रूम उपलब्ध है, तो कर्मचारियों को काम के दौरान खाना बंद कर देना चाहिए। आश्रय स्थलों या शौचालयों में अच्छी रोशनी, हवादारी, साफ–सफाई, ठंडक और अच्छी स्थिति होनी चाहिए। राज्य सरकार मानक निर्धारित करती है।

क्रेच (धारा 48)– 30 से अधिक महिला कर्मचारियों वाली प्रत्येक फैक्ट्री में ऐसी महिलाओं के छह वर्ष से कम आयु के बच्चों के उपयोग के लिए उपयुक्त कमरा होना चाहिए। ऐसे कमरे अच्छी तरह से सुसज्जित, अच्छी तरह से रोशनी वाले और हवादार होने चाहिए, और उन्हें साफ और स्वच्छ रखा जाना चाहिए। साथ ही, उन्हें उन महिलाओं की देखरेख में होना चाहिए जिन्होंने शिशु और शिशु देखभाल में प्रशिक्षण प्राप्त किया हो। इसके अलावा, महिला श्रमिकों के बच्चों की देखभाल के लिए कपड़े धोने और बदलने की सुविधा भी उपलब्ध कराई जा सकती है। किसी भी फैक्ट्री को ऐसे बच्चों को मुफ्त दूध, जलपान या दोनों उपलब्ध कराने के लिए बाध्य किया जा सकता है। छोटे बच्चों को उनकी माताओं द्वारा किसी भी उद्योग में आवश्यक अंतराल पर भोजन कराया जा सकता है।

स्वास्थ्य

अधिनियम के अध्याय प्प् की धाराएं 11–20 कारखाना स्वास्थ्य अधिनियम, 1948 से संबंधित हैं।

स्वच्छता (धारा 11)हर फैक्ट्री को साफ –सुथरा रखना चाहिए और नालियों, शौचालयों या अन्य परेशानियों से मुक्त रखना चाहिए। खास तौर पर–

(1) फर्श, बेंचों, सीढ़ियों और गलियारों से प्रतिदिन झाड़ू लगाकर या किसी अन्य विधि से गंदगी साफ की जानी चाहिए तथा उसका उचित तरीके से निपटान किया जाना चाहिए।

(2) फर्श को सप्ताह में कम से कम एक बार कीटाणुनाशक से धोना चाहिए।

(3) विनिर्माण प्रक्रिया के दौरान, फर्श नम हो जाता है; इसे जल निकासी के माध्यम से निकाला जाना चाहिए।

अपशिष्ट और बहिःस्राव का निपटान (धारा 12)– प्रत्येक कारखाने में विनिर्माण प्रक्रिया से उत्पन्न अपशिष्टों और बहिःस्रावों के उपचार के लिए एक विधि होनी चाहिए।

वेंटिलेशन और तापमान (धारा 13)– (1) श्रमिकों के आराम को सुनिश्चित करने और स्वास्थ्य समस्याओं को रोकने के लिए, कारखाने में हवा के संचार के लिए पर्याप्त वेंटिलेशन बनाया जाना चाहिए, जिसे एक विशिष्ट तापमान पर बनाए रखा जाना चाहिए।

(2) दीवारें और छत ऐसी सामग्री से बनाई जानी चाहिए जो एक विशेष तापमान के लिए बनाई गई हो और जितना संभव हो उससे अधिक तापमान न हो।

(3) उन कारखानों में कर्मचारियों की सुरक्षा के लिए कुछ सावधानियां अवश्य बरती जानी चाहिए जहां विनिर्माण प्रक्रिया के लिए अत्यंत उच्च या निम्न तापमान की आवश्यकता होती है।

धूल और धुआँ (धारा 14)–प्रत्येक कारखाने में धूल, धुएं या अन्य अशुद्धियों को हटाने या रोकने के लिए कुशल उपाय होने चाहिए, जो वहां कार्यरत कर्मचारियों को नुकसान पहुंचा सकती हैं या अपमानित कर सकती हैं तथा किसी भी कार्य कक्ष में सांस के माध्यम से उनके अंदर जाने और जमा होने का कारण बन सकती हैं।

कोई भी फैक्ट्री आंतरिक दहन इंजन का संचालन तब तक नहीं कर सकती जब तक कि निकास बाहर की ओर निर्देशित न हो, और किसी अन्य आंतरिक दहन इंजन का उपयोग नहीं किया जा सकता। इसके अतिरिक्त, धुएं के निर्माण से बचने के लिए सावधानी बरतनी चाहिए जो कमरे के अंदर किसी भी कर्मचारी के स्वास्थ्य को खतरे में डाल सकती है।

भीड़भाड़ (धारा 16)– कारखानों में अत्यधिक भीड़ नहीं होनी चाहिए जिससे श्रमिकों के स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचे। सभी कर्मचारियों के पास भवन में काम करने के लिए पर्याप्त जगह होनी चाहिए।

प्रकाश व्यवस्था (धारा 17)–(1) कारखाने के प्रत्येक क्षेत्र में, जहां कर्मचारी कार्यरत हैं, पर्याप्त प्राकृतिक, कृत्रिम या दोनों प्रकार की रोशनी स्थापित और अनुरक्षित होनी चाहिए।

(2) कारखानों में कार्य कक्ष के लिए प्रकाश प्रदान करने वाली सभी कांच की खिड़कियों और रोशनदानों को अंदर और बाहर से साफ रखा जाना चाहिए।

(3) किसी भी विनिर्माण प्रक्रिया के दौरान छाया के उत्पादन से आंखों पर दबाव नहीं पड़ना चाहिए, तथा सभी कारखानों में ऐसे निवारक उपाय होने चाहिए, जिससे प्रकाश के स्रोत से या चिकनी या पॉलिश सतह से परावर्तन के कारण चकाचौंध न हो।

शराब पीना (धारा 18)–(1) सभी कारखानों में उपयुक्त प्रतिष्ठान होने चाहिए तथा स्वच्छ पेयजल की पर्याप्त आपूर्ति के साथ सुविधाजनक स्थान बनाए रखना चाहिए ।

(2) किसी भी पीने के पानी और किसी भी धुलाई क्षेत्र, मूत्रालय, शौचालय, थूकदान, गंदगी या अपशिष्ट ले जाने वाली खुली नाली, या कारखाने में संदूषण के किसी अन्य स्रोत के बीच की दूरी 6 मीटर होनी चाहिए, जब तक कि मुख्य निरीक्षक लिखित रूप में कम दूरी को मंजूरी न दे। लेबलिंग सुपाठ्य और ऐसी भाषा में होनी चाहिए जिसे कर्मचारी समझ सकें।

(3) 250 से अधिक नियमित कर्मचारियों वाली सभी फैक्ट्रियों में, गर्म मौसम के दौरान ठंडा पेयजल उपलब्ध कराने के लिए उपयुक्त विधि होनी चाहिए।

शौचालय और मूत्रालय (धारा 19)–(1) सभी कारखानों में पर्याप्त शौचालय होने चाहिए, तथा आवश्यक प्रकार के मूत्रालयों की व्यवस्था ऐसे स्थान पर होनी चाहिए जो श्रमिकों के लिए सुविधाजनक तथा सदैव सुलभ हो।

(2) पुरुष और महिला कर्मचारियों के लिए अलग–अलग बंद कमरे होने चाहिए।

इन स्थानों को अच्छी तरह से साफ किया जाना चाहिए, स्वच्छ रखा जाना चाहिए तथा पर्याप्त प्रकाश और वायु–संचार की व्यवस्था होनी चाहिए।

(3) शौचालयों, मूत्रालयों और धुलाई सुविधाओं को साफ रखने के लिए सफाई कर्मचारियों का उपयोग किया जाना चाहिए ।

थूकदान (धारा 20)– (1) सभी कारखानों में आसानी से पहुंच योग्य स्थानों पर थूकदान होने चाहिए तथा उन्हें साफ एवं स्वच्छ रखा जाना चाहिए।

(2) राज्य सरकार यह निर्दिष्ट करती है कि कितने थूकदान दिए जाने चाहिए, किसी भी कारखाने में उनका स्थान क्या होना चाहिए, तथा उनका साफ और स्वास्थ्यकर तरीके से रखरखाव कैसे किया जाना चाहिए।

(3) इस उद्देश्य से डिजाइन किए गए थूकदानों को छोड़कर, किसी को भी फैक्ट्री के परिसर में थूकना नहीं चाहिए। यदि कोई उल्लंघन होता है तो नोटिस लगाया जाना चाहिए, जिसमें पाँच रुपये का जुर्माना लगाया जाएगा।

सुरक्षा– सुरक्षा अधिनियम के अध्याय IV में शामिल है और कारखाना अधिनियम, 1948 की धारा 21–41 में शामिल है।

खतरनाक मशीनों पर युवा व्यक्तियों का रोजगार (धारा 23):– किसी भी युवा व्यक्ति को खतरनाक मशीनों को चलाने की अनुमति तब तक नहीं दी जाएगी जब तक कि उसे मशीन से जुड़े खतरों और उठाए जाने वाले कदमों के बारे में पर्याप्त रूप से नहीं बताया गया हो, और उसे मशीन पर काम करने का उपयुक्त प्रशिक्षण प्राप्त न हो या किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा पर्याप्त पर्यवेक्षण प्राप्त न हो जिसे उपकरण का पूर्ण ज्ञान और अनुभव हो।

कपास की मशीनों के पास महिलाओं और बच्चों को काम पर रखने पर प्रतिषेध (धारा 27):–महिलाओं और बच्चों को कपास प्रेसिंग सुविधा के किसी भी क्षेत्र में काम करने की अनुमति नहीं है, जबकि कपास ओपनर चालू है। महिलाओं और बच्चों को विभाजन के उस तरफ काम पर रखा जा सकता है जहाँ फीड–एंड स्थित है, अगर निरीक्षक ऐसा निर्दिष्ट करता है।

होइस्ट और लिफ्ट (धारा 28)– हर होइस्ट और लिफ्ट मजबूत यांत्रिक संरचना, पर्याप्त ताकत और मजबूत सामग्री से बना होना चाहिए। उन्हें नियमित रूप से बनाए रखने की भी आवश्यकता है, हर छह महीने में कम से कम एक बार किसी योग्य व्यक्ति द्वारा पूरी तरह से जांच की जानी चाहिए, और अनिवार्य परीक्षाओं के लिए एक रजिस्टर रखा जाना चाहिए। उचित रूप से डिजाइन और स्थापित किए गए पिंजरे में सभी उत्थापक और लिफ्ट मार्गों को शामिल किया जाना चाहिए ताकि लोगों को किसी भी उपकरण के बीच फंसने से बचाया जा सके।

इससे अधिक भार नहीं उठाया जाना चाहिएय अधिकतम सुरक्षित परिचालन भार को होइस्ट या लिफ्ट पर अंकित किया जाना चाहिए। प्रत्येक होइस्ट या लिफ्ट गेट में इंटरलॉकिंग या कोई अन्य प्रभावी प्रणाली स्थापित होनी चाहिए, जो लैंडिंग के समय को छोड़कर गेट को खुलने से रोके।

आँखों की सुरक्षा (धारा 35)– राज्य सरकार किसी भी कारखाने में की जाने वाली किसी विनिर्माण प्रक्रिया के दौरान कार्यरत व्यक्तियों या प्रक्रिया के आसपास के लोगों की सुरक्षा के लिए प्रभावी स्क्रीन या उपयुक्त चश्मे उपलब्ध कराने की मांग कर सकती है, जिसमें अत्यधिक प्रकाश के संपर्क में आने के कारण आंखों को खतरा हो या प्रक्रिया के दौरान फेंके गए कणों या टुकड़ों से आंखों को चोट लग सकती हो।

खतरनाक धुएं, गैसों आदि के प्रति सावधानियां (धारा 36)– किसी भी व्यक्ति को किसी कारखाने में किसी कक्ष, टैंक, वैट, गड्ढे, पाइप, चिमनी या अन्य सीमित स्थान में प्रवेश करने की आवश्यकता नहीं होगी या अनुमति नहीं दी जाएगी, जहां कोई गैस, धुआं , वाष्प या धूल इस हद तक मौजूद है कि लोगों के फंसने का खतरा हो, जब तक कि ऐसे कक्ष, टैंक, वैट, गड्ढे, पाइप, चिमनी या अन्य सीमित स्थान में पर्याप्त मैनहोल या निकास के अन्य प्रभावी साधन उपलब्ध न हों।

विस्फोटक या ज्वलनशील धूल, गैस आदि (धारा 37)– कोई भी कारखाना जो ऐसी विनिर्माण प्रक्रियाओं में शामिल है जो धूल, गैस, धुआँ या वाष्प उत्पन्न करती है जो प्रज्वलन पर विस्फोट कर सकती है , उसे किसी भी विस्फोट को रोकने के लिए सभी व्यावहारिक सावधानियां बरतनी चाहिए। संयंत्र या मशीनरी का प्रभावी घेराव। ऐसी धूल, गैस, धुआँ या वाष्प आदि के संचय को हटाना या रोकना, या अन्यथा सभी संभावित प्रज्वलन स्रोतों को बहिष्कृत करके या प्रभावी रूप से बंद करके।

आग लगने की स्थिति में सावधानियाँ (धारा 38)– आग लगने की स्थिति में लोगों को सुरक्षित रखने और सुरक्षित स्थान पर रहने के लिए, सभी कारखानों में आग लगने और फैलने से बचने के लिए एहतियाती उपाय होने चाहिए, चाहे वह आंतरिक हो या बाहरी। आग बुझाने के लिए आवश्यक उपकरण और सुविधाएँ भी सुलभ होनी चाहिए।
सभी फैक्ट्री कर्मचारियों को, जो अग्नि से बचने के मार्गों से परिचित हैं तथा जिन्हें ऐसी परिस्थितियों में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया के बारे में पर्याप्त प्रशिक्षण प्राप्त है, उचित उपायों तक पहुंच होनी चाहिए।

प्रश्न न0 8–कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 के अन्तर्गत किये गये क्षतिपूर्ति के दावे में कौन से प्रतिवाद लिये जा सकते है? वर्णन कीजिए।

उत्तर– दुर्घटना सम्बन्धी सूचना और दावा– 10(1). जहां किसी नियोक्ता के परिसर में कोई दुर्घटना होती है और उसके परिणामस्वरूप किसी कर्मकार की मृत्यु हो जाती है या उसे गंभीर शारीरिक चोट लग जाती है, वहां नियोक्ता, मृत्यु या गंभीर शारीरिक चोट के सात दिन के भीतर, आयुक्त को मृत्यु या गंभीर शारीरिक चोट की परिस्थितियों का विवरण देते हुए एक रिपोर्ट भेजेगा। यदि कोई कर्मकार, जो धारा 3 की उपधारा (2) के अधीन विनिर्दिष्ट किसी नियोजन में लगातार नियोजित रहा हो, उस नियोजन से विरत हो जाता है और नियोजन की समाप्ति के दो वर्ष के भीतर उसमें उस नियोजन से संबंधित विशिष्ट व्यवसायिक रोग के लक्षण विकसित हो जाते हैं, तो दुर्घटना।

कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 की धारा 3(2) प्रतिकर के लिए नियोक्ता के दायित्व के बारे में है। इसमें कहा गया है किनियोक्ता रोजगार के दौरान हुई दुर्घटना के कारण कर्मचारी को हुई व्यक्तिगत चोटों के लिए मुआवजा देने के लिए उत्तरदायी है. हालाँकि, नियोक्ता उत्तरदायी नहीं है यदि चोट के कारण तीन दिनों से अधिक समय तक पूर्ण या आंशिक विकलांगता नहीं होती है, या यदि इसके कारण मृत्यु या स्थायी पूर्ण विकलांगता नहीं होती है। नियोक्ता तब भी उत्तरदायी नहीं है यदि चोट निम्नलिखित कारणों से लगी हो–

(1) नशीली दवाएँ या शराब
(2) कर्मचारी द्वारा सुरक्षा उपायों का पालन करने से इंकार करना
(3) कर्मचारी द्वारा ऐसा कार्य करना जिसकी आवश्यकता नहीं थी तथा जो गंभीर जोखिम से ग्रस्त था।

परन्तु यदि आयुक्त का समाधन हो जाता है कि सूचना न देने या उचित समय के अन्दर दावा प्रस्तुत न करने के पर्याप्त कारण थे तो आयुक्त प्रतिकर के लिए कोई ऐसा दावा ग्रहण और विनिश्चित कर सकता है जिसके सम्बन्ध में धारा 10(1) में यथाउपबन्धित समय के अन्दर सूचना प्रेषित न कर दी गई या दावा न किया गया हो।

धारा 10(1) के अधीन सूचना में निम्नलिखित बातें स्पष्ट करनी होगी–

(1) क्षतिग्रस्त कर्मकार का नाम और पता,
(2) सरल भाषा में दुर्घटना का कारण और
(3) दुर्घटना होने की तिथि।

10 (2) प्रत्येक ऐसे नोटिस में घायल व्यक्ति का नाम और पता दिया जाएगा तथा साधारण भाषा में चोट का कारण और दुर्घटना की तारीख बताई जाएगी, तथा यह नोटिस नियोक्ता को या कई नियोक्ताओं में से किसी एक को या प्रबंधन के लिए नियोक्ता के प्रति उत्तरदायी किसी व्यक्ति को दिया जाएगा। कर्मचारी मुआवजा अधिनियम 1923 की धारा 10(2) में कहा गया है किप्रत्येक नोटिस में घायल व्यक्ति का नाम और पता शामिल होना चाहिए।नोटिस नियोक्ता, उनके किसी भी कर्मचारी या व्यवसाय के प्रबंधन के लिए जिम्मेदार किसी भी व्यक्ति को दिया जाना चाहिए। इसे व्यक्तिगत रूप से वितरित किया जा सकता है या पंजीकृत डाक द्वारा भेजा जा सकता है। धारा 10 में क्षतिपूर्ति के दावों को भी शामिल किया गया है और कहा गया है कि आयुक्त दावे पर विचार कर सकता है, भले ही नोटिस समय पर न दिया गया हो, उसमें कोई दोष हो, या नियोक्ता को दुर्घटना के बारे में किसी अन्य स्रोत से पता चला हो।

कर्मचारी प्रतिकर अधिनियम, 1923 की धारा 10(3) में कहा गया है किराज्य सरकार नियोक्ताओं से यह अपेक्षा कर सकती है कि वे अपने परिसर में घायल कर्मचारियों के लिए नोटिस बुक रखेंपुस्तक निर्धारित प्रारूप में होनी चाहिए तथा घायल कर्मचारियों तथा उनकी ओर से कार्य करने वाले किसी भी व्यक्ति को उचित समय पर आसानी से उपलब्ध होनी चाहिए। इस धारा के अंतर्गत नोटिस निम्नलिखित द्वारा दिया जा सकता है–

(1) उन्हें व्यक्ति के निवास, कार्यालय या व्यवसाय के स्थान पर पहुंचाना।
(2) उन्हें पंजीकृत डाक से भेजना।
(3) यदि कोई नोटिस बुक रखी गई हो तो उसे उसमें दर्ज करना।

हिन्दी में

''राज्य सरकार यह अपेक्षा कर सकती है कि नियोक्ताओं का कोई भी निर्धारित वर्ग अपने परिसर में, जहां कामगार नियोजित हैं, निर्धारित प्रपत्र में एक नोटिस–बुक रखेगा, जो परिसर में कार्यरत किसी भी घायल कामगार और सद्भावपूर्वक कार्य करने वाले किसी भी व्यक्ति के लिए सभी उचित समय पर आसानी से उपलब्ध होगी।''

10(4) यदि कर्मचारी की चोट के परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो जाती है, तो नियोक्ता उपधारा (1) के अधीन प्रतिकर के अतिरिक्त, आयुक्त के पास कर्मचारी के ज्येष्ठ जीवित आश्रित को उसके व्यय के लिए भुगतान के लिए पांच हजार रुपये से अन्यून की राशि जमा करेगा।

प्राणघातक दुर्घटनाओं के सम्बन्ध में नियोजकों से विवरण की अपेक्षा की शक्ति–1923 के कर्मकार मुआवजा अधिनियम की धारा 10(ए)(1) के अनुसार, यदि आयुक्त को सूचना मिलती है कि किसी कर्मचारी की काम करते

समय दुर्घटना में मृत्यु हो गई है, तो वह पंजीकृत डाक द्वारा नियोक्ता को नोटिस भेज सकता है। नोटिस में नियोक्ता को 30 दिनों के भीतर जवाब प्रस्तुत करने की आवश्यकता होती है।1923 का कर्मकार क्षतिपूर्ति अधिनियम दुर्घटनाओं में श्रमिकों को लगी चोटों के लिए मुआवजा प्रदान करने के लिए बनाया गया है। अधिनियम की धारा 10 में नोटिस और दावे भी शामिल हैं, और कहा गया है कि आयुक्त किसी दावे पर विचार कर सकता है, भले ही वह समय पर दायर न किया गया हो, उसमें दोष हों, या नियोक्ता को दुर्घटना के बारे में किसी अन्य स्रोत से पता हो।

धारा 10(ए)(2) के अनुसार नियोजक यदि अपने आपको प्रतिकर की राशि जमा करने के लिए उत्तरदायी समझता है तो वह उपर्युक्त सूचना के मिलने के तीस दिन के अन्दर प्रतिकर की राशि कार्यालय में जमा कर देगा।

धारा 10(ए)(3) के अनुसार यदि नियोजक यह समझता है कि वह प्रतिकर की राशि जमा करने के लिए दायी नहीं है तो वह अपने वितरण में उन धाराओं को स्पष्ट करेगा जिस पर वह दायित्व से इन्कार करता है।

जहाँ नियोजक ने अपने दायित्व से इस प्रकार इन्कार किया है वहाँ आयुक्त उचित जाँच के बाद मृत कर्मकार के आश्रितों में से किसी को सूचित कर सकता है कि वह प्रतिकर का दावा करने के लिए स्वतन्त्र है और अन्य सूचना भी आश्रितों में से किसी सूचित कर सकता है कि वह प्रतिकर का दावा करने के लिए स्वतन्त्र है और ऐसी अन्य सूचना भी आश्रितों को दे सकता है जो वह उचित समझता है।

मेफोल्ड स्टेट नल्लाकोट नीलगिरी बनाम कृष्णन (1985) 2 एल.एल.जे 483 (मद्रास) अभिकथन किया है कि धारा 10(ए) (4) के अन्तर्गत कर्मकार आयुक्त स्वप्रेरणा से प्रतिकर की राशि निर्धारित नहीं कर सकता। वह केवल आश्रितों को सूचना प्रेषित करेगा कि वे अपने दावे प्रस्तुत करें। आयुक्त को उस स्थिति में प्रतिकर के निर्धारण का अधिकार प्राप्त नहीं है यदि उसने प्रतिकर अदा करने के दायित्व को अस्वीकार कर दिया है। ऐसी स्थिति में अधिनियम की धारा 30 के अधीन दायर करने के अतिरिक्त व्यथित पक्षकार संविधान के अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत रिट पिटीशन के लिए आवेदन कर सकता है।

प्राणघातक दुर्घटनाओं और गम्भीर शारारिक क्षतियों की सूचनाएँ– कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 की धारा 10बी(1)घातक दुर्घटना या गंभीर शारीरिक चोट की सूचना देने के लिए जिम्मेदार व्यक्ति को सात दिनों के भीतर आयुक्त को रिपोर्ट भेजने की आवश्यकता होती है रिपोर्ट में मृत्यु या चोट की परिस्थितियों का विवरण शामिल होना चाहिए, जैसे–

(1) किसी अंग के उपयोग की स्थायी हानि।
(2) दृष्टि या श्रवण को स्थायी क्षति।
(3) अंग का फ्रैक्चर।
(4) घायल व्यक्ति को 20 दिनों से अधिक समय तक काम से अनुपस्थित रहना।

हालाँकि, राज्य सरकार यह प्रावधान कर सकती है कि रिपोर्ट आयुक्त के बजाय किसी अन्य प्राधिकारी को भेजी जा सकती है।

जहां किसी तत्समय प्रवृत्त विधि द्वारा किसी नियोक्ता द्वारा या उसकी ओर से किसी प्राधिकारी को उसके परिसर में घटित किसी दुर्घटना की सूचना देना अपेक्षित है, जिसके परिणामस्वरूप मृत्यु या गंभीर शारीरिक चोट होती है, वहां सूचना देने के लिए अपेक्षित व्यक्ति, मृत्यु या गंभीर शारीरिक चोट के सात दिन के भीतर, नियोक्ता को या उसकी ओर से किसी प्राधिकारी को सूचना देना अपेक्षित है, जहां नियोक्ता द्वारा या उसकी ओर से किसी प्राधिकारी को उसके परिसर में घटित किसी दुर्घटना की सूचना देना अपेक्षित है, जिसके परिणामस्वरूप मृत्यु या गंभीर शारीरिक चोट होती है, वहां सूचना देने के लिए अपेक्षित व्यक्ति, नियोक्ता द्वारा या उसकी ओर से नियोक्ता को, उसके परिसर में घटित किसी दुर्घटना की, जिसके परिणामस्वरूप मृत्यु या गंभीर शारीरिक चोट होती है, नियोक्ता को, नियोक्ता द्वारा या उसकी ओर से किसी प्राधिकारी को सूचना देना अपेक्षित . द्वारा या नियोक्ता द्वारा, नियोक्ता द्वारा या उसके द्वारा।

राज्य सरकार शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा धारा 10(बी) (1) के उपबन्ध इस उपधारा के क्षेत्र में आने वाले परिसरों से भिन्न अन्य परिसरो के वर्ग पर लागू कर सकती है इस अधिसूचना में यह विनिर्दिष्ट कर सकती है कि आयुक्त को रिपोर्ट कौन व्यक्ति भेजेगा। किन्तु धारा 10 की कोई बात उन कारखनों पर लागू नही होगी जिन पर कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 लागू होता है।

एस. सुप्पियाह बनाम चित्रपुराई ए.आई.आर. 1957 मद्रास 216 के विनिश्चय में मद्रास उच्च न्यायालय ने यह अवधारित किया है कि दुर्घटना होने पर कर्मकार को यह विकल्प प्राप्त है कि वह चाहे तो इस अधिनियम के अधीन अर्जी दे या किसी अन्य अन्य कानून उपबन्ध जैसे नियोजक का दायित्व अधिनियम के अधीन प्रतिकर का दावा प्रस्तुत करे। लेकिन कर्मकार दोनों का लाभ बार–बार नहीं उठा सकता।

कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1948 की धारा 10(बी) के प्रावधान ऐसे कारखानों पर लागू नहीं होते जहाँ राज्य कर्मचारी बीमा अधिनियम, 1948 के प्रावधान लागू होते हैं।

चिकित्सकीय परीक्षा–11(1) जहां किसी कर्मचारी ने दुर्घटना की सूचना दी है, वहां यदि नियोजक सूचना की तामील के समय से तीन दिन की समाप्ति के पूर्व किसी योग्य चिकित्सा व्यवसायी द्वारा उसकी निःशुल्क जांच कराने की पेशकश करता है, तो उसे ऐसी जांच के लिए स्वयं को प्रस्तुत करना होगा, और कोई भी कर्मचारी जो दुर्घटना की सूचना देता है, उसे ऐसी जांच के लिए स्वयं को प्रस्तुत करना होगा, और यदि नियोजक सूचना की तामील के समय से तीन दिन की समाप्ति के पूर्व किसी योग्य चिकित्सा व्यवसायी द्वारा उसकी निःशुल्क जांच कराने की

पेशकश करता है, तो उसे ऐसी जांच के लिए स्वयं को प्रस्तुत करना होगा, और यदि नियोजक सूचना की तामील के समय किसी कर्मचारी की मृत्यु हो जाती।

कर्मकार मुआवजा अधिनियम 1923 की धारा 11(1)कर्मचारियों के लिए चिकित्सा जांच शामिल है–

(1) यदि कोई कर्मचारी दुर्घटना की रिपोर्ट करता है, तो नियोक्ता रिपोर्ट प्राप्त होने के तीन दिनों के भीतर कर्मचारी (2) की योग्य चिकित्सा पेशेवर द्वारा निःशुल्क जांच कराने की पेशकश कर सकता है।

कर्मचारी को परीक्षा देनी होगी।

(3) जिन कर्मचारियों को अर्ध–मासिक भुगतान मिलता है, उन्हें भी समय–समय पर परीक्षा देनी पड़ सकती है।

(4) नियोक्ता अपने कर्मचारियों से नियमों के बाहर जाकर जांच कराने की मांग नहीं कर सकते।

(5) यदि कोई कर्मचारी जांच कराने से इनकार करता है या जांच में बाधा डालता है, तो उसके मुआवजा संबंधी अधिकार निलंबित कर दिए जाते हैं।

कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 की धारा 11(3) में कहा गया है कि यदि कोई कर्मचारी स्वेच्छा से बिना जांच कराए अपने कार्यस्थल को छोड़ देता है, तो उसके प्रतिकर अधिकार तब तक निलंबित कर दिए जाते हैं जब तक कि वह वापस आकर जांच के लिए स्वयं को प्रस्तुत नहीं करता।

कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 की धारा 11(4) में कर्मचारियों की चिकित्सा जांच शामिल है–

(1) यदि कोई कर्मचारी दुर्घटना की रिपोर्ट करता है, तो नियोक्ता रिपोर्ट प्राप्त होने के तीन दिनों के भीतर कर्मचारी की योग्य चिकित्सक द्वारा निःशुल्क जांच कराने की पेशकश कर सकता है।

(2) कर्मचारी को परीक्षा देनी होगी।

(3) जिन कर्मचारियों को अर्ध–मासिक भुगतान मिलता है, उन्हें भी आवश्यकता पड़ने पर परीक्षा देनी होगी।

(4) नियोक्ता कर्मचारियों से परीक्षा देने की मांग नहीं कर सकते, जब तक कि यह नियमों के अनुरूप न हो।

(5) यदि कोई कर्मचारी जांच कराने से इनकार करता है या जांच में बाधा डालता है, तो उसके मुआवजा संबंधी अधिकार निलंबित कर दिए जाते हैं।

1923 के कर्मकार प्रतिपूर्ति अधिनियम की धारा 11(5) में कहा गया है किमृतक कर्मचारी के लिए जमा किया गया मुआवजा उपधारा (4) के तहत की गई किसी भी कटौती के बाद, उनके आश्रितों के बीच विभाजित किया जाना चाहिए।

<u>प्रश्न न0 9</u>–स्त्री की मृत्यु के मामले में मातृत्व हित लाभ के भुगतान के सम्बन्ध में क्या विधि है? विवेचना कीजिए।

<u>उत्तर</u>– मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 की धारा 7 के मुताबिक, अगर कोई महिला इस अधिनियम के तहत मातृत्व लाभ या किसी और रकम की हकदार है और उसे वह रकम पाने से पहले ही मर जाती है, तो नियोक्ता को उस रकम को महिला द्वारा नामित व्यक्ति को देना होगा. अगर ऐसा कोई नामित व्यक्ति नहीं है, तो नियोक्ता को उस रकम को महिला के विधिक प्रतिनिधि को देनी होगी।

मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 की धारा 5(3) के मुताबिक, हर महिला को 12 हफ्ते का मातृत्व लाभ मिलता है. हालांकि, मातृत्व लाभ (संशोधन) अधिनियम, 2017 के तहत इस धारा में संशोधन किया गया है. इसके मुताबिक, अब महिलाओं को अधिकतम 26 हफ्ते का मातृत्व लाभ मिल सकता है. इसमें अनुमानित डिलीवरी की तारीख से आठ हफ्ते पहले का समय शामिल नहीं है. अगर महिला को दो या उससे ज्यादा बच्चे हैं, तो उसे 12 हफ्ते का ही मातृत्व लाभ मिलेगा. इस लाभ का लाभ भी अनुमानित डिलीवरी की तारीख से छह हफ्ते पहले से ही लिया जा सकता है। इस अधिनियम के तहत, गर्भवती महिलाएं अपने नियोक्ता को लिखित में सूचना देकर मातृत्व अवकाश ले सकती हैं. इसमें उन्हें यह भी बताना होता है कि वह किस तारीख से काम से अनुपस्थित रहेंगी. इसके अलावा, महिलाएं कंपनी के एचआर को सूचित करके या कंपनी के पोर्टल पर जाकर भी मातृत्व अवकाश के लिए आवेदन कर सकती हैं. वे अपने नियोक्ता को ईमेल के जरिए भी मातृत्व अवकाश लेने की जानकारी दे सकती हैं।

अधिनियम में कहा गया है कि प्रत्येक महिला 12 सप्ताह के मातृत्व लाभ की हकदार होगी। अधिनियम इसे बढ़ाकर 26 सप्ताह करने का प्रयास करता है। इसके अलावा, पिछले प्रावधानों के अनुसार, कोई महिला अपेक्षित प्रसव की तारीख से 6 सप्ताह से पहले उक्त लाभ का लाभ नहीं उठा सकती थी।

यदि नियोजक प्रसव करने वाली महिला की मृत्यु के बाद देय अदत्त मातत्व लाभ उसके द्वारा नाम निर्देशित व्यक्ति या उसके विधि उत्तराधिकारी को नहीं प्रदान करता है तो महिला की मृत्यु का मातृत्व लाभ स्वयमेव अपने पास रखने का कोई बहाना नही बनाया जा सकता। यदि उस महिला की प्रसव–कार्य के पूर्व ही मृत्यु हो जाती है तो नियोजक द्वारा उसकी मृत्यु के दिन तक मातृत्व लाभ देने का उसका दायित्व है। यदि महिला की मृत्यु बालक के जन्म देने के बाद हो जाती है और बालक जीवित रहता है तो प्रसव के 6 सप्ताह तक का मातृत्व लाभ देय होगा। लेकिन यदि जज्जा बच्चा दोनों की मृत्यु हो जाती है तो उनके जीवित रहने के अन्तिम दिन तक का लाभ दिया जायेगा। यदि माता की मृत्यु के समय नवजात शिशु जीवित है और माँ के मरने के बाद मरता है तो तिने दिन वह जीवित रहता रहा उस समय तक का मातृत्व लाभ उसे देय होगा।

मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 की धारा 6 के मुताबिक, अगर कोई महिला इस अधिनियम के तहत मातृत्व लाभ या किसी और रकम की हकदार है, लेकिन उसे सूचना नहीं दी गई है, तो भी वह इस लाभ से वंचित नहीं होगी. ऐसे मामले में, निरीक्षक अपनी मर्जी से या महिला के आवेदन पर, तय समय के अंदर उस लाभ या रकम का भुगतान करने का आदेश दे सकता हैं। मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 के तहत, गर्भवती महिलाएं अपने नियोक्ता को लिखित

में सूचना देकर मातृत्व अवकाश ले सकती हैं. उन्हें यह भी बताना होगा कि वह किस तारीख से काम से अनुपस्थित रहेंगी. इसके अलावा, कंपनी के एचआर को सूचित करके या कंपनी के पोर्टल पर आवेदन करके भी मातृत्व अवकाश के लिए आवेदन किया जा सकता है. इसके अलावा, नियोक्ता को ईमेल भी भेजा जा सकता है।

प्रश्न न0 10– निम्नलिखित में से किन्हीं चार पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए–

उत्तर– (1) – कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 की धारा 2(1)(ग) के मुताबिक, ष्प्रतिकरष् का मतलब इस अधिनियम के तहत दिया जाने वाला प्रतिकर है. यह अधिनियम, रोजगार के दौरान होने वाली किसी भी आकस्मिक चोट के मामले में मुआवजे के जरिए कर्मचारियों और उनके आश्रितों को वित्तीय सुरक्षा और सहायता देने के लिए बनाया गया है. इस अधिनियम के तहत, नियोक्ताओं को उन कर्मचारियों को लाभ देना होता है जो कार्यस्थल पर दुर्घटना के कारण स्थायी या अस्थायी रूप से विकलांग हो जाते हैं. कर्मचारी को मिलने वाले मुआवजे की रकम, दुर्घटना की वजह से हुई चोट की गंभीरता, कर्मचारी के मासिक वेतन, और उसकी उम्र पर निर्भर करती है. अगर कोई कर्मचारी रोजगार के दौरान या उसकी वजह से किसी दुर्घटना में मर जाता है, तो उसके आश्रितों को मिलने वाले मुआवजे की न्यूनतम रकम 1.20 लाख रुपये और अधिकतम 1.50 लाख रुपये है. आश्रितों में मृतक कर्मचारी की विधवा, अवयस्क वैध या दत्तक पुत्र, अविवाहित वैध या दत्तक पुत्री, या विधवा मां शामिल हैं।

भारत हैवी प्लेट एण्ड लिमिटेड बनाम प्रतिकर आयुक्त (1983) 1 एल.एल.जे. 477 (इलाहाबाद) के विनिश्चय में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने इस सन्दर्भ में व्यापक निर्वचन प्रदान किया है। न्यायालय ने अपना अभिकथन प्रस्तुत करते हुए कहा है कि चिकित्सा प्रमाण–पत्र के आधार पर प्रतिकर आयुक्त द्वारा यदि एक मर्तबा प्रतिकर राशि का निर्धारण कर दिया जाता है तो तत्पश्चात् प्रदान किये गये प्रमाण–पत्र के आधार पर पूर्व प्रतिकर राशि का निषेध नहीं किया जा सकता चाहे द्वितीय प्रमाण–पत्र में कर्मकार के क्षतिग्रस्त अंश में सुधार होने के संकेत ही दिये गये हों।

(2) आश्रित– कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 की धारा 2(घ) के मुताबिक, प्रतिकर का मतलब है इस अधिनियम के तहत दिया जाने वाला प्रतिकर. वहीं, 'आश्रित' का मतलब है मृतक कर्मचारी के ये रिश्तेदाररू विधवा, अवयस्क वैध या दत्तक पुत्र, अविवाहित वैध या दत्तक पुत्री, विधवा माता।

आश्रित का तात्पर्य मृतक कर्मचारी के निम्नलिखित रिश्तेदारों में से किसी से है, अर्थात:—

(i)विधवा, नाबालिग वैध या दत्तक पुत्र, अविवाहित वैध या दत्तक पुत्री या विधवा मांय तथा

(ii) यदि कर्मचारी की मृत्यु के समय वह पूरी तरह से उसकी कमाई पर निर्भर है, तो उसका पुत्र या पुत्री जो 18 वर्ष की आयु प्राप्त कर चुका है और अशक्त है

(iii)यदि कर्मचारी की मृत्यु के समय उसकी कमाई पर पूर्णतः या अंशतः निर्भर है,

(1) पहली श्रेणी के आश्रितों को मृतक कर्मचारी की मृत्यु के समय उस पर अपनी निर्भरता साबित करने की आवश्यकता नहीं होती है। उदाहरण के लिए, इस श्रेणी में विधवा या कोई अन्य आश्रित मृतक कर्मचारी की कमाई पर निर्भर नहीं हो सकता है, फिर भी वे पहली श्रेणी के आश्रितों की परिभाषा में आते हैं और मुआवजे का दावा कर सकते हैं।

इस श्रेणी से संबंधित आश्रित यदि कर्मचारी की मृत्यु के समय उसकी कमाई पर पूरी तरह से निर्भर हैं, तो उनका (2) बेटा या बेटी जो 18 वर्ष की आयु प्राप्त कर चुका है और जो अशक्त है। द्वितीय श्रेणी से संबंधित आश्रितों को अपनी शारीरिक या मानसिक अशक्तता के साथ–साथ मृतक कर्मचारी की कमाई पर अपनी पूरी निर्भरता साबित करनी होती है। यदि आश्रित उपर्युक्त तथ्यों को साबित करते हैं, तभी वे द्वितीय श्रेणी के आश्रितों की परिभाषा में आते हैं और मुआवजे का दावा कर सकते हैं।

(3) तीसरी श्रेणी के आश्रितों को कर्मचारी की मृत्यु के समय उसकी कमाई पर पूरी तरह या आंशिक निर्भरता साबित करनी होगी।

आर.बी. मूंदड़ा एंड कंपनी बनाम सुश्री भंवरी– इस मामले में, न्यायालय ने माना कि ष्एक विधवा जो अपने पति की मृत्यु के समय मुआवजे का दावा करने की हकदार है, वह अपने बाद के विवाह से वंचित नहीं होती है।

लक्ष्मीरानी बेहरा बनाम कर्मचारी मुआवजा आयुक्त एवं सहायक श्रम आयुक्त, बालसोर–इस मामले में, उड़ीसा उच्च न्यायालय ने माना कि मृतक कर्मचारी की उपपत्नी विधवा नहीं है। इसलिए उपपत्नी को –आश्रित नहीं माना जा सकता और वह ईसीए, 1923 के तहत मुआवजे की हकदार नहीं है।

(3) नियोजक– कर्मकार प्रतिकर अधिनियम 1923 की धारा 2(1) (ड) नियोजक से अभिप्राय निम्न व्यक्ति अथवा संस्था से है –

(1) किन्हीं व्यक्तियों का निकाय चाहे ऐसा निकाय निगमित है अथवा नहीं;

(2) नियोजन का प्रबन्ध–अभिकर्ता

(3) मृत नियोजक का विधिक प्रतिनिधि, एवं

(4) जब किसी कर्मकार की सेवाएँ, उस व्यक्ति द्वारा जिसके साथ कर्मकार ने सेवा अथवा शिक्षुता की संविदा की है, र्अनय व्यक्ति को अस्थायी तौर पर उधार दे दी गई हैं या भाड़े पर दी गई है तो ऐसी स्थिति मे नियोजक से तात्पर्य उस अन्य व्यक्ति से है जब कि वह कर्मकार नियोजक के लिये काम की करता रहता है। निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है कि 'नियोजक' शब्द जिनके लिये प्रयुक्त होता है, उनके अतिरिक्त कुछ अन्य लोग भी विधि की दृष्टि में नियोजक ही माने जायेगें।

(4) आंशिक निःशक्तता– 1923 का कर्मकार प्रतिपूर्ति अधिनियम आंशिक विकलांगता को इस प्रकार परिभाषित करता है ि कसी कर्मचारी की नौकरी के दौरान हुई दुर्घटना के कारण उसकी कमाई करने की क्षमता में कमीअधिनियम आंशिक विकलांगता को दो श्रेणियों में विभाजित करता है: अस्थायी और स्थायी।

(1) अस्थायी आंशिक अक्षमता–दुर्घटना के समय कर्मचारी जिस रोजगार में था, उसमें उसकी कमाई की क्षमता कम हो जाती है, लेकिन अन्य नौकरियों में ऐसा नहीं होता।

स्थायी आंशिक विकलांगता–दुर्घटना के समय कर्मचारी जिस भी कार्य को करने में सक्षम था, उसमें उसकी कमाई की क्षमता कम हो जाती है।

आंशिक विकलांगता के मामले में यह आवश्यक है कि (क) दुर्घटना हो, (ख) दुर्घटना के परिणामस्वरूप कर्मचारी को चोट लगे, (ग) जिसके परिणामस्वरूप स्थायी विकलांगता हो और (घ) जिसके परिणामस्वरूप उसकी कमाई करने की क्षमता स्थायी रूप से कम हो गई हो।

'आंशिक विकलांगता' का अर्थ है, जहां विकलांगता अस्थायी प्रकृति की है, ऐसी विकलांगता जो किसी कर्मचारी की किसी भी रोजगार में कमाई करने की क्षमता को कम करती है जिसमें वह दुर्घटना के समय लगा हुआ था, जिसके परिणामस्वरूप विकलांगता हुई, और जहां विकलांगता स्थायी प्रकृति की है, ऐसी विकलांगता जो हर उस रोजगार में उसकी कमाई करने की क्षमता को कम करती है जिसे वह उस समय करने में सक्षम था बशर्ते कि अनुसूची I के भाग II में, निर्दिष्ट प्रत्येक चोट को स्थायी आंशिक विकलांगता का परिणाम माना जाएगा।

(5) परिसंकटमय प्रक्रिया– 'परिसंकटमय प्रक्रिया से तात्पर्य ऐसी किसी प्रक्रियरा अथवा कार्य से है, जिसका विवरण प्रथम अनुसूची में दिया गया है, जहाँ जब कि विशेष सावधानी न रखी जाये उसमें प्रवेश किये गये कच्चे माल अथवा मध्यवर्ती अथवा तैयार माल, उप–उत्पादन, उसका कूड़ा करकट या बहिस्त्राव जो–

(1) कार्य करने वाले लोगों के स्वास्थ्य को खास क्षति पहुँचाती है अथवा उससे सम्बन्ध रखती है अथवा

(2) जिसके परिणामस्वरूप साधारण पर्यावरण प्रदूषित होता हो।

परन्तु ऐसा होने पर राज्य सरकार शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा प्रथम अनुसूची में वर्णित किसी भी कारखाने को बढ़ाने, घटाने अथवा कम करने के लिए संशोधन कर सकती है।